DURGA SAH MUNICIPAL LIBRARY
NAINI TAL
दुर्गा साह म्युनिसिपल पुस्तकालय
नैनीताल
Class No 891.3
Book No. Y 16 H
Reg No 3639

अन्न का आविष्कार

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ समाज के प्रबुद्ध मानस की तुष्टि एवं सामान्य मानस की ज्ञानवृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओतप्रोत होकर सरस बनता है।

श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' ने वैज्ञानिक कथा-साहित्य का क्षेत्र सम्पन्न बनाने में मौलिक प्रयास एवं महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

इस उपन्यास की कथावस्तु न केवल वैज्ञानिक के मानवतावादी पक्ष का चित्रण करती है; प्रत्युत उसकी नवीन आविष्कार की दिशा का निर्देश भी करती है। लेखक की सृजनात्मक प्रतिभा ने विज्ञान के क्षेत्र को वह देने का प्रयास किया है, जो कि किसी समय में स्वर्ग की कल्पना ने मानव-सभ्यता को दिया था।

'अशोक' जी की लेखनी में सजीव चित्रण करने की क्षमता है। उनके विज्ञान-सम्बन्धी ज्ञान एवं जीवन-सम्बन्धी अनुभव और निरीक्षण ने, इस कृति में तन्मय करने वाली विशेषता तथा समाप्त किए बिना न उठनेवाली अपूर्व रोचकता भर दी है।

अन्न का आविष्कार

(वैज्ञानिक मौलिक उपन्यास)

लेखक

यमुनादत्त वैष्णव "अशोक"

प्रकाशक

इंडियन प्रेस (पब्लिकेशंस) लिमिटेड,

इलाहाबाद

१९५६

मूल्य २।)

मुद्रक—यूनियन प्रेस, प्रयाग

प्रस्तावना

हिन्दी में अभी वैज्ञानिक कथा-साहित्य का अभाव ही है। जहाँ पर, कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में शैली की दृष्टि से प्रयोग हुए हैं और परिणामस्वरूप संयत, संकेतात्मक एवं प्रतीक-शैलियों का विकास और प्रयोग हो रहा है, साथ ही जहाँ सामाजिक, आर्थिक, धार्मिक, राजनीतिक समस्याओं के विश्लेषण एवं जीवन के चित्रण आधुनिकतम चेतना के प्रकाश में किए जा रहे हैं, वहाँ विज्ञान के क्षेत्र में किए गए ज्ञान के आधुनिक विस्तार को कथा-साहित्य में उतारना अब भी शेष है। मेरा विचार है कि इस क्षेत्र में सबसे अधिक सामयिक तत्परता की आवश्यकता है, अन्यथा साहित्य अपनी आधुनिकता को खो बैठेगा।

संभवतः इस क्षेत्र के साहित्य में अवतरित न होने का सबसे बड़ा कारण यह विश्वास है कि विज्ञान का साहित्य से संबंध नहीं और दोनों के क्षेत्र बिल्कुल अलग हैं। परन्तु यह भ्रम है। ज्ञान का कोई भी विस्तार, साहित्य-क्षेत्र के बाहर की वस्तु नहीं कहा जा सकता। हिन्दी के भक्ति-साहित्य में गूढ़ दर्शन का आधार है। संस्कृत के अनेक साहित्य-ग्रन्थों में सामयिक वैज्ञानिक उपलब्धियों का समावेश है। अतः साहित्य के इसी प्रकार व्यापक क्षेत्र को देखकर आचार्य भामह ने कहा था—

न स शब्दो न तद्वाच्यं न सा विद्या न सा कला।
जायते यन्न काव्याङ्गम् अहो भारः महान् कवेः॥

इस प्रकार साहित्यकार का क्षेत्र पृथ्वी से लेकर आकाश तक विस्तृत पदार्थों के ज्ञान में ही सीमित नहीं, वरन् कल्पना एवं अनुभूति के माध्यम से भी प्राप्त ज्ञान के क्षेत्र तक विस्तृत है।

मानव-जीवन के इतिहास के विभिन्न युगों में विभिन्न चेतनाओं का प्रधानतया प्रभाव देखा जाता है। विभिन्न युगों के साहित्यों के अन्तर्गत दार्शनिक, नैतिक, सामाजिक, आध्यात्मिक, ऐहिक चेतनाएँ प्रतिबिम्बित देखी जा सकती हैं। आज का समाज भी साहित्य के क्षेत्र में वैज्ञानिक चेतना की माँग कर रहा है। हम उसकी ओर उपेक्षा नहीं कर सकते। आज के बुद्धिप्रधान मानव की यह अदम्य माँग है।। अतएव इस माँग को पूरा करने के लिए आज के कथा-साहित्य में भी वैज्ञानिक आविष्कारों एवं अनुसंधानों का समुचित समावेश होना चाहिए।

वैज्ञानिक कथा-साहित्य के द्वारा जहाँ समाज के प्रबुद्ध मानस की तुष्टि एवं सामान्य मानस की ज्ञान-वृद्धि होती है, वहीं विज्ञान का रूखा क्षेत्र भी जीवन से ओत-प्रोत होकर सरस बनता है। बौद्धिक एवं भौतिक प्रयोगों में जीवन का स्पन्दन आजाने से विज्ञान का मानवतावादी दृष्टिकोण विकसित होता है। इसी दृष्टिकोण के अभाव में आज का विज्ञान, निकट अतीत में मानव-सभ्यता का विनाशकारी दानव बन बैठा था। अतः समाज के भीतर वैज्ञानिक एवं वैज्ञानिक के भीतर सामाजिक दृष्टि के विकास के लिए वैज्ञानिक कथा-साहित्य की बड़ी आवश्यकता है।

जैसा कि पहले ही कहा जा चुका है, हिन्दी में वैज्ञानिक कथा-साहित्य की बहुत कमी है। प्रस्तुत पुस्तक के लेखक श्री यमुनादत्त वैष्णव 'अशोक' ने इस क्षेत्र में मौलिक प्रयास एवं महत्वपूर्ण कार्य किया है। अस्थिपिंजर (कहानी-संग्रह), चक्षुदान (उपन्यास), शैलगाथा (कहानी संग्रह), शैलबधू (उपन्यास) आदि इनकी पूर्ववर्ती कृतियाँ हैं; पर 'अन्न का आविष्कार' का अपना महत्व है। यह न केवल वैज्ञानिक के मानवतावादी पक्ष का चित्रण ही करती है, वरन् उसकी नवीन आविष्कार की दिशा का निर्देश भी करती है। लेखक की सृजनात्मक प्रतिभा ने विज्ञान के क्षेत्र को वह देने का

प्रयत्न किया है, जो कि किसी समय में स्वर्ग की कल्पना ने मानव-सभ्यता को दिया था।

'अशोक' जी की लेखनी में सजीव चित्रण करने की क्षमता है। उनके विज्ञान-संबंधी ज्ञान एवं जीवन-संबंधी अनुभव और निरीक्षण ने, कृति में तन्मय करनेवाली विशेषता तथा समाप्त किए बिना न उठनेवाली रोचकता भर दी है।

मुझे विश्वास है कि इस कृति का समाज में स्वागत होगा, साथ ही यह आशा भी है कि वैष्णवजी की लेखनी द्वारा वैज्ञानिक कथा-साहित्य का अनवरत सृजन होता रहेगा।

महा शिवरात्रि, ५६
लखनऊ

—(डा०) भगीरथ मिश्र
एम० ए०, पी—एच० डी०
रीडर, हिन्दी विभाग, लखनऊ विश्वविद्यालय

अनुक्रमणिका

अध्याय			पृष्ठ
१—घर का गेहूँ	...	...	१
२—प्रयोगशाला में गेहूँ	...	...	५
३—निराशा	...	...	१४
४—सुषमा और सरोज	...	...	२४
५—बादामी लिफाफा	...	...	३२
६—वैकावि—वैज्ञानिक-काच-विक्रेता		...	३७
७—वह कुहासा	...	...	४५
८—डाक्ट राय से विदाई	...	...	५३
९—सूक्ष्मदर्शक यंत्र का सौदा	...	...	६०
१०—मोहक प्रस्ताव	...	...	६७
११—सैनिक गोदाम	...	...	७९
१२—अस्पताल में	...	...	८८
१३—कंपनी-कमांडर की दया	...	...	९८
१४—तार मिला	...	...	१०४
१५—सरोज के मन में काँटा	...	...	११५
१६—सुषमा भी आ गई	...	...	१२१
१७—युद्धक्षेत्र में वसन्त ऋतु	...	...	१२८
१८—साधु की बात	...	...	१३४

१९—पुष्पघाटी में १४६
२०—दुर्घटनाग्रस्त बालक—(१) १५१
२१—दुर्घटनाग्रस्त बालक—(२) १६५
२२—लूथर के व्यवहार में परिवर्त्तन १७२
२३—सुषमा फिर आ गई १७६
२४—वह निमंत्रण १८६
२५—राशनिंग दफ्तर १९१
२६—छुट्टी से वापसी १९९
२७—पलायन २१०

———

अन्न का आविष्कार

१—घर का गेहूँ

उस दिन भोजन के समय पति की बात याद करके सरोज सोचने लगी— 'क्या जीवन इतना ही सुखमय, संसार ऐसा ही प्रिय और समय इतना ही शान्त और घटनाहीन सदा रहेगा ? क्या मेरे पतिदेव वास्तव में देवतुल्य और सर्वगुण सम्पन्न हो सकते हैं ? ईश्वर, मैं उनमें कभी कोई दोष न पाऊँ। पारिवारिक झंझटों के मध्य हमने अपना विगत तेईस माह का दाम्पत्य जीवन कैसे आनन्द से बिता दिया ! मुझे एक दिन भी ऐसा याद नहीं आता जब मेरे पति मुझसे रुष्ट हुए हों। इसका श्रेय मुझे किंचित् भी नहीं है। मैं कहाँ ऐसी निर्दोष और निष्कपट हूँ। यह तो उन्हीं की सहनशीलता तथा उदारता का द्योतक है। यह शांति किसी भीषण आपत्ति का पूर्वकालीन छद्मय रूप तो नहीं है ? हम अब तक हवा में विशेष गति से उठते हुए विमान में बैठे हुए व्यक्तियों की भाँति आपद्पूर्ण परिस्थिति में तो नहीं हैं ? ऐसे विमान में जो कुछ ही क्षण पहले अतिशय तीव्र गति से चलकर अब स्वयं उपार्जित तीव्रवाही गतिशीलता पर शांति से बहता जा रहा हो, जिसमें चालक अपने हाथ के यंत्रों को ढील सी देकर थकान मिटा रहा हो। पर कहीं उसे अपने अंगों की इस शिथिलता के कारण झपकी-सी न आ जाए और एक तीव्र आघात से यह विमान धराशायी न हो जाए।'

उसका पति केशवचन्द्र कुछ ही मिनट पहले खाना खाकर प्रयोगशाला की ओर गया है। वह अनुसंधान करता है। अन्नों के विषय में विशेष शोध के लिए भारतीय अन्वेषिका संस्था की ओर से उसे दो सौ रुपये मासिक की वृत्ति मिलती है। वह साधारण वैज्ञानिक नहीं है, और न वैज्ञानिकों-सा सनकी अन्वेषक ही। उसके अनुसंधान, उसी के शब्दों में, सजग और सतर्क होकर, आँख-कान खोलकर होते हैं। उसे संकीर्णता से चिढ़ है। उसका दिन तो प्रयोगशाला में बीतता है, संध्या समय वह क्लब में टेनिस खेलता है, और रात को भोजन से पहले वह अपनी पत्नी सरोज से सङ्गीत सुनता और स्वयं भी सीखता है। उसके अनुसंधान का विषय भी, 'अदृश्य नक्षत्र की रश्मियाँ', 'साइबेरिया की काई के प्रोटोप्लाज्म' या 'चार करोड़ वर्ष पूर्व के प्रस्तरीभूत जीव' आदि अस्पष्ट और बेहूदा विषय नहीं हैं। वह सबसे प्रमुख और सबसे सम्बन्ध रखनेवाली दैनिक व्यवहार की वस्तु 'अन्न' पर प्रयोग करके संसार की आधुनिकतम और उत्कट अन्नाभाव की समस्या का हल ढूँढ़ने का प्रयत्न कर रहा है। उसे आशा है कि गेहूँ जैसी वस्तु को वह प्रयोगशाला में उत्पन्न करने में शीघ्र सफल हो जायगा।

अभी कुछ ही मिनट पहले, दराज से निकालकर चारपाई पर रक्खी हुई पति की कमीज पर सुई-डोरे से एक बटन को टाँकती हुई सरोज फिर सोचने लगी—'अन्नों के उत्पादन पर वे आविष्कार कर रहे हैं। वे कहते हैं, गेहूँ का पौधा एक यंत्र है। इस यंत्र में मिट्टी में पाए जानेवाले तत्वों को गेहूँ के दानों में परिवर्तित करने की क्षमता है। उनका कहना है, वे तत्व तो जिनको पौधा ग्रहण करके गेहूँ के दानों की रचना करता है, ज्ञात हैं। अब उस क्रिया का, जिसके द्वारा यह परिवर्त्तन सम्भव होता है, पता लगाना ही उनके अन्वेषण का विषय है। गेहूँ के पौधे के भिन्न-

भिन्न अवयवों के कार्य का अध्ययन करके वे एक ऐसी बड़ी मशीन का आविष्कार करेंगे, जिसमें कच्चे माल के रूप में मिट्टी, कूड़ा-करकट और पानी का उपयोग होगा और जो इस कच्चे माल से गेहूँ की खत्तियाँ कारखाने में प्रतिक्षण लगाती रहेंगी। इस प्रकार खेती करने की आवश्यकता न रहेगी।

संसार में अन्न की कमी को दूर करने का वे प्रयत्न कर रहे हैं। पर घर पर मुझ-सी मूर्खा नारी उन्हें भरपेट भोजन भी नहीं करा पाती। आज ज्योंही रोटी का वह टुकड़ा मुँह में डाला, दाँत तले कंकड़ी 'किर' से बोल उठी। उसे उगलकर कुल्ला करना पड़ा। दूसरा टुकड़ा लिया, वह भी ऐसा ही। वह सब मेरा ही दोष था। आटा देखकर गूँधती या गूँधने से पहले थोड़ा चखकर देख लेती, तो वे आज भूखे प्रयोगशाला न जाते। नौकर के भरोसे कोई काम ठीक नहीं होता। आज वे चावल ही खाकर गये हैं। भला चावल से, उतने जरा से चावल से, भूख मिट सकती है?'

"अरे जगन्नाथ", सरोज ने तत्काल कुछ याद आते ही पुकार कर कहा। नौकर गीले हाथों आ खड़ा हुआ।

"राशन कार्ड में अभी कुछ गेहूँ बाकी होगा। जा, दो रुपये के ले आ।" और दो रुपये निकालकर दे दिए।

वह फिर सोचने लगी—'पड़ोसिन की चक्की है। दिन भर खाली रहती है। वहीं बैठकर थोड़ा पीस लाऊँगी। उनके खाने योग्य निकल आयगा।' सुबह की बात अब भी उसके मन में एक टीस सी पैदा कर रही थी और वह उसी घटना को बार बार सोच बैठती थी—'दो कौर उठाए, और दोनों बार मिट्टी से मुँह भर गया। उन्होंने शान्त भाव से कहा—'लाओ चावल ही खा लें। आजकल गेहूँ अच्छा नहीं मिलता।' जरा भी कुपित नहीं

हुए। खाकर उठे और धुली हुई कमीज पहनने लगे। उसकी बाँह फटी निकली। मैंने तह खोलकर देखी भी न थी। दूसरी कमीज उठाई, वह भी बिना बटन के। फिर भी कुछ नहीं कहा। वह कालर वाली मोटी बनियाइन पहन ली और चल दिए हँसते हुए। कहीं क्रोध का लेश नहीं। भगवान्, कैसे देवतुल्य हैं वे, और कैसी अनपढ़ बावली-सी हूँ मैं।'

२—प्रयोगशाला का गेहूँ

इधर सरोज मन ही मन इस प्रकार के दिवास्वप्नों के मध्य कमरे की वस्तुओं, पति के वस्त्रों और मोटे-मोटे ग्रन्थों को व्यवस्थित करने में लगी थी और उधर विश्वविद्यालय की रासायनिक प्रयोगशाला में केशवचन्द्र अपने परीक्षकों को अपना प्रयोग समझा रहा था। उसके श्रोताओं के दल में विधान-सभा के सदस्य थे, जो वैज्ञानिक अनुसंधानों के लिए सरकारी सहायता देने में अर्थ-विभाग को परामर्श देते हैं। विज्ञान-परिषद् के सदस्य डाक्टर पंकज तथा सैनिक रसद विभाग के एक उच्च अधिकारी, कम्पनी कमांडर अजितसेन भी, प्रयोग की महत्ता को समझने के लिए भेजे गए थे।

अनेक क्षारों, अम्लों, लवणों तथा लाल-नीले रसायनों से भरी शीशियाँ, विभिन्न प्रकार की परख-नलियाँ, टोंटीदार, सारस की सी गर्दनवाले, चोंचवाले और सूँड़वाले पारदर्शक काँच के बर्तन लम्बी मेज पर यत्र-यत्र बिखरे पड़े थे। तेल की गैस का चूल्हा अपनी नीली तेज लौ से यंत्रों को उद्भासित सा किए था। उसके जलने से भर्र-भर्र की आवाज निरन्तर आ रही थी। कोई काला सा घोल एक काँच के घट में, तार की जाली के ऊपर बुनसन बर्नर पर रखा हुआ था। दो सूक्ष्मदर्शक यंत्र दाईं ओर की मेज पर टेढ़ी गर्दन किए मानो अन्वेषक के चिरपारिचित्य के कारण ढीट बालकों से अकड़े खड़े थे।

सारा वातावरण ऐसा था, मानो विज्ञान के किसी नए प्रोफेसर को अपनी कक्षा के उद्दंड विद्यार्थियों को किसी प्रयोग को समझाने

का प्रयत्न करना पड़ रहा हो। केशवचन्द्र अपने उन दर्शकों के ज्ञान के स्तर से अनभिज्ञ होने के कारण द्विविधा में था कि उसे अपने अनुसंधान का विषय आद्योपान्त समझाना पड़ेगा अथवा केवल 'क्रोमोसोम्स' के निर्माण से ही। उसके माथे पर पसीने की बूँदें झलक रही थीं। कुछ श्रोताओं की आँखों में लगे चश्मों पर बुनसन बर्नर का प्रकाश चमक रहा था और वह उनके मन्तव्य को समझ सकने से घबराया हुआ सा कभी एक परख-नली को उठा रहा था, कभी दूसरी को।

तभी डाक्टर पंकज ने, जो श्रोताओं में सबसे आगे की पंक्ति में थे, कहा—"आपके इन श्रोताओं में बहुत से लोग वनस्पति विज्ञान की सूक्ष्मताओं से परिचित नहीं हैं। उनका रसायन का ज्ञान भी सीमित है। इसलिए अपने प्रयोग को आप ऐसी सरल रीति से समझाएँ जिससे उसकी महत्ता से ये परिचित हो सकें।"

केशवचन्द्र ने किंचित् नतमस्तक होकर डाक्टर पंकज का आभार प्रकट किया। अब उसका कार्य आसान हो गया था। दराज खोलकर उसने अंगूरी-शर्करा का एक पैकेट निकालकर दर्शकों की ओर उसे नचाते हुए कहना आरम्भ किया—"यह अंगूरी-शर्करा है, जिसे डाक्टर ग्लूकोज कहते हैं। बहुधा अशक्त रोगियों की निर्बलता दूर करने के लिए इसे दिया जाता है। इसके घोल की रोगी को सुइयाँ भी लगाई जाती हैं। साधारण शक्कर गन्ने के रस से बनती है।"

एक श्रोता ने, जो विधान-सभा में भी अपनी चुटकीली बातों के लिए प्रसिद्ध था, कहा—"इतना हम भी जानते हैं कि शक्कर गन्ने के रस से बनती है और गन्ना खेत में पैदा होता है।"

केशवचन्द्र ने तनिक मुस्कराकर कहा—"लेकिन आप शायद यह नहीं जानते कि अंगूरी शर्करा अंगूर के रस से नहीं बनती।"

उसी व्यक्ति ने पूछा—"आपका मतलब है, वह नकली होती है!"

"नकली नहीं" केशवचन्द्र ने कहा—"असली अंगूरी-चीनी या ग्लूकोज, जो अंगूर के रस से बनती है, वह चीनी अब अन्य वस्तुओं से भी बन जाती है। अंगूरी-चीनी किन तत्वों से किस अनुपात में मिलकर बनती है, उसका रासायनिक सूत्र ज्ञात होने पर रासायनिकों ने उसे स्वयं बना लिया है। स्वयं तो नहीं कह सकते, बनी तो वह कार्बन, हाइड्रोजन तथा आक्सीजन के अणु-परमाणुओं के रासायनिक संयोग से; लेकिन अंगूर से नहीं, सेल्यूलोज से।"

वह व्यक्ति बोला—"समझ में नहीं आया।"

केशवचन्द्र ने कहा—"उदाहरण के लिए पानी को ले लीजिए। उसमें दो परमाणु हाइड्रोजन के हैं और एक आक्सीजन का। अब पानी का सूत्र हुआ एच-टू-ओ।" कहकर उसने अंग्रेजी में H_2O सामने श्याम पट पर लिख दिया।

फिर व्याख्याता की भाँति वह कहने लगा—"अब रासायनिक सूत्र के ज्ञात होने पर पानी को उत्पन्न करने के लिए चाहे आप हाइड्रोजन को आक्सीजन में इस अनुपात में रासायनिक क्रिया द्वारा मिला लीजिए, चाहे किसी ऐसे स्फटिक को तप्त करके, जिसमें जल हो, उत्पन्न कर लीजिए। मेघ का जल, स्फटिक का जल, हाइड्रोजन के जलने से उत्पन्न जल सब एक हैं। नदी या तालाब के जल में यदि कोई घुलनशील पदार्थ न मिला हो, तो वह भी इसी जल के समान है। ऐसे ही अंगूरी शर्करा को आप चाहे अंगूर के रस से बनाइए, चाहे या रासायनिक प्रक्रिया से, दोनों एक दूसरे के अनुरूप होंगे। उनके गुण या आकार में कोई भेद न होगा।"

अब केशवचन्द्र की आँखों में एक प्रकार की चमक सी आगई। उसकी मुद्रा उत्तेजित और तनिक रक्ताभ सी होगई। श्रोताओं पर

उसका, अपनी बात को अधिक से अधिक हृदयगम्य बनाने का प्रयत्न करनेवाले अध्यापक के भाषण का सा प्रभाव पड़ गया। वे तल्लीन होकर सुनने लगे। रुई के एक श्वेत फाहे को चिमटी से उठाकर श्रोताओं को दिखाकर वह कहने लगा—"यह है सेल्यूलोज का एक रूप। रुई कपास के वृक्ष का यह पुष्प, तेजाब के प्रभाव से अंगूरी चीनी का निर्माण कर देता है। सेल्यूलोज का, वनस्पति संसार में बाहुल्य है। सूखी लकड़ी में धातु की नगण्य मात्रा को हटा दीजिए, शेष सेल्यूलोज है। पेड़ के पत्तों में से हरे रंग को निकाल दीजिए, शेष सेल्यूलोज है।"

फिर रुई के फाहे को मेज पर रखते हुए उसकी दृष्टि रासायनिक घोलों को छानने में प्रयोग होनेवाले छन्ना कागज की गोल-गोल गड्डी पर पड़ गई। उसी में से एक गोल कागज को चिमटी से उठाकर वह अपनी ओजस्विनी आवाज में कहता गया—"यह कागज भी सेल्यूलोज है। कागज बनता है फटे-पुराने चीथड़ों, सूखी घास और लकड़ी की लुगदी से। अतः इन्हीं वस्तुओं से मानव-शरीर के पोषण के लिए उपयुक्त अंगूरी शर्करा बन सकती है।"

अब कागज को भी गोल गड्डी के ऊपर रखकर केशवचन्द्र ने काँच की एक परख-नली को उठा लिया। उस परख-नली में कुछ सफेद सा पदार्थ था। उस नली को श्रोताओं की ओर घुमाकर वह बोला—"हम जो भी अन्न खाते हैं, उसमें श्वेत अंश होता है। यह श्वेत अंश स्टार्च या श्वेतसार कहलाता है। मुँह में लार से मिलकर यह श्वेतसार भी शर्करा में परिवर्तित हो जाता है। गेहूँ, चावल, जौ, मक्का आदि सभी अन्नों में पाया जानेवाला आटा श्वेतसार ही है। श्वेतसार पर तेजाब की क्रिया से भी अंगूरी शर्करा बन जाती है। वास्तव में बाजार में जो अंगूरी शर्करा बिकती है, वह अन्नों के स्टार्च से ही निर्मित की जाती है। कभी-कभी आपने

गाय को सड़कों पर पड़े हुए रद्दी कागज के टुकड़ों को खाते देखा होगा। वह कागज गाय के पेट के पाचक तत्वों में स्थित अम्लों के प्रभाव से शर्करा में परिवर्तित हो जाता है। रुई, कागज आदि का सेल्यूलोज या अन्न और कंदमूलों के श्वेतसार दोनों रासायनिक दृष्टिकोण से एक ही वस्तुएँ हैं।"

उस नली को फिर यथास्थान रखकर एक छोटे से काठ के परख-नलीदान में रखे तीनों ट्यूबों को एक साथ उठाते हुए केशवचन्द्र तल्लीनता से कहता गया—"ये तीन नलियाँ हैं। इनमें एक में काठ की लुगदी, दूसरे में रुई तथा तीसरे में अन्न के दानों में पाया जानेवाला श्वेतसार पदार्थ है। तीनों कार्बोहाइड्रेड वंश के हैं, अर्थात् कार्बन, आक्सीजन और हाइड्रोजन बस यही तीन तत्व इन सबमें एक ही भाँति और एक ही अनुपात से मिले हुए हैं। अन्तर इतना ही है कि एक के अणु आकार में बड़े और बनावट में कठोर हैं और दूसरे के अणु छोटे और कम कठोर या परिवर्तनशील हैं।"

वाक्संयमी डाक्टर पंकज केशवचन्द्र की इस लम्बी वक्तृता से किंचित् उकताकर तथा यह सोचकर कि केशवचन्द्र उसके कहने का दूसरा ही अर्थ लगाकर प्रारंभिक बातों में ही उलझता चला जा रहा है, अब श्रोताओं को संबोधित करके बोल उठा—"आपके अनुसंधान का विषय है काष्ठ से अन्नों के स्टार्च बनाना।"

सैनिक अधिकारी ने कहा—"बात कुछ कठिन नहीं जान पड़ती। फ्रांस में हमें बनावटी शहद मिला था। वह असली शहद से बिलकुल भिन्न न था और शायद वह कोयले से बना था।"

"काष्ठ से ही नहीं" केशवचन्द्र फिर जोश में आकर बोलने लगा। वह कहना चाहता था कि कूड़ा, करकट, मिट्टी आदि से सीधे अन्न बनता है; किन्तु बीच ही में डाक्टर पंकज के बोल उठने पर रुक गया। डाक्टर पंकज कहने लगे—"योरप के बहुत से देशों में

कोयले से पेट्रोल बनता है। सभी कार्बन-मिश्रित वस्तुएँ अब कृत्रिम उपायों द्वारा बनाई जा सकती हैं। टाटरिक एसिड या इमली का सत तो लकड़ी के बुरादे से ही बनता है। कपूर, रबर आदि, यहाँ तक कि कस्तूरी या पैनिसिलन सी कई दुलर्भ औषधियाँ भी अब प्रयोगशाला में बन गई हैं।"

एक श्रोता ने कहा—"तब अन्न का बनना अब तक संभव क्यों नहीं हुआ ?"

"यही तो मैं कहता हूँ" केशवचन्द्र दुगुने उत्साह से बोल उठा—"अन्न के अब तक आविष्कार न होने का कारण है वैज्ञानिकों का सजग और सतर्क होकर अनुसंधान न करना। आधुनिक वैज्ञानिक केवल एक विषय को लेकर उसी का गहन अध्ययन करके साधारण दैनिक जीवन संबंधी अन्य वैज्ञानिक विषयों की पूर्ण अवहेलना कर देते हैं।" वह कहता गया—"बहुधा इस प्रकार के संकीर्ण अध्ययन को आजकल उत्तम समझा जाता है। एक भौतिक विज्ञान का प्रकांड पंडित यदि वनस्पति विषय में कुछ राय दे, तो उसका उपहास किया जाता है, अथवा एक सफल व्यापारी कला के विषय में कुछ कहता है, तो उसके कथन पर शंका की जाती है। खेल के मैदान में भी गोलकीपर को कभी आगे की लाइन में जाकर खेलने नहीं दिया जाता। गेंद रोकने जैसी साधारण बात में भी विशेषज्ञ बन गए हैं। इस प्रकार विशेष ज्ञान का उपार्जन भयंकर युद्धों का भी कारण होता है; क्योंकि एक व्यक्ति "वसुधैव कुटुम्बकम्" का आदर्श छोड़कर अपने ही परिवार तथा अपने ही प्रान्त या देश के हित में विशेषज्ञ बनने का प्रयत्न करता है। इस प्रकार यद्यपि भिन्न-भिन्न विज्ञान उन्नति की पराकाष्ठा पर पहुँच चुके हैं; पर न वैज्ञानिकों को जनसुलभ साहित्यिकों का सहयोग प्राप्त है और न जनसाधारण के सुख-दुख का। उनका ज्ञान उन्हीं तक या उन्हीं जैसे थोड़े से विशेषज्ञों तक ही सीमित है।

साहित्य उसे लिखकर जनता तक पहुँचा सकता था; पर वह तो साहित्य ही में विशेषज्ञ है, विज्ञान में नहीं। और वैज्ञानिक अपने विशेष ज्ञान में ही पारंगत है, उसका साहित्य या साहित्यिक से कोई संपर्क ही नहीं रह गया है। शायद साहित्यिक को भी सार्वजनिक मनोविज्ञान या "मॉबमैगटेलिटी" के किसी विशेषज्ञ की आवश्यकता पड़ेगी कि कैसे, कब, वह जनता से उसके सुख-दुख तथा आवश्यकताओं के विषय में पूछे और जाने। ऐसा संकीर्ण मार्ग वैज्ञानिकों ने अपने लिए बना लिया है।"

उसकी इस असंगत सी वक्तृता को सुनकर डाक्टर पंकज और भी उकता गए। अब तक केशवचन्द्र के पक्ष में होकर उसके कार्य में सहायता करने की उनकी अभिलाषा केशवचन्द्र के उस लम्बे भाषण से बदल गई थी। किंचित् व्यंग से मुस्कराकर बोले—"आप ऐसे संकीर्ण नहीं ज्ञात होते। कम से कम मुझे इस लम्बे व्याख्यान को सुनकर यही प्रतीत होता है कि आप निरे वैज्ञानिक ही नहीं, अच्छे वक्ता भी हैं।"

केशवचन्द्र की उल्लसित मुद्रा कुछ अप्रतिभ हो गई। उसने ट्यूबों को मेज पर रख दिया और वह धारावाही वक्तृता एकाएक शान्त पड़ गई और वह अपने दोनों हाथों को कमर पर लटकते हुए नीले झाड़न पर पोंछने लगा, यद्यपि पोंछने योग्य कुछ भी हाथों पर लगा न था।

सैनिक अधिकारी ने केशवचन्द्र को उत्साहित करने के अभिप्राय से तथा यह जानकर कि उसका पक्ष निर्बल पड़ रहा है, अंग्रेजी में डॉ० पंकज से कहा—"इसमें क्या सन्देह कि केशवचन्द्र बड़ा ही तेज विद्यार्थी था। वह पढ़ने में ही सर्वप्रथम न था, खेल में भी उसने कई बार पुरस्कार पाया है। यही नहीं, वह दौड़ने में क्रॉस—कण्ट्री का पहला रनर और वक्तृता देने में बड़ा प्रवीण

था। हाँ, अब यह देखना है कि उसे इस प्रयोग में कितनी सफलता मिलती है।"

लेकिन डॉ० पकंज का भाव नहीं बदला। वे अब उससे जिरह करने लगे—"अब यह बतलाइए कि आप किस स्टार्च के बनाने का प्रयत्न कर रहे हैं? वह किस अन्न का स्टार्च होगा?"

"गेहूँ का" केशवचन्द्र ने कहा—"गेहूँ के लिए ही तो संसार के सारे मानव त्राहि-त्राहि मचा रहे हैं।"

पंकज ने उस उत्तर की अवहेलना करके कहा—"स्टार्च बनेगा किस वस्तु से?"

"रद्दी कागजों, चिथड़ों और घास-फूस से।" केशवचन्द्र ने एक चीनी के बड़े प्याले को, जिसमें अखबार के कागज, कपड़े के टुकड़े, गन्ने की गडेरियों का चबाया हुआ भूसा आदि बड़ी गन्दी वस्तुएँ रक्खी हुई थीं, दूसरी दराज से निकालकर उनके सम्मुख रखते हुए कहा—"मैं चाहता हूँ कि प्रतिदिन शाम को किसी बड़े शहर में जितना कूड़ा-करकट जमा हो, उसी में से उस शहर के लोगों के भोजन के लिए पर्याप्त स्टार्च मिल जाय। इसी लिए मैंने ऐसे कूड़ा-करकट से स्टार्च बनाना आरम्भ किया है।"

डॉक्टर पंकज ने कहा—"कौन से गेहूँ का स्टार्च बनायँगे आप?"

"टी कैम्पैक्टम का।" केशवचन्द्र तत्परता से बोला।

"कितने क्रोमोसोम हैं उसकी न्यूक्लियस (नाभि) में?" पंकज ने अध्यापक की भाँति प्रश्न किया।

"सात जोड़े।" केशवचन्द्र ने कहा।

डॉ० पंकज ने मुंह बिचकाकर सिर हिला दिया। बोला—"महाशय, आप गलती कर रहे हैं। गेहूँ का बीज मानव सभ्यता से भी पुराना है। आपने अब तक परसीवाल की ही गेहूँ विषयक पुस्तक पढ़ी है। रूसी कृषि-विशेषज्ञ वैविलोव ने तेईस हजार प्रकार

के गेहूँ आविष्कार करके गिना डाले हैं। खाने के योग्य हिन्दुस्तानी गेहूँ (टी कैम्पैक्टम) के केन्द्र में इक्कीस क्रोमोसोम के जोड़े होते हैं। हाल्डेन का वंश—प्रणाली का शास्त्र पढ़ा है आपने? उसने बतला दिया है कि जिस देश में गेहूँ की जितनी अधिक जातियाँ पाई जायँगी, उतनी ही प्राचीन उस देश की सभ्यता होगी। गेहूँ की इनी-गिनी जातियाँ ही योरप में और अमेरिका में मिलती हैं। मिस्र, एबीसीनिया और सिंध तथा पंजाब की पहाड़ी तलहटियों की सभ्यता इस प्रकार सर्वप्राचीन सिद्ध हुई है। आप गेहूँ जैसे संश्लिष्ट पदार्थ पर अपना अनुसंधान न करके मकई, शकरकन्द या आलू जैसे आधुनिकतम वनस्पतियों पर प्रयोग करते, तो सफलता मिल जाती।"

केशवचन्द्र सुनकर स्तब्ध रह गया। सोचने लगा—'परसीवाल ने कुल तीन हजार प्रकार के गेहूँ लिखे हैं।'

पंकज ने फिर पूछा—"आपके बनाए हुए स्टार्च में बादामी पर्त्त पड़ गई है?"

उत्तर मिला—"नहीं।"

"तब सारा प्रयोग बदल डालिए।" पंकज ने अपने साथियों सहित बाहर निकलते हुए किंचित् मुस्कराकर कहा—"सजग और सतर्क होकर अनुसंधान कीजिए। आपका अध्ययन भी संकीर्ण है। बैविलोव मँगा लीजिए, हाल्डेन भी।"

३—निराशा

रुई के उस रेशे को, जिस पर अभी तेजाब का घोल डाला था, फिर माइक्रास्कोप (सूक्ष्म-दर्शक-यंत्र) के नीचे ध्यान से देखकर केशवचन्द्र ने एक गहरी साँस ली और मन ही मन कहा—'निश्चय ही बड़ी भारी गलती हो गई। रुई के रेशे में न तो गोलाकार अंश उत्पन्न हुए हैं और न बादामी रङ्ग की छाया ही दीखती है।'

प्रयोगशाला का नौकर अधीरता से उस बड़े अध्ययनशील अन्वेषक की तल्लीनता पर झुँझलाकर कई बार दरवाजे से अन्दर झाँक गया था कि कब वह अपना काम समाप्त करेगा और कब उसे कमरे को बन्द करने का अवसर मिलेगा। वह उसकी अधीरता को समझ गया था और कुछ ही मिनट पहले अपनी साइकिल को मँगवाकर बाहर निकलने की तैयारी करके पतलून की किनारी को मोड़कर लोहे का क्लिप भी लगा चुका था; पर फिर एक बार और अपना संशय मिटाने की अभिलाषा से उसने माइक्रास्कोप को घुमाकर एक नए नमूने को फिर ले लिया। वह उस रासायनिक क्रिया का फल फिर देख लेना चाहता था, जिसे उसने रुई के रेशों पर किया था, जिसका अन्तिम बार फिर निरीक्षण कर चुका था और जिस पर अब घूर-घूरकर देखने की आवश्यकता ही न थी। दूसरा परीक्षण भी समाप्त हो गया। कोई विशेष फल न निकला। वह ध्यानावस्थित-सा वहाँ खड़ा हुआ था। चौकीदार कोट पहने, पगड़ी बाँधे फिर दरवाजे के पास अटका हुआ सा दीख पड़ा। उसकी गोलाकार मुद्रा के बीच नाक बिलकुल लाल थी और नाक के नीचे मूँछें भी गोलाकार होकर दोनों होठों

को आच्छादित कर देती थीं। बन्द गले का खाकी कोट, जिसे वह घर जाते समय ही पहनता था, उसकी घर जाने की आतुरता का द्योतक था।

उस पर दृष्टि पड़ते ही केशवचन्द्र ने झटपट अपने डेस्क की दराज को बन्द करके उस पर ताला लगा दिया और बाहर आ गया।

जब वह घर पहुँचा, तो सदा की भाँति उसका मन प्रसन्न न था। वह अव्यवस्थित सा कुछ सोचता ही जा रहा था। इसी माह के अन्त में उसकी छात्रवृत्ति समाप्त हो जायगी। उसे अगले वर्ष के लिए न तो किसी प्रकार की और वृत्ति मिल सकती है और न कोई नौकरी ही। जिस शोध में वह लगा है, उसे छोड़ देना भी श्रेयकर नहीं। दो वर्ष व्यर्थ ही व्यतीत हुए जान पड़ते हैं।

वह पत्नी के समीप कुर्सी पर बैठ गया। नौकर ने चाय और आलू की तली हुई टिकियाँ लाकर रख दीं। वह चाय की प्याली को चार बड़ी घूँटों में समाप्त कर गया। टिकियों की ओर आँखें फाड़कर देखता ही रहा। उसकी पत्नी सरोज ने न जाने क्या पूछा, उसने उत्तर में केवल हुंकार भर दी।

चाय पीकर वह क्लब की ओर गया। वहाँ न तो कोई टेनिस का खिलाड़ी था और न उसके ताश के साथी। जेब में रक्खी घड़ी पर देखकर उसने यह जानना चाहा कि क्या वह ठीक समय से बहुत पहले तो क्लब नहीं आ गया। ठीक छः बजे थे। 'छः बजे' उसे सहसा ध्यान आया—'आज पाँच बजे ही गवर्नर साहब के आगमन में चाय-पानी के लिए वह क्लब के अन्य सदस्यों सहित सरकिट हाउस में आमंत्रित था। पर अब तो घंटा भर देर हो गई।' वह लौटकर घर आ गया।

सुबह का अखबार उसने उलट-पुलटकर देखा। बाजे पर चार बार एक सुन्दर लय को निकालने का प्रयत्न किया; पर एक

ही गीत के स्वर मिलाने में कई बार गलती कर बैठा। फिर झुंझला कर रोटी खाने बैठा और जल्दी ही बिस्तर पर जाकर लेट गया। लेटते ही उसे झपकी सी आ गई। पर घंटे भर के बाद ही एक बुरे स्वप्न को देखकर पसीने से तर होकर वह फिर जाग गया और अपने भविष्य के विषय में इस प्रकार सोचने लगा—

'लकड़ी के बुरादे से अन्न बन जाना आसान था। लकड़ी की लुगदी को वह कपास की भाँति कोमल और शुष्क रुई का रूप देने में सफल हो चुका है। उस रुई में लम्बे-लम्बे रेशे हैं। उन रेशों को अब स्टार्च में परिवर्तित करना है। पर उसकी अब तक की सारी शोध तो उस रुई जैसे कोमल सेल्यूलोज को गेहूँ के स्टार्च में परिवर्तित करने में ही केन्द्रित थी। गेहूँ के दाने के स्टार्च के परमाणुओं का रङ्ग हलका बादामी होता है। उसके केन्द्र में बयालीस क्रोमोसोम होते हैं। अब भी वह रुई के उन रेशों को रासायनिक क्रिया द्वारा स्टार्च में परिवर्तित कर सकता है। फिर बैक्टीरिया के प्रयोग से वह एक स्टार्च के कण में एक क्रोमोसोम को अंकुरित कर देगा। शायद ऐसी मिट्टी उसे मिल जायगी, जिसमें क्रोमोसोम की उत्पन्न करनेवाले सूक्ष्माणु-माइक्रोब उपस्थित हों।

'बैक्टीरिया' क्या नहीं कर सकते। वे दूध को दही में बदल देते हैं! शक्कर को शराब में, पत्थर को मिट्टी में। हाँ, बैक्टीरिया ही के कारण वह रुई को स्टार्च में बदलने में सफल होगा। ज्योंही क्रोमोसोम का मिश्रण उस स्टार्च के अणु में मिट्टी के सहयोग से हुआ, वह गेहूँ के आरम्भिक प्रयोग में सफल हो जायगा। मिट्टी के प्रभाव से ही शायद स्टार्च में गेहूँ का सा हलका बादामी रंग भी आ जायगा। एक क्रोमोसोम को स्टार्च के अणु के साथ जुड़ाने में यदि एक सप्ताह भी लग गया, तो शेष रहे तेईस दिन। उन शेष दिनों में वह क्रोमोसोमों की संख्या बढ़ाकर सात कर देगा। सात और सात मिलाकर चौदह क्रोमोसोम वाले उस जङ्गली गेहूँ

के बीजों में मिलनेवाले स्टार्च के अणु बन जायँगे। हो सकता है, ऐसे तीन अणुओं के संयोग से स्वतः ही वह बयालीस क्रोमोसोम वाला गेहूँ बन जाये। तब संसार के प्रमुख वैज्ञानिकों में उसका नाम होगा। उसके अन्वेषण सर्वोपरि और समयोचित कहे जायँगे और वह एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ही नहीं, एक प्रसिद्ध राजनीतिज्ञ और प्रसिद्ध अर्थशास्त्रवेत्ता भी कहलाया जा सकेगा। आँख और कान खोल चतुर्दिक दृष्टि रखकर शोध करने का उसका वह ध्येय तब सारे ऐसे वैज्ञानिकों की आँखें खोल देगा, जो संसार से विलग होकर अपने संकीर्ण अन्धकारमय आविष्कारों में संलग्न हैं—उन आविष्कारों में, जिनका महत्व समझने में जन-साधारण की पीढ़ियाँ व्यतीत हो जायँगी।'

फिर करवट बदलकर वह सोचने लगता—'सब असंभव है। गेहूँ इन अनुसंधानों के लिए उपयुक्त नहीं था। यदि मेरे अनुसंधान से प्रेरणा पाकर कोई और व्यक्ति आलू के स्टार्च पर प्रयोग कर रहा हो, तो उसे मुझसे पहले सफलता मिल सकती है।'

सरोज, उसकी पत्नी, प्रगाढ़ निद्रा में सो रही थी। रात्रि के तीसरे पहर में जाग उठने पर जिस प्रकार की असफल शंकाकुल आत्मप्रतारणा बहुधा मानव को आ घेरती है, वैसी तीव्र शंकाकुल आत्मग्लानि और चिढ़ से उसका वैज्ञानिक मन तिक्त हो गया। वह सोचने लगा—'कैसा अकेला हूँ मैं? पत्नी को, मेरी सहधर्मिणी को, मेरी निराशा का कुछ भी पता नहीं है। मैं जाग रहा हूँ, बेचैनी से करवट ले रहा हूँ और वह शांतिपूर्वक नींद का आनन्द ले रही है।'

वह कम्बल ओढ़कर बैठ गया। कमरे में बिजली का बटन दबाकर उसने प्रकाश कर दिया और कुढ़कर पत्नी को जगाकर यह बतला देना चाहा कि दो वर्ष के परिश्रम के उपरांत वह असफल हो गया। यह असफलता कक्षा में फेल हो जाने से भी अधिक

विनाशकारी है। फिर कठोर परिश्रम करके उत्तीर्ण हो जाने की सी बात इस असफलता के उपरान्त है ही नहीं। उसे चार महीने बेकार बैठा रहना पड़ेगा, फिर पुराने अध्यापकों की चाटुकारी करके शायद एल० टी० या बी० टी० के लिए प्रवेश पाने का प्रयत्न करना पड़ेगा। वहाँ भी सफलता मिलना सम्भव नहीं। सफल हो भी गया, तो साल भर के व्यय का प्रश्न है। सरोज को फिर अपने पिता के पास जाना होगा।

"सुनती हो!" पत्नी को हाथ से झकझोरते हुए उसने उसे जगाते हुए कहा—"तुम्हें अपने पिता के पास जाना होगा।" पर पत्नी ने उत्तर में केवल अपना हाथ समेट लिया और चादर को मुँह के ऊपर तक खींच लिया।

केशवचंद्र को रात भर जागने के बाद अपना स्वर ही परिवर्तित सा लगा। वह झुँझलाकर फिर सोने का प्रयत्न करने लगा। पर पूरी भाँति जागते रहने पर भी वह फिर आलस्य और अस्पष्ट विचारों के बोझ से उलझा हुआ सा आठ बजे तक बिस्तर पर पड़ा रहा। उठकर जब वह शौचादि से निवृत होकर कपड़े पहनने लगा, तो अपने को इतना थका हुआ सा ज्ञात करने लगा, मानो दिन भर के परिश्रम के उपरान्त शाम को किसी क्लब की ओर जाने की तैयारी कर रहा हो।

चाय पीते-पीते वह फिर सोचने लग गया। दो वर्ष व्यर्थ गँवाए। कुछ भी काम की बात न निकल सकी। अब फिर वह क्रम आरम्भ हो जायगा। अर्जियाँ भेजनी पड़ेंगी। कभी सेना में भर्ती होने के लिए इण्टरव्यू में जाना पड़ेगा! स्कूलों और कालेजों के विज्ञापन अखबारों में देखकर उनका प्रत्युत्तर देना होगा। फिर न जाने कब और कहाँ उसका भाग्य उसे लाकर पटकेगा। सिविल सर्विस और मुन्सिफी की परीक्षाओं के लिए अब दो साल पढ़ाई छोड़ने के बाद एक और प्रयत्न करना होगा।

खाना खाते समय उसने एक रोटी को परसी हुई थाली में से यह कहकर बिलकुल अलग रख दिया कि वह अच्छी प्रकार सिंकी नहीं है। फिर दो कौर खाकर घी की कटोरी को भी उठाकर अलग रख दिया. कहा—'इतना घी मुझे न दिया करो।' दो रोटी खा चुकने के उपरान्त फिर शायद अपनी अभी-अभी प्रकट की हुई राय को भूल कर उसने घी की कटोरी को परसे हुए भात के ऊपर ही उलट लिया और खाने लग गया।

अगले दिन जब वह प्रयोगशाला की लाइब्रेरी में जा रहा था, चौकीदार ने उसे एक पत्र दिया। वह रिसर्च कौंसिल का पत्र था। उसकी आशंका ठीक ही निकली। छात्रवृत्ति अगले वर्ष के लिए नहीं मिलेगी। यही नहीं, रिसर्च कौंसिल ने यह भी लिख दिया कि उसके अब तक के अनुसंधान रूसी वैज्ञानिकों के फलों के विपरीत हैं और विश्वास के योग्य नहीं जान पड़ते।

उस दिन अन्वेषण में उसका मन अधिक न लगा। प्रयोगशाला में बैठकर उसने एक पत्र अपने उस पुराने सहपाठी सेन को लिखा, जो किसी कम्पनी का कमाण्डर हो गया था। उस पत्र के साथ एक अर्जी किसी वैज्ञानिक के योग्य पद के लिए भी लिखकर भेज दी। काँच की नली में आज सेल्यूलोज के रेशों पर मिट्टी का प्रभाव देखने का प्रयत्न किया। पर जैसा कि वह चाहता था, कीटाणुओं का कुछ भी प्रभाव उन रेशों पर न हुआ। शायद वे तत्काल प्रभाव न डाल सकें, यह सोचकर उसने दो-तीन परख-नलियों में सेल्यूलोज और कीटाणु-मिश्रित मिट्टी के मिश्रण को डालकर समताप-प्रकोष्ठ में रख दिया। उसमें यीष्टाणुओं को मिला दिया कि शायद खमीर उठने सी कोई क्रिया रुई के रेशों को गलाकर स्टार्च में परिवर्तित कर दे। वह जानता था कि यह बात बिलकुल असम्भव है, क्योंकि स्टार्च और सेल्यूलोज दोनों एक ही वंश के हैं। और खमीर उठने से आक्सीजन का स्टार्च से संयोग हो जाता है। पर वह स्टार्च में

मिट्टी से बादामी रङ्ग लाना चाहता था, इसलिए सभी सम्भावित तथा असम्भावित बातें सोच बैठता था।

चाय पी चुकने के उपरान्त, इच्छा न होते हुए भी वह टेनिस खेलने क्लब जाने के लिए तत्पर हो गया। उसने कमरे में जाकर कपड़े बदले और मैले जूते को देखकर चिल्लाकर बोला—"वह जगन्नाथ अगर नौकरी छोड़कर चला गया, तो कम से कम जूता तो मोची से साफ करवा लिया करो। मोची तो रोज इधर से फेरी लगाता हुआ जाता है।"

फिर स्वयं ही उस जूते को साफ करने के अभिप्राय से उसने पत्नी से कहा—"बूट का पालिश कहाँ है? ब्रश भी लेती आना, मैं ही साफ करलूँ।"

पत्नी खाना खा रही थी। झटपट हाथ धोकर आ गई। दराज खोलकर ब्रश निकाला और पालिश की डिबिया भी। लेकिन वह डिबिया तो बिलकुल हलकी लग रही थी। खोलकर देखा, बिलकुल खाली थी। सहमी हुई सी सरोज बोली—"जूते का पालिश तो खत्म हो गया है। मुझे मालूम न था।"

"क्यों होगा?" वह बोला—"तुमसे जो भी चीज माँगो, वह समाप्त ही हो जाती है। जब तब मैं कोई चीज माँगता हूँ, तब तक वह समाप्त। दराज में कभी देखा तो होता। यह देखो, ब्रश पर कितनी धूल जमी है। और यह कोट देखो, इस पर बटन नहीं है।"

सरोज दो दिन से उसकी झुंझलाहट और अचानक ही परिवर्तित स्वर से परिचित थी, इसलिए कुछ न बोलकर वह सुई-डोरा लेकर बटन को कोट पर टाँकने बैठ गई।

थोड़ी देर में जब कोट ठीक हो गया, तो सरोज ने अपने पति को, बल्ले को बन्द करके उसी के चौखट में कसते हुए देखा। वह

क्लब जाने का विचार त्याग चुका था। सरोज उसकी ओर देखती रही।

कोट को उसके हाथ से सँभालते हुए केशवचन्द्र बोला—"मैं अब खेलने नहीं जाऊँगा।"

सरोज ने डरते हुए कहा—"आपकी तबियत ठीक नहीं है क्या?"

"नहीं, ठीक है, बिलकुल ठीक है।" उसने अपने माथे को किंचित् सिकोड़कर कहा। सरोज का अपनी विचारधारा में हस्तक्षेप करना मानो उसे खल रहा हो।

"तब आप मुझसे क्रुद्ध हैं। कुछ न कुछ बात अवश्य है।" सरोज ने कहा—"कल से न तो आप ठीक भाँति खाना खा-पी रहे हैं और न ठीक भाँति सो ही सके हैं।"

फिर थोड़ी देर अपने पाँवों पर ही दृष्टि गड़ाकर वह नतमस्तक हो बोला—"बात क्या है, यही कि मैंने दो वर्ष तक भयंकर परिश्रम किया। रात-दिन मैं कृत्रिम अन्न बनाने की चिन्ता में रहा, पर फल कुछ न निकला। अब इस महीने के बाद छात्रवृत्ति बन्द हो जायगी। आज रिसर्च कौंसिल का पत्र आ गया है कि मेरे अनुसंधान रूसी गेहूँ-विशेषज्ञ के फलों के अनुकूल नहीं हैं। मैं अनुसंधान में कहीं अन्यत्र भटकता ही रह गया। गेहूँ को लेकर अनुसंधान नहीं करना था। कहाँ जाऊँगा, यही समझ में नहीं आता। जो कुछ है, उसी में न जाने कब तक, कितनी अनिश्चित अवधि तक तुम्हें निर्वाह करना पड़ेगा।"

"क्या होगा!" सरोज ने कहा। उसका ध्यान सिर्फ दो सेर बचे हुए आटे, पाव भर ही बची दाल पर, बटुवे में बचे हुए तेरह रुपए तथा बिलों और आनेवाले दो सौ रुपयों पर था।

बातें आगे न बढ़ पाईं। दोनों रुआँसे से एक-दूसरे की ओर

देख भी सकने में समर्थ न रहे। सरोज ने एक गहरा उच्छ्वास लिया और अपने कमरे में आकर सोचने लगी कि उसका जीवन उसके पति के कार्यों में किसी भाँति भी सहायक नहीं है। इस निराशा में वह रत्ती भर भी सान्त्वना उन्हें नहीं दे सकती। कैसी कुलक्षणा है वह। उसी के विवाह के समय उनके पिता की मृत्यु हुई। उसी के ही कारण अपने चाचा और ताऊ से उनका मन-मुटाव हो गया और अब उसीके ही अपशकुन के कारण उन्हें अपने इतने प्रिय अनुसंधान-कार्य से भी हाथ धोना पड़ेगा। नौकरी तो उन्हें कभी पसन्द नहीं थी; पर करें क्या? जीवन-निर्वाह की व्यवस्था ही कैसे हो सकती है?

उधर पति कोट पहनकर टहलने चल दिया। पत्नी से अपनी निराशा का जिक्र कर देने पर उसे कुछ चैन सा आगया। वह अपना आधा दुख भूल गया। फिर वह सोचने लगा, शायद अब भी सफलता मिल जाय। अब भी स्टाचे में वह बादामी छाया सी स्पष्ट दीख पड़े। यदि ऐसा हुआ तो उसे शीघ्र ही पूना बुला लिया जायगा। बनावटी गेहूँ का नया कारखाना खुल जायगा। लाखों-करोड़ों टन गेहूँ के कारखाने चीड़ और बाँस के वृक्षों के मध्य खोल दिए जायँगे।

अगले दो दिन फिर वह पूरे परिश्रम से प्रयोगशाला के काम में जुट गया। शाम को समय पर लौटकर चाय पीने के उपरान्त वह क्लब भी जाता रहा। उसकी सारी आशा उन दो परख-नलियों पर थी, जिनमें उसने मिट्टी, यीस्ट और सेल्यूलोज का मिश्रण रक्खा था। हवा के बबूले से उनमें उठते हुए वह देख रहा था। रासायनिक प्रक्रिया की समाप्ति की प्रतीक्षा कर रहा था।

चौथे दिन उसने उन नलियों में से उस मटमैले मिश्रण को निकाला। सोचा, शायद भगवान् अब तक उसके धैर्य्य की परीक्षा

ले रहे थे। आज शायद सात क्रोमोसोम वाला वह स्टार्च का, हलके बादामी रंग का, अणु दीख जाए।

सारा परीक्षण वह इसी आशावादिता से दीप्त होकर तल्लीनता से करता रहा और ऐसीटोन, ईथर, अलकोहल आदि को उस मिश्रण से अलग करके जब वह रेशे पर आकर रुका, तो न उसमें कोई बादामी रंग मिला और न गोलाकार स्टार्च के अणु ही।

४—सुषमा और सरोज

उस शाम प्रयोगशाला से घर न जाकर केशवचन्द्र सीधे क्लब की ओर चल दिया। ताश के खेल में व्यस्त होकर और अन्धाधुन्ध बाजी लगाकर वह अपनी झुँझलाहट को भुला देना चाहता था, जिससे अपने इस अन्धकारमय भविष्य के भय से कुछ देर के लिए छुटकारा मिल सके।

ब्रिज के खेल में आज उसका साथी वकील हो गया था। वे दोनों तीन बाजियाँ लगातार जीत गए। यह जीत कई दिनों बाद अचानक ही हो गई थी। हारनेवाले दोनों खिलाड़ियों के प्रति दयाभाव-सा उसके मन में उत्पन्न हो गया। जब उनमें से एक ने सदा की भाँति, केशवचन्द्र से, शायद अपनी झेंप मिटाने को कहा कि आपने अपनी शादी की वह बात अभी तक नहीं बताई, तो वह झटपट उस घटना का वर्णन करने को उत्सुक हो गया। उसके क्लब के साथी प्रतिदिन उससे पूछा करते कि वह अविवाहित रहने का प्रण कर चुकने पर भी क्यों अपने ही इरादे से विपरीत इतनी शीघ्रता से बिना किसी तैयारी के विवाह कर लाया। केशवचन्द्र उन सबके उपहास का उत्तर केवल इतना ही कहकर दे देता कि वह एक मनोरंजक कहानी है, जिसे वह अवश्य किसी उपयुक्त अवसर पर सुनाएगा।

ताश की गड्डी को एक ओर सँभालकर केशवचन्द्र अपनी शादी की बात कहने लगा—"उस दिन अचानक एक चाय पार्टी का निमंत्रण मिला था। मैं इसी द्विविधा में था कि निमंत्रण भेजनेवालों को मैं जानता तक नहीं हूँ, फिर कोई विशेष कारण भी मुझे, इस अपरिचित व्यक्ति के लड़के के जन्मदिन के उपलक्ष में होने-

वाली चायपार्टी में बुलाए जाने का नहीं है, मुझे जाना चाहिए या नहीं कि मुझे मेरे चाचाजी का एक पत्र मिला। पिताजी की मृत्यु के उपरान्त यह उनका पहला पत्र था। पत्र में लिखा था कि वे भी उस चायपार्टी में सम्मिलित होने जा रहे हैं, एक आवश्यक बातचीत के लिए मेरा वहीं उनसे मिलना जरूरी है। यद्यपि चाचाजी मुझसे सदा खिंचे-खिंचे-से रहते थे और पिताजी की मृत्यु के उपरान्त तो उन्होंने मुझसे कोई सम्बन्ध-सा ही नहीं रखा था; पर मेरी इच्छा तो सदा यही थी कि मैं उनसे तथा उनके परिवार से संलग्न रहूँ; क्योंकि अपने माता-पिता को खो चुकने के उपरान्त संसार में ऐसा कोई तो न था, जिसे मैं अपना कह सकता था। विज्ञान की पुस्तकों अथवा प्रतिदिन व्यवहार में आने-वाले अपने यन्त्रों से ही, नाता जोड़कर तो संसार के सब काम नहीं चल सकते। तब यह बात मुझे सदा खटकती रहती कि मैं संसार से विलग सा होकर एक कृत्रिम जीवन-यापन कर रहा हूँ। अतः मैं उस अपरिचित मेजमान के घर उस शाम चला गया।

"चाय का आयोजन एक सुसज्जित कमरे में हुआ था। मेरे पहुँचते ही आमन्त्रित लोग, जिनमें मेरे चाचाजी भी थे, एकाएक मेरे स्वागत के लिए उठ खड़े हुए। चाचाजी ने आमंत्रित सभी लोगों से मेरा परिचय कराया। एक-एक करके जब उस किशोरी से चाचा ने परिचय कराया, तो मेरा हृदय घट-घट-सा शब्द करने लगा। मैं यह सोचने लगा कि क्यों मैं आज अपने सर्वोतम वस्त्र पहनकर नहीं चला और सुबह अच्छी प्रकार दाढ़ी बनाकर प्रयोग-शाला क्यों नहीं गया।

"वही किशोरी आपकी भावी पत्नी होगी?" वकील ने हँसकर पूछा।

"अगर यही अभी बतादूँ" केशवचन्द्र बोला—"तो सारी कहानी का ही रहस्य समाप्त हो जायगा। चाचा ने बतलाया कि वह मेजमान साहब की लड़की है। बी० ए० में पढ़ती है। लड़की

ने किंचित् सकुचाकर हाथ जोड़ दिए। मैंने भी अभिवादन के हेतु दोनों हाथ जोड़कर 'नमस्ते' कहा।'

"चाय आगई, पर मुझे रह-रहकर कुछ ऐसा भास हो रहा था कि मानो वे सब आमंत्रित व्यक्ति मेरे विषय में सोच रहे हों। यही नहीं, मकान के अन्दर से भी बच्चे, बूढ़े तथा कुछ युवतियाँ भी मेरी ओर अनोखी जिज्ञासा भरी आँखों से देखने के लिए कोई न कोई बहाना बनाकर उस कमरे में आने लगीं। मैं स्वयं बड़ा संकोच का अनुभव करने लगा। वे लोग मेरी एम० एस-सी० की परीक्षा के विषय में पूछने लगे और मैं बालकों की भाँति अस्पष्ट प्रत्युत्तर देने लगा।

"सुषमा संगीत में सर्वप्रथम रहती है।" चाचा ने कहा—"क्यों सुषमा, यहाँ तो सब परिवार के ही लोग हैं। कुछ सुनाओगी?"

"मेरे लिए यह प्रस्ताव बड़ा असह्य था। मन ही मन चाचा पर मुझे क्रोध आया कि ये बूढ़े लोग क्यों ऐसी असङ्गत बातें कह बैठते हैं। एक लड़की को परेशान करने के लिए इससे बुरा प्रस्ताव न होता। पर मेरे आश्चर्य का ठिकाना न रहा, जब उस सौन्दर्य-मूर्त्ति ने मुझे ही सम्बोधित करके कहा—'क्या आपको संगीत से प्रेम है?'

"मैंने पहली बार पूरी दृष्टि से उसकी ओर देखा। इकहरे शरीर की वह बाला सचमुच बड़ी सुन्दर थी। प्रायः ऐसी अविवाहित युवतियों को श्वेत रङ्ग के वस्त्र अच्छे नहीं लगते; पर गौर-वर्ण की वह लड़की अपने श्वेत ब्लाउज और श्वेत साड़ी में अपूर्व लावण्यमयी लगती थी। मैं उसके प्रश्न का उत्तर देना ही भूल गया और मुझे ऐसा ज्ञात हुआ, मानो वह सब जमघट दूर भविष्य की किसी महत्वपूर्ण घटना का आरम्भ हो। यद्यपि यह घटना कहीं बड़ी दूर सी लगती थी, पर मैं मानो एक जाल में बँधता जा रहा था और वह घटना मुझे बरबस अपनी ही ओर

खींचती ले जा रही थी। मैं अपना आत्मबल क्षण-क्षण खो रहा था। मेरा बालकों का सा वह व्यवहार इसी अपरिहार्य आकर्षण का द्योतक था। पर क्षण भर में मैं सँभल गया। उस लड़की के प्रश्न को सुनकर फिर मन ही मन उसका उत्तर सोचकर मैंने मानो दूर स्थित भँवर की स्थिति का पूर्ण अनुभव करके अपने पाँवों पर खड़े होकर कहा—'मुझे संगीत से विशेष अभिरुचि नहीं है।'

'ध्वनि की विशेष तरंगों का तो' वह लड़की ध्वनि शब्द पर जोर देकर बोली—'मैं समझती हूँ, आप विज्ञान में अध्ययन करते होंगे। संगीत, विज्ञान और कला की एक सन्धि है।'

"वह पांडित्य मुझे बिलकुल ही न रुचा। लड़की निश्चय ही बड़ी दम्भी है, यह जानकर मुझे कुछ निराशा सी हुई। उसका मन रखने के लिए मैंने कहा—'ध्वनि भौतिक विज्ञान के अन्तर्गत आती है। मैं हूँ रसायन का विद्यार्थी। मेरा विषय बायो-कैमिस्ट्री है।'

"पर वह लड़की तो माननेवाली न थी, बोली—'जल-तरंग में यदि जल के स्थान पर कोई उससे हलका तरल पदार्थ लिया जाय, तो संगीत में और भी माधुर्य आ जाता है। पदार्थों का घनत्व ध्वनि तरंगों पर अवश्य प्रभाव डालता है।'

मैंने कहा—'यह निश्चय ही अनुसंधान करने योग्य विषय है, पर आप कुछ सुनाइए तो सही।'

"वह लड़की जब पियानो पर बैठकर कुछ गत बजाने लगी, तो मैं उसकी लम्बी-लम्बी लटों पर दृष्टि गड़ाए कुछ सोचता ही रह गया। चाय की समाप्ति पर चाचाजी के संकेत पर मैं उठकर दूसरे कमरे में गया। उस लड़की की प्रशंसा करते-करते चाचा कह बैठे कि मेरे पिताजी उसी शहर में सरोज नामक एक दूसरी

लड़की से मेरी शादी की बात तय कर चुके थे। मैंने उनसे पूछा कि तब उस संबंध को तोड़ना अब क्या उचित होगा ?

"उन्होंने कहा—'उस लड़की के ग्रह अच्छे नहीं हैं। उसकी मँगनी करके लौटते समय ही तुम्हारे पिताजी की मृत्यु हुई थी। लड़की के पिता उनसे कई बार आग्रह कर चुके हैं; पर मैं उस लड़की को अपने कुटम्ब में लाकर और अनिष्ट मोल लेना नहीं चाहता।'

"मैंने मन ही मन सोचा, पिताजी उस मोटर-दुर्घटना में मरे थे। एक लड़की ही उस दुर्घटना का कारण थी, यह बात तो उचित और विश्वास के योग्य नहीं जान पड़ती। और चाचा से कहा—'ग्रहों पर अथवा उसके शुभाशुभ फलों पर विश्वास करना तो ठीक नहीं है।'

चाचाजी ने कहा—'पर वह लड़की है ही ऐसी कुलक्षणा। सुनते हैं, ऐसी ही एक दुर्घटना पहले भी उस लड़की के साथ हो चुकी है। अब उसकी शादी होना असम्भव है। तुम जैसे व्यस्त वैज्ञानिक के लिए तो सुषमा, यही लड़की जो आज तुमने देखी, उपयुक्त है। उसी की शादी की बात का निश्चय करने के लिए आज यह चाय-पानी का आयोजन हुआ है।'

"मुझे एक बार फिर चाचाजी के इस अनोखे व्यवहार के प्रति मन ही मन बड़ा क्षोभ हुआ। मैं सोचने लगा कि तत्काल उठकर चला जाऊँ और फिर कभी उनका मुँह तक न देखूँ। पर उनका अनादर करने को मेरी तनिक भी इच्छा न थी, इसलिए बरबस बैठा रहा।

"जब चाचा ने पूछा—'क्या लड़की तुम्हें पसन्द है ?' तो एक प्रचंड क्रोध की ज्वाला सी मेरे सिर से पैर तक दौड़ गई। मैं कुछ न बोला और केवल उनकी ओर ताकता ही रह गया। वे मेरी चुप्पी का नितान्त विपरीत अर्थ लगाकर उसी भाँति बोलते रहे—

'तुम्हारे पिताजी की मृत्यु के बाद मेरे ही ऊपर तो तुम्हारे सुख दु:ख का उत्तरदायित्व है। अपनी संतान से भी अधिक प्रिय तुम मुझे हो। यदि मैं अपनी जिम्मेवारी को भली भाँति पूर्ण न करूँ, तो भाई साहब की आत्मा मुझे कोसेगी। काश, वे उस अभागी लड़की के पिता से बात करने न जाकर, जैसा मैंने तब कहा था, इसी सुषमा के विषय में राय दे देते, तो आज यह बुरा दिन तुम्हें देखने को न मिलता। उनकी मृत्यु ही न होती!' यह कहकर वह रूमाल लेकर अपनी आँखें सुखाने लग गए।

"घड़ी की ओर देखकर जल्दी का बहाना करके मैंने कहा—'मुझे अभी कहीं जाना है।' और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए, मैं बाहर निकल आया। बाहर निकलते समय न मैंने किसी को अभिवादन किया और न अन्य आमंत्रित व्यक्तियों से जल्दी चले जाने के लिए क्षमा-याचना ही की।

"मैंने साइकिल पकड़ी और सीधे सरोज के पिता के मकान पर पहुँचा। मकान का पता लगाने में अधिक देर न लगी। मैंने एक वृद्ध सज्जन को अपना परिचय दिया। ज्ञात हुआ, वही लड़की के पिता हैं। रुँधे हुए कंठ से उन्होंने मेरा स्वागत किया और कुछ देर तक चुप रहने के बाद कागज में लिपटी एक छोटी सी वस्तु अन्दर से लाकर मुझे दे दी। कहा—'आपके चाचाजी का पत्र आया था। यह है आपके पूज्य पिताजी की धरोहर।'

"मैंने उस वस्तु को लेने के लिए हाथ बढ़ाया, पर तत्काल यह समझकर कि वह शायद पिताजी द्वारा दी गई अँगूठी होगी, मैंने अपना हाथ खींच लिया। कागज से गिरकर सचमुच वह अँगूठी फर्श पर गिर गई।

"मैंने कहा—'क्या आपकी लड़की मेरे सम्मुख आ सकती है?' वृद्ध ने इस प्रश्न को सुनकर संकुचित आँखों को पूरा खोलकर मेरी ओर देखा। मानो अपनी एक दृष्टि में मेरे गुण-दोषों को तौल

कर यह अनुमान लगाना चाहा कि विज्ञान के गहन अध्ययन से मेरे मस्तिष्क के तंतु ढीले तो नहीं पड़ गए। बात भी कुछ ऐसी ही थी। अभी पाँच मिनट भी मुझे उनके समीप बैठे न हुए थे और मैंने ऐसा बेतुका प्रश्न कर दिया। पर अपनी कही हुई बात वापस लेना तब संभव न था। ध्वनि-तरंगें अपना कार्य कर चुकी थीं।

"एक उच्छ्वास लेकर वृद्ध ने कमरे का एक चक्कर लगाया, पंखे को उठाकर गद्दी पर बैठी एक मक्खी को उड़ा दिया, फिर कहा—'जो कुछ आपके चाचा ने लिखा है, उसके उपरांत आप क्या आशा मुझसे.....'

"मैं उत्साहित होकर बीच ही में बोल उठा—'चाचा ने आपको क्या लिखा है? वह मुझसे किंचित् भी सम्बन्ध नहीं रखता। मैं आज आपके पास आया हूँ यही निश्चय करके कि यदि आपकी पुत्री में कोई दोष नहीं, तो मैं पिताजी की आज्ञा के अनुसार विवाह की बात पक्की करके ही घर लौटूँगा। बात ही नहीं, शादी करके जाऊँगा। चाचाजी के व्यवहार का यही एक प्रतीकार होगा।' यह कहते-कहते मैं भी उनके साथ कमरे का चक्कर लगाने लग गया।

'आप शायद मेरी इस उत्तेजना का कारण न समझे होंगे।' मैंने उस वृद्ध से कहा और उस चायपार्टी की सारी बात उन्हें सुना दी।

"वृद्ध अब कुछ शान्त हुए। मुझे दूसरी बार बैठने का आदेश हुआ। फिर चाय पीनी पड़ी। पर उनकी लड़की सामने न आई। मैं शीघ्र निश्चय कर लेने के लिए जिस बात को चाहता था, वही न होती थी। वृद्ध अपनी आपबीती सुनाने लग गए।

"इसी बीच एक ताँगा आकर दूकान के सामने रुका। आढ़त की दूकान के आगे सभी लोग इसी भाँति आते रहते हैं, अतः मैंने

उस ओर ध्यान न दिया। एक छाया सी दूकान के अन्दर ही आती दीखी। मैं अब भी उस ओर पीठ किए बैठा रहा। अपनी भावी पत्नी सरोज की वह वेशभूषा मुझे सदा स्मरण रहेगी। पूरे आस्तीन की उस रंगीन अँगरखी के नीचे वह पीले रंग की तिरछी धारियोंवाली साड़ी पहने थी। उसने मेरे अस्तित्व की पूर्ण अवहेलना करके वृद्ध से कहा—'पिताजी कुंजियों का गुच्छा दे दीजिए।'

"उस शान्त मधुर स्वर को सुनकर मैंने सहसा ही वक्ता की ओर देखा और वक्ता ने मेरी ओर। उन उज्ज्वल बालकों की सी अबोध आँखों के पार मैंने एक सुखमय जीवन का प्रतिबिम्ब एक ही क्षण में देखकर मन ही मन समझ लिया कि यही सरोज है। ऐसी निष्कपट बालिका को उसके गुण-दोषों का मूल्यांकन करने के अभिप्राय से देखने का अपना आग्रह मुझे तब बड़ा उपहास्य लगा। वह लड़की कुंजियों का गुच्छा लेकर गई और मैंने वृद्ध से अपने आग्रह के लिए क्षमा चाही।

"उसी सप्ताह आर्यसमाज की रीति से मेरा सरोज से विवाह हो गया। चाचाजी उसमें सम्मिलित नहीं हुए, न उनके कोई कुटुम्बी ही।"

अपनी विवाह की उस बात को समाप्त करके केशवचन्द्र बोला—"मैं सोचता हूँ कि मुझ जैसे वैज्ञानिक के कार्य में जो अन्वेषकों में पाई जानेवाली सनक, संकीर्णता और दम्भ से विमुक्त रहने का प्रयत्न करता है, विवाह भी कोई बाधा नहीं डाल सकता।"

५—बादामी लिफाफा

उस कहानी के प्रभाव से अपने विवाह की स्मृति के सजग हो जाने से घर लौटते समय उसका मन कुछ हलका अवश्य हो गया। पर अपने मकान के समीप पहुँचकर वह फिर आज के परीक्षण का स्मरण करके सोच उठा कि सेल्यूलोज पर बादामी रंग बैक्टीरिया से नहीं चढ़ सकता, किसी रासायनिक रंग से ही यह किया जा सकता है। कमरे में पाँव रखते ही उसकी दृष्टि अपनी पुस्तकों, उन पुरानी कुर्सियों और फीके परदों पर पड़ी और उसी अनिश्चितता ने उसे आ घेरा। ताश खेलकर व्यर्थ समय गँवाकर और निरर्थक जीत के प्रभाव में अपनी आपबीती कह डालने पर वह स्वयं अपने को ही धिक्कारने लगा। उसके कमरे की वे वस्तुएँ उसे सम्बोधित करके मानो कह रही थीं—'नहीं, तुम हमारे प्रभाव से नहीं बच सकते। तुम कुछ भी उन्नति नहीं कर सकते।'

अपने पढ़ने के कमरे के अन्दर मेज पर उसने बादामी रंग का एक लम्बा लिफाफा देखा।

तत्काल वह अपने को ही सम्बोधित कर गुनगुनाने लगा—"बादामी रंग? कागज पर यह बादामी रंग! ऐसे ही गेहुए रंग से तो वह स्टार्च को रँगना चाहता है!" मेज पर बिजली-लैम्प के समीप ले जाकर उसने उस लिफाफे के रंग को अच्छी प्रकार देखा। कहा—"ठीक ऐसा ही रंग मुझे चाहिए।"

पर यह कोई रासायनिक रंग है या बैक्टीरिया के द्वारा बना हुआ रंग? यह सोचकर उसने आलमारी से अपने सूक्ष्मदर्शक-यंत्र को निकाल लिया। यही एक यंत्र मेरी अपनी सम्पत्ति है—शायद यही मेरा एकमात्र मित्र। दुःख के इन दिनों में सच्चे मित्र

की भाँति इसी का एकमात्र आसरा मुझे है। खुर्दबीन को उसने ठीक बिठाया। कैंची से लिफाफे का एक तिल भर बड़ा कोना काटकर लेन्स के नीचे रख लिया और ध्यान से उसे देखने लगा। रासायनिक रंग के अंग स्पष्ट झलक उठे। वह उसे वैसा ही छोड़-छाड़कर हताश-सा अपनी चारपाई पर धम से बैठ गया। जूते खोलकर मोजों को चारपाई के किनारे पटकता हुआ पत्नी से बोला—"कुछ नहीं, सब व्यर्थ है।"

"लिफाफा देख लिया था?" पत्नी ने कहा।

उसने कहा—"हाँ, देख लिया रंग रासायनिक है। स्वाभाविक नहीं है। मिट्टी से सेल्यूलोज को रंगना कठिन है।"

"कोई सरकारी हुक्म ज्ञात होता है।" पत्नी ने कहा।

"कौन हुक्म?" उसने सिर खुजलाते हुए कहा।

"वही लिफाफा, देख तो लिया?" फिर पत्नी ने पूछा।

"अच्छी प्रकार देख लिया, कुछ नहीं है," बिना पतलून खोले वह चारपाई पर चित लेटकर बोला—"जरा उस सूक्ष्मदर्शक-यंत्र सँभाल दो।"

पत्नी ने उसके कमरे में आकर माइक्रास्कोप उठाया और सँभालकर आलमारी में रख दिया। उसने भी सोचा, यही एक सम्पत्ति हम दम्पति की अपनी है। पति ने उसे बहुत सस्ता खरीदा था। अब सुना है, इतना सुन्दर माइक्रास्कोप दो हजार रुपए में भी नहीं मिल सकता। उसके पति उस माइक्रास्कोप को कैसे यत्न से रखते हैं। सरोज को भी बड़ी सावधानी से उसे सँभालने और बन्द करने की शिक्षा मिली है। कई बार उसके गुणों का वर्णन भी हो चुका है। आलमारी बन्द करते-करते वह फिर सोचने लगी—'शायद अब इससे भी हाथ धोना पड़ेगा। खाने-पीने की वस्तुओं के समाप्त होने में अब देर नहीं है। रुपया कहीं से न मिला, तो इसे ही बेचना न पड़े।'

फिर मेज पर और कागजों को यथास्थान रखते हुए उसकी दृष्टि उस बादामी लिफाफे पर पड़ी। उसे बन्द ही देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। पति को लिफाफे को उठाकर लैम्प के निकट ले जाते हुए उसने देख लिया था। तब अब तक वे देख क्या रहे थे, यह बात उसकी समझ में किंचित् भी न आई। उसने उसे उलट-पलटकर देखा कि लिफाफे को पति ने खोलकर फिर बन्द तो नहीं कर दिया। पर ऐसा भी कुछ ज्ञात न हुआ। उसका केवल एक कोना ही किंचित् नुचा था। लिफाफे के सरकारी टिकटों पर उसने डाकखाने की मुहर को लैम्प की रोशनी में पढ़ा—"कानपुर"

कानपुर की चिट्ठी थी। कोने पर 'मिलिटरी स्टोर्स' सा कुछ पढ़ा जाता था। उसने खोलकर उसे पढ़ा। अंग्रेजी में लिखा था: तुम्हारी दिनांक.....अर्जी के प्रत्युत्तर में लिखा जाता है कि.....पाँच सौ रुपए...।

सरोज दौड़कर पति के पास गई और चिट्ठी उन्हें दिखलाकर बोली—"यह तो तुम्हारी नियुक्ति का हुक्म है। पाँच सौ रुपए मासिक की नौकरी मिलने का हुक्म!"

"पाँच सौ रुपए मासिक? सच! अरे, चिट्ठी को खोलकर तो मैंने पढ़ा ही न था"—केशवचन्द्र ने एकाएक उठकर उसे अपने हाथ में लेते हुए कहा। उस सप्ताह सैनिक गोदाम में रासायनिक परीक्षकों के लिए जिन साइन्स ग्रेजुएटों की नियुक्ति का विज्ञापन हुआ था, उसी के लिए उसकी अर्जी पर उसके पुराने सहपाठी ने यह नियुक्ति करादी, यह बात वह तत्काल समझ गया।

फिर उस पत्र को अपनी गोद में लेकर वह चारपाई पर लेट गया। आखें मूँदकर मन ही मन एक-दो-तीन करके पचास तक गिन गया। यह आदत उसे बचपन से ही थी। तब वह चलते-चलते सड़क पर मोटर को अपने पीछे आता हुआ देखकर मन ही मन

सोचना कि अगर मोटर ठीक सौ गिनने तक मुझे पार कर गई तो कैमेस्ट्री में मुझे पूरे के पूरे नम्बर मिलेंगे; नहीं तो उतने ही कम, सौ पूरे गिनने से जितने पहले वह मेरे पास आ जायगी। कभी वह इसी भाँति गिनकर कक्षा में अपने प्रथम या द्वितीय उत्तीर्ण होने की भविष्यवाणी-सी करता। अब वह सोचने लगा कि यदि सरोज १०० गिनने तक कुछ भी न कहेगी तो इसका अर्थ यह हुआ कि उसे मेरे जीवन का यह परिवर्त्तन, इस नौकरी का स्वीकार कर लेना, रुचिकर नहीं है।

"आप तो पत्र को छोड़कर न जाने क्या देखते रहे?" सरोज ने चारपाई के निकट आकर कहा। उस समय केशवचन्द्र पचपन गिन चुका था।

आँखें खोलकर वह बोला—"मैं दूसरों को शिक्षा देता हूँ कि आँख-कान खोलकर आविष्कार करना चाहिए। पर इस समय मैं स्वयं गलती कर बैठा। अन्धे की भाँति बिना उस पत्र को खोले ही उसके बाहरी रंग से प्रभावित होकर यह देखने लग गया कि वह रासायनिक रंग है या कीटाणु उपार्जित स्वाभाविक रंग।" उसे मन ही मन प्रसन्नता हुई कि सरोज को उसका नौकरी कर लेना बुरा नहीं ज्ञात होगा।

"अब रुपए-पैसे की चिन्ता तो कुछ दिनों के लिए दूर हुई।" कहकर उसने फिर सरोज की आँखों में हर्ष या उल्लास के प्रदर्शन को पढ़ने का सा प्रयत्न किया।

"पर इस आविष्कार का श्रेय मुझे मिलना चाहिए।" सरोज ने अब पूर्ण रूप से प्रफुल्ल मुद्रा में कहा—"आप तो लिफाफे को फेंक ही चुके थे।"

खूब जोर से हँसते हुए केशवचन्द्र ने कहा—"अन्न का, नहीं नहीं, भोजन का आविष्कार। हाँ, यह तो तुम्हीं ने किया। संसार

की अन्न-समस्या का हल करने मैं चला था। तुमने घर के अन्न की समस्या तो निश्चय ही हल कर डाली। तुम भी वैज्ञानिकों की ही भाँति संकीर्ण विचारोंवाली हो।"

"वैज्ञानिक की पत्नी तो हूँ ही। क्या सचमुच नौकरी कर लोगे?" किंचित् गम्भीरता से चारपाई पर बैठते हुए वह बोली—"आपको फिर युद्धक्षेत्र में भी तो जाना पड़ेगा। वहाँ जीवन कम कष्टमय नहीं है।"

"आह! यह तो मैं भूल ही गया था।" केशवचन्द्र ने कहा—"तुम्हारी सूझ का यह दूसरा प्रमाण है। वैज्ञानिक की एक और विस्मृति को तुमने ताड़ लिया।"

६—वैकावि—वैज्ञानिक-काँच-विक्रेता

"आजकल तुम दो-तीन दिन से जल्दी छुट्टी पा जा रहे हो," वैकावि ने प्रयोगशाला के चौकीदार की साइकिल को रोककर कहा—"कभी दूकान पर आते-जाते भी नहीं। तुमने देखा, मेरा बनाया हुआ रसोई का कमरा ?"

वैकावि उस समय सामने की दूकान से पान खरीदकर ला रहा था। रासायनिक प्रयोगशाला का वह लाल लाल नाकवाला चौकीदार, उसका नाम भी लालबहादुर था, उसका मित्र था और वैकावि की दूकान की आधी चीजें इसी चौकीदार के कारण बिकती थीं। वैकावि दोहरे बदन का ठिंगना युवक था। कान से कम सुनता था। उसकी आँखें भी कमजोर थीं और चश्मे के मोटे-मोटे लेन्सों से ढँकी वे आँखें दर्शकों को उभरी हुई सी लगती थीं। अपने मोटे शरीर को वह नित्यशः कोट, पतलून, टाई से सजाकर ही दूकान पर बैठने आता था। उसकी दूकान के पीछे कच्चा अहाता था, जिसमें दो कमरे थे। एक में वह, उसकी पत्नी और उसका बच्चा तीन प्राणी रहते थे और दूसरे कमरे को वैकावि ने रसोई का कमरा बनाया था। कमरा तो पहले से ही बना था। बात इतनी ही थी कि वैकावि ने वहाँ पर लोहे की चादरों की एक उलटी कीप (फनेल) सी बनाकर उसी के नीचे चूल्हा बनाया था। कीप की नली काफी लम्बी थी और पक्की छत के किनारे उसे थोड़ा मोड़कर समकोण पर दूसरी नली छत से बाहर की ओर धुवाँ जाने को बनी थी। अपने उस लोहार की सहायता से, जो उसकी दूकान पर काम करने आता था, वैकावि ने रसोई की इस चिमनी का निर्माण किया था।

'वैकावि' के इस अद्भुत नाम के विषय में कुछ समझना पड़ेगा।

नाम तो उसका महेन्द्र था, पर उसकी दूकान के साइनबोर्ड पर तीन मोटे-मोटे अक्षरों में पहली पंक्ति में लिखा था 'वै-का-वि', फिर नीचे कुछ पतले अक्षरों में इस सूत्र की व्याख्या सी करके लिखा था 'वैज्ञानिक-काच-विक्रेता।' उसकी दूकान रासायनिक प्रयोगशाला से बाईं ओर जानेवाली गली के अन्त में राजपूत साइंस विद्यालय के हाते के समीप थी। आसपास और कोई बड़ी दूकान नहीं थी, केवल विद्यालय के नौकरों के एक कमरेवाले निवासस्थानों, ताँगे-वालों की झोपड़ियों और दो-एक खोंचेवालों के और सब साधारण बस्तियाँ ही उस ओर थीं। विद्यार्थियों के लिए उसकी दूकान एक प्रिय स्थान था। इसका कारण था उसकी कालेज के अध्यापकों तथा विद्यार्थियों के प्रति अद्भुत जानकारी। वह कम बोलता था, पर उसकी मृदु संक्षिप्त सी बात में एक अनोखा आकर्षण विद्यमान रहता था। बहरे होने के कारण शायद उसके कानों की कुछ शक्ति मस्तिष्क की ओर चली गई थी, क्योंकि उसकी स्मरण शक्ति विलक्षण रूप से तेज थी। वह प्रायः अपने सभी ग्राहकों के नाम जानता था और विद्यालयों की उस नगरी के उन सभी विद्यार्थियों के नाम याद रखता था, जो एक बार भी उसकी दूकान से फिल्टर—पेपर, टेस्ट ट्यूब, लिटमस कागज या स्पिरिट की बत्ती लेने आए हों। वह अपनी बातों के मध्य में रसीले उप-हासपूर्ण व्यंगों से विद्यार्थियों को प्रसन्न करके पहले ही उनका नाम पूछना कभी न भूलता था। साथ ही यह भी बतला देता था कि हाँ, तुम्हारे ही गाँव का वह सुरेश पहले भी आया था। अच्छा, तुम्हारे ही नाम का वह लड़का क्रिश्चियन कालेज में है। उससे जरूर मिल लेना। अच्छा, वे मोहन चन्द्र तुम्हारे बड़े भाई थे, जो पारसाल डिप्टी कलक्टरी की प्रतियोगिता में उत्तीर्ण हुए थे। आते रहना भाई। कोई काम हो, किसी प्रोफेसर या मास्टर से, तो मैं तुम्हारे साथ चला चलूँगा।

यह बात न थी कि वह किसी विद्यार्थी का काम पड़ने पर उसकी सहायता न करता। अपनी महत्वपूर्ण बात उसके द्वारा कराने में विद्यार्थी स्वयं झिझकते थे, क्योंकि उसके बहरे होने के कारण दो तीन बार एक ही बात कहनी पड़ती थी। और प्रतियोगिता के इस द्वन्द्व में बालकों की वे बातें दो-तीन बार चिल्लाकर कह डालने पर अपनी महत्ता स्वयं ही खो डालती हैं। उसकी दूकान पर एक ही प्रकार के यन्त्र या काँच के अलग-अलग ग्राहकों के लिए अलग-अलग दाम होते थे, विद्यार्थी यह भली-भाँति जान गए थे। परखनलियाँ एक पैसे से एक रुपए प्रति नली तक वह बेच देता था। जिन नलियों को 'जीना' ग्लास की बनी बतलाता था, उन्हें वह विश्वविद्यालय की रसायनशालाओं के चौकीदारों से खरीदता था। चौकीदार टूटे काँच की परख-नलियों के कूड़े-करकट को लाकर उसे कौड़ियों के भाव बेच जाते थे और वैकावि रोज शाम को दूकान बन्द करके बिजली की रोशनी में अपनी मेज के किनारे बैठकर उन्हें एक-एक करके बीनता था। बीनकर बेकाम काँच को अलग करके उन नलियों को एक ओर सँभालकर रख देता, जिनके केवल उपरी किनारे ही टूटे हों। फिर इन नलियों को साफ करके उनके ऊपरी किनारों को नोकीले चकमक पत्थर की रगड़ से एक ही झटके में काटकर ठीक करके रख देता था।

उसकी वे नलियाँ जो अमेरिकन ग्लास के नाम पर बिकतीं थीं, हरिद्वार के समीप किसी काँच की फैक्टरी से बनकर आतीं और इंग्लिश ग्लास भी इसी प्रान्त के किसी साधारण काँच की चूड़ियों के कारखाने से बनकर आता था। वैकावि उनपर स्वयं हिन्दी के लेबिल लगाता। यह पूछने पर कि वह ऐसा क्यों करता है और अमेरिकन अथवा अंग्रेजी कारखानों के चिन्ह उन पर क्यों नहीं रहने देता, वह तत्परता से उत्तर देता—"मेरे 'फर्म' का नाम कम प्रभावशाली नहीं है। वैकावि चीजें विदेश में भी प्रसिद्ध हैं। फिर

हिंदी के प्रचार का तो मैंने दृढ़ निश्चय किया है।" वह यह भी बतलाना न भूलता कि जब उसने पहले पहल यह दूकान खोली थी तो इसका उद्घाटन करने हिन्दी के अमुक प्रसिद्ध विद्वान और वैज्ञानिक, जो कभी उसके गुरु रह चुके थे, आए थे। दूकान खोलने के एक दो वर्ष बाद तक, जब तक उसके सहपाठियों की संख्या समीपवर्ती कालेजों में पर्याप्त थी, उसे सभी महेन्द्र नाम से पुकारते थे; पर ज्यों-ज्यों एक-एक करके वे कम होते गए, उसका विद्यार्थी जीवन भी उससे मानो एक-एक पग हटता चला गया और उसे महेन्द्र नाम से पुकारनेवालों की संख्या भी उसी अनुपात से कम होती गई। अन्त में विद्यार्थी जीवन के अस्तित्व तथा समस्त उपकरणों की समाप्ति पर उसका वह नाम भी बिलकुल ही लुप्त होता चला गया। अब उसे सब वैकावि ही कहकर पुकारते हैं।

उसे दूकान खोले हुए अभी पूरे पाँच वर्ष भी नहीं हुए। उसके पहले वह भी राजपूत साइन्स विद्यालय का विद्यार्थी था। वहाँ के प्रत्येक अध्यापक से वह अब भी परिचित है। काँच के यन्त्रों के विषय में वह अब इतना दक्ष समझा जाता है कि कभी-कभी बहुमूल्य काँच के यन्त्रों की मरम्मत करने स्थानीय पाठशालाओं में बुला लिया जाता है।

चौकीदार ने साइकिल दूकान के आगे खड़ी कर दी। वैकावि उसके आगे स्टूल बढ़ाकर स्वयं कुर्सी पर बैठकर बोला—"रसोई का कमरा दिखाऊँ तुम्हें। उसे मैंने स्वयं बनाया है।"

चौकीदार बोला—"आपने टीन का वह भोंपू जैसा लगा रखा था, वह तो मैं देख ही गया था। क्या कुछ और बनाया है?"

"अच्छा, तो तुमने देख लिया है उसे? चिमनी ऐसी सुन्दर बनी है कि धुएँ का नामोनिशान नहीं है। कमरे में भी कहीं कालिख नहीं है।"

फिर आज की आई हुई उस काँच की टोकरी की ओर देख

कर वह क्षण भर ध्यानमग्न-सा उससे प्राप्त होनेवाले काँच के मूल्य का अनुमान करके लाभ और हानि का मन ही मन अन्दाज लगाकर बोला—"आजकल छुट्टियों के कारण माल कम आता है और वह भी सब कूड़ा। इस टोकरी में मुश्किल से तीन चार नलियाँ काम की होंगी। विद्यार्थियों के हाथ का जो माल आता है, उसका कहना ही क्या। ये प्रोफेसर और रिसर्च करनेवाले तो जब तक परखनली का चूरा-चूरा न हो जाए, उसे छोड़ते ही नहीं हैं। हाँ, तुम्हारा क्या हाल है? आजकल तो चार ही बजे घर चले जाते हो।"

"केशवचन्द्र ने काम छोड़ दिया है।" लालबहादुर ने प्रसन्नता से मुँह बिचकाकर हाथों से भी उस बहरे श्रोता को समझाने के लिए संकेत करके जतला दिया।

"समाप्त? केशवचन्द्र का अनुसंधान समाप्त हो गया?" वैकावि ने अपनी आँखें तरेरकर चौकीदार से अपने बहरे कानों से सुनी अर्धस्पष्ट और अविश्वास के योग्य बात की पुष्टि कर लेने के लिए पूछा।

"हाँ, हाँ, नौकरी मिल गई है उन्हें। आजकल रसायनशाला में नहीं आते हैं।" चौकीदार ने फिर चिल्लाकर कहा।

"चले गए हैं या अभी यहीं हैं?" वैकावि ने उत्सुकता से पूछा।

"पहली तारीख तक जायँगे। अभी यहीं हैं।" चौकीदार उसी प्रकार चिल्लाकर बोला।

सुनकर वैकावि को प्रसन्नता हुई। मन ही मन उसने दिल्ली से आए उस पत्र पर विचार किया। सोचा—'डाक्टर विश्वास ने उसे एक सूक्ष्मदर्शक यन्त्र के लिए लिखा है। वे अच्छा यन्त्र चाहते हैं। दाम भी अच्छे देने को तत्पर हैं। कहीं किराए पर भी कुछ समय के लिए मिल जाय, तो उसके लिए भी तैयार हैं। यदि केशव-

चन्द्र अपने यन्त्र को बेच जाए या किराए पर ही दे दे, तो मेरा काम बन जायगा। डा० विश्वास के लिए इस समय माइक्रास्कोप का प्रबन्ध कर देना देहली में भी वैकावि को प्रसिद्ध कर देगा। अपने विद्यार्थियों को तो वे निश्चय ही वैकावि की ही दूकान का ठिकाना बताया करेंगे।'

पान की डिबिया को चौकीदार की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा—"जाने से पहले मुझे सूचित कर देना। मिलूँगा।"

चौकीदार ने कहा—"क्या कोई बिल बाकी है?"

"बिल तो नहीं है।" कहकर वह वैकावि ने निश्चय किया कि अपने मन की बात इस चौकीदार से कह देनी चाहिए, पर फिर दूसरे ही क्षण इस निश्चय को बदलकर वह बोला—"बड़े सज्जन पुरुष हैं, बड़े विद्वान्। जाते समय दर्शन करूँगा। मैं तो सोच रहा था कि कभी उनकी सहायता से अपने हाथ से बनाए गए चूल्हे में उनके द्वारा आविष्कृत सिन्थैटिक गेहूँ की रोटी बनाऊँगा। तुम शायद यह नहीं जानते कि वे मेरे पुराने सहपाठी हैं।"

'सहपाठी।' लालबहादुर ने मन ही मन सोचा। 'यह भी खूब रही! जिसे देखो, वैकावि उसी को अपना सहपाठी, अपना आत्मीय बतलाता है।' फिर वैकावि से चिल्लाकर व्यंग से कहा—"जरूर मिलना, कुछ दे जायँगे तुम्हें भी।"

वैकावि ने फिर उसकी आँखों में देखकर यह जानना चाहा कि क्या अब अपने मन की बात इससे कह डालनी चाहिए। कुछ देर चुप रहकर फिर लालबहादुर के अंतिम शब्दों की मन ही मन मीमांसा सी करते हुए उसने सोचा—'दे जायँगे मुझे।' यह बात लालबहादुर ने व्यंग में कही या केशवचन्द्र सचमुच ही अपने निजी रसायनों और यन्त्रों को यहीं छोड़कर किसी को दे जा रहे हैं। लालबहादुर की मुद्रा पर उपहास की मन्द मुस्कराहट को स्पष्ट देखकर उसे आगे कुछ कहने का साहस न हुआ।

फिर सहसा ही अपने व्यवसायी मस्तिष्क की एक नई सूझ के लिए उसने अपने ही को सराहा। उठकर वह पास की आलमारी से अपनी बही उठा लाया। अंतिम बार रसायनशाला को जो चीजें गई थीं, उनका कमीशन उसने लालबहादुर को अभी तक नहीं दिया था। यद्यपि यह बात कहीं लिखित रूप से नहीं थी कि लालबहादुर के द्वारा जो सामान रसायनशाला में जायगा, उस पर कुछ कमीशन वह उसे देगा। किन्तु उसने स्वयं एक दिन लालबहादुर से कहा था कि वह ऐसी खरीदारी के लिए एक पैसा प्रति रुपया उसे दिया करेगा।

"ढाई रुपए होते हैं तुम्हारे।" उसने बही बन्द करते हुए कहा—"लेते जाओ।"

"मेहरबानी है आपकी।" लालबहादुर ने निःसंकोच हाथ पसारते हुए कहा।

रुपया लेकर लालबहादुर अपनी साइकिल तक चला गया, फिर भी माइक्रास्कोप के विषय में कहने का साहस वैकावि को न हुआ।

लालबहादुर जब साइकिल पर चढ़ने को उद्यत हुआ तब उसके कन्धे पर हाथ रखकर वैकावि ने धीरे से उसकी पीठ पीछे मानो किसी दूसरे व्यक्ति से कहा—"तुम तो अपने ही आदमी हो। एक काम और कर देना। मेरी दूकानदारी तो तुम्हीं लोगों के भरोसे चलती है।"

"क्या काम है? जरूर करूँगा।" लालबहादुर बोला।

बहरे वैकावि ने उसका प्रत्युत्तर नहीं सुना। वह कहता गया—"तुमसे क्या छिपाना। इस काम को कर दोगे तो तुम्हें ऐसा साधारण कमीशन नहीं मिलेगा। मैं इस बार दस रुपए तक इनाम तुम्हें दे दूँगा। केशवचन्द्र से माइक्रास्कोप दिला दो।"

"खरीदोगे ?" लालबहादुर ने आश्चर्य से कहा। वह ऐसे सूक्ष्मदर्शक यन्त्रों के मूल्य से परिचित था। और यह भी जानता था कि केशवचन्द्र का अपना खुर्दबीन बड़ा ही सुन्दर है। इसलिए वैकावि की बढ़ती हुई सम्पन्नता पर उसे ईर्ष्या सी हुई।

"खरीदवा दो या किराए पर दिलवा दो।" वैकावि ने बिना उसकी ओर देखे ही कहा। मानो वह किसी बुरे षड्यन्त्र में उसकी सहायता की याचना कर रहा हो।

७—वह कुहासा

"क्या विवाह के उपरांत अपने सारे भावी वैवाहिक जीवन भर हम इतने ही प्रसन्न और ऐसे ही सुखी रहेंगे। सरोज, तुम क्या सदा ऐसी ही मधुर और ऐसी ही आकर्षक प्रतीत होगी?" विवाह के कुछ ही सप्ताह उपरान्त कहे हुए अपने पति के इन शब्दों को आज सरोज मन ही मन दुहरा रही थी। उस दिन एक प्रगाढ़ आलिंगन में आबद्ध करके फिर सहसा ही उसे मुक्त करते हुए खिड़की के उस पार दार्शनिक की भाँति दृष्टि डालकर उसके पति ने ये शब्द कहे थे। तब, सरोज को याद है, इसी कमरे में नये सोफा-सेट की चमचमाती फूलवाली गद्दियों पर वे दोनों बैठे थे। खुले कालर की नीली कमीज के बीच उसकी सुदृढ़ ग्रीवा पर एक क्षणिक उच्छ्वास का उद्गमन स्पष्ट दीखा था। पहले तो सरोज को वह शंका निराधार और वह उच्छ्वास कृत्रिम उपहास सा लगा था; पर पति की आँखों की ओर देखकर उनमें अंकित गम्भीरता से उसे एक भय मिश्रित आशंका सी हुई थी। ऐसा भास हुआ था मानो दूर भविष्य में पति की दृष्टि किसी शीतल सत्यता पर आकर टिक गई हो तथा वह दूरी स्वयं सरोज की अपरिपक्व अनुभवहीन दृष्टि से ओझल हो।

अब वह सोचने लगी—'यह आशंका अब सच हो रही है। हममें अब कभी-कभी एक-दूसरे से लड़ने की प्रवृत्ति आती जा रही है। हम दोनों एक-दूसरे को अत्यधिक प्रिय हैं। हम कई बार विधाता को ही अपने मिलन का श्रेय दे चुके हैं। हम एक दूसरे के सुख-दुख में आजीवन सहयोग देने का प्रण कर चुके हैं। इसमें सन्देह नहीं कि हम लड़ना नहीं चाहते हैं; पर फिर भी

ऐसे खिंचे से रहते क्यों हैं ? यह वैषम्य, यह क्षोभ, हमारे बीच क्यों आ जाता है ? कलह का आरम्भ होता क्यों है ?

'यह तो ईश्वर ही जानता है कि स्वयं मैं सदा सहिष्णुता से काम लेने का प्रयत्न करती हूँ। पुरुषों का स्वभाव उग्र होता है। उसकी कल्पना करके ही मैं सदा यह तो पहले ही समझकर अपना मुँह खोलती हूँ कि वे शायद बिना किसी कारण के ही बरस पड़ेंगे। पर उनका वह गुमसुम स्वभाव, वह चुप्पी, कुछ भी समझ में नहीं आती। उन्हें वैज्ञानिक और आविष्कारक का जीवन प्रिय है। पर सरकारी नौकरी के मिलने पर उस दिन उन्होंने हर्ष ही प्रकट किया था। नौकरी मिलने पर यदि वे प्रसन्न हैं, तो यह प्रसन्नता दैनिक व्यवहार में स्पष्ट क्यों नहीं झलकती ? और यदि अप्रसन्न हैं तो किस बात से ? यह मुझसे स्पष्ट क्यों नहीं कह देते ? मुझे तो यह स्पष्ट धुँधला सा व्यवहार असह्य हो गया है। हम दोनों के मध्य यह कुहासा दिन-प्रतिदिन प्रगाढ़तर होता जा रहा है। मैं उन्हें प्रतिदिन अधिकतर प्यार करने का प्रयत्न कर रही हूँ और उनके समीप रहकर अपनी वेदना का परिहार करती हूँ। वे खड़े हों और मैं जाकर उन्हें किसी बहाने किंचित् छू लूँ, तो स्वयं मेरे शरीर और मन पर छाया हुआ वह मनोद्वेग, वह कुहासा थोड़ी देर के लिए उनके उस विद्युत् स्पर्श से एकाएक लुप्त सा हो जाता है। पर उनकी ओर से तो वही गम्भीर मुद्रा, वही नपे-तुले वाक्य और वही तरल, कातर दृष्टि पाकर सारा उत्साह फिर जाता रहता है। कलह का कारण, मैं इसे क्या कहूँ, कलह ही तो इसे कहा जा सकता है, यद्यपि इसमें न शब्दों का जोश है, न भावों की तीव्र अभिव्यक्ति, पर है यह कलह। इसमें न केवल मेरी साँस ही घुटती जा रही है; किन्तु मन और मस्तिष्क को भी एक अनोखी शून्यता असती जा रही है।

'हाँ, कलह का आरम्भ तो इस पलंग की बात से हुआ था।

वे पलंग के पाए से खेल रहे थे। कहा था—'अगर तुम कहो तो यह सब फरनीचर बेच दूँ।' उस समय बिना कुछ सोचे ही मैंने पूछा था—'कौन सा फरनीचर?' वे चुप हो गए, उन्होंने मेरी ओर एक बार देखा, और फिर मेरे प्रश्न का उत्तर न दिया। तब कुछ कार्यवश महरिन के हमारे निकट आ जाने पर उन्होंने अपने घर की इस बात पर तर्क करना ठीक न समझा हो, फिर भी उसके चले जाने पर तो वे इस विषय में कुछ न बोले।

'मैंने जो कुछ कहा, वह कठोर न था और न उन्होंने ही जो कुछ पूछा, वही अनिष्ट। पर यही, इतनी सी बात थी। ये छोटे से दो वाक्य कठोर घर्षण की भाँति जिस कलह की चिनगारी को उत्पन्न कर गए, वह हमारे उभयनिष्ठ जीवन को दहकती चली जा रही है। सुख-दुख के तानेबाने से हमारे वैवाहिक जीवन की यह एक चादर अब झुलसती हुई दो कुरूप टुकड़ों में फटती सी जा रही है।

'कौन सा फरनीचर वे बेचना चाहते हैं, यह तो मुझे स्वयं समझ लेना चाहिए था। घर में और फरनीचर है ही क्या। दो बड़े पलंग, एक सोफा सेट और एक बड़े आइनेवाली मेज, यही तो सारा फरनीचर है। हमारे विवाह के समय यह हमें मिला था। इसी को वे बेचने को कहते होंगे। विवाह की इन वस्तुओं को हम दोनों इतना सुन्दर और इतना प्रिय मानते आए हैं कि इन्हें बेचने का विचार आज तक कभी हमने नहीं किया था। वास्तव में विवाह के दूसरे ही दिन से हमारा इनका साथ है। और इनसे बिछुड़कर इनका परित्याग करके हम बिना इनके अपने वैवाहिक जीवन के अस्तित्व की कल्पना भी नहीं कर सकते। अपने दुःख और अभाव के दिनों की कल्पना करके हमने जिस त्याग और आत्म-संयमी भावी जीवन का कई बार आयोजन किया है, उसमें इन वस्तुओं के विक्रय का विचार भी नहीं किया है। हम बिना नौकर के

रहेंगे। हम अपने आप घर के भोजन आदि की व्यवस्था कर लेंगे। मैं किसी स्कूल में अध्यापिका हो जाऊँगी। वे अपने अनुसंधानों में लगन के साथ काम करते जायँगे। वर्षों तक, जब तक उन्हें सिद्धि प्राप्त न हो, हम नए वस्त्रों के बनाने का विचार त्याग देंगे और यथासम्भव पुरानों से ही काम चलायँगे। हमारा भोजन बिलकुल साधारण रहेगा, केवल हम दोनों के जीविकोपार्जन के योग्य। ऐसे अनेक संकल्प हमने उनकी छात्रवृत्ति के बन्द हो जाने के समाचार को सुनकर कभी साथ बैठकर और कभी अकेले-अकेले किए हैं। पर यह कभी न सोचा था कि उस शुभ अवसर पर प्राप्त इन मंगलमय वस्तुओं को हम बेच डालेंगे।

'पर इन्हें बेचना ही उन्होंने ठीक समझा होगा। कानपुर में उन्हें रहने को सरकारी मकान मिलेगा; मेज-कुर्सियाँ भी सरकारी होंगी। इन सब वस्तुओं की तब आवश्यकता ही क्या रहेगी? मैं इन्हें बेच देने के विरुद्ध तो हूँ नहीं। उन्होंने यही सोचा होगा कि सरोज को इनका विक्रय सह्य नहीं है। शायद मेरी दूर अन्तःचेतना में यह बात पहले ही से वर्त्तमान रही होगी कि हमारी पलंगों की यह जोड़ी, यह ड्रेसिंग टेबिल और सोफा सेट वैवाहिक जीवन की ही भाँति अपरिहार्य हैं। इसीलिए उनके उस प्रश्न को बिना पूर्ण रूप से हृदयंगम किए यथोचित उत्तर देने से पूर्व ही, मेरी भावभंगी और "कौन सा फर्नीचर" इन शब्दों को उच्चारण करने की प्रतिक्रिया से ही उन्हें यह स्पष्ट हो गया कि मुझे यह सह्य नहीं है। यद्यपि मैं स्वयं यह जान भी न सकी।

'हाँ, अब स्मरण हो आया, उससे पहले दिन उन्होंने कहा था कि कानपुर जाने में उन्हें इस मकान का भी किराया चुकाना पड़ेगा। पैंतीस रुपया प्रतिमास इसके किराए के लिए ही व्यय करना पड़ेगा। मैं तब समझी थी, शायद वे कभी अवकाश निकालकर अपने प्रिय प्रयोगों को अपने सहयोगी किसी दूसरे अनुसंधान

करनेवाले विद्यार्थी द्वारा कराते रहेंगे, जैसा कि उन्होंने एक बार कहा था। पर शायद मकान का किराया देते रहने का एक और कारण यही था कि हमारा इस फरनीचर के प्रति अतिशय मोह है। फरनीचर को कानपुर ले जाना सम्भव नहीं और न इसे कहीं अन्यत्र भेजा जा सकता है। वे अपने चाचाजी के पास इसे भेज नहीं सकते। भेज भी दें तो वहाँ यह सुरक्षित नहीं रह सकता। अपने पिताजी के समय की ही कई वस्तुएँ उन्हें चाचाजी से अन-बन हो जाने के कारण अब तक प्राप्त नहीं हुई हैं।

ठीक ही तो है। इन वस्तुओं के प्रति ऐसी भावुकतापूर्ण मोह-ममता रखना समझदारी नहीं है। आजकल धातु की सभी वस्तुओं के दाम बढ़े हुए हैं। एक-एक कोच में कुछ नहीं तो दस-दस, बारह-बारह ताँबे के स्प्रिंग हैं। सात-आठ सेर ताँबे के ही दाम तीस-पैंतीस रुपये होंगे। सारा सेट दुगुने या तिगुने दामों में बिक जायगा। इसी के लिए एक मकान किराए पर ले रखना निरी मूर्खता है। उन्होंने विचार करके ही यह प्रश्न किया था। उनकी प्रत्येक बात नपी-तुली और संक्षिप्त होती है। मैं आज कहूँगी कि सोफासेट अवश्य बेच डालिए। और भी जो वस्तुएँ बिक जाएँ, उन्हें बेचने में लाभ ही है। फरनीचर का फैशन और डिजाइन आजकल दिन-प्रतिदिन बदल रहा है। ये सब वस्तुएँ एक ही वर्ष में पुरानी होकर असुन्दर लगने लगेंगी।

जिस मकान में वे रहते थे, वह एक विधवा अध्यापिका का था। नीचे के खंड में विधवा स्वयं रहती थी और ऊपर का भाग केशवचन्द्र के पास था। ऊपर के खंड में केवल दो बड़े कमरे और चारों ओर दस हाथ चौड़ा जंगला था। सामने और पीछे के बरामदों के ऊपर टीन की छत थी और किनारे के दोनों बरामदों में तीन-तीन फुट ऊँची दीवालें थीं। पीछे के बरामदे को ही तीन

छोटे-छोटे कमरों में बाँटकर रसोई, गोदाम और नहाने के कमरे बना लिए गए थे। मिलनेवालों के लिए ,सामने के बरामदे में दो बेंचें पड़ी थीं। बड़े कमरों में से एक केशवचन्द्र का पुस्तकालय, निजी प्रयोगशाला तथा बैठक तीनों का काम देता था। उसी में सोफासेट और कुर्सियाँ थीं। पीछे के बड़े कमरे के आधे में दो पलंग थे और आधे में परदे के पीछे खाना खाने के लिए बड़ी मेज और चार साधारण कुर्सियाँ पड़ी थीं। इन कुर्सियों के पीछे खिड़की की बगल में आइनेवाली बड़ी आलमारी थी। इस प्रकार पीछे का कमरा शयनागार, भोजनालय और ड्रेसिंगरूम तीनों का एक साथ काम देता था।

सरोज उस बड़े आइने के समीप ही खिड़की के पास बैठी अपने शाल को बुनती हुई यह सब सोच रही थी। इस शाल को उसने इस मकान में आने के समय बुनना आरम्भ किया था और अब वह लगभग समाप्त था। उसका थोड़ा सा अन्तिम भाग, शेष भाग से विभिन्न वर्ण का हो गया था। यह ऊन की विभिन्नता से नहीं; किंतु समय की लम्बी अवधि के कारण हो गया था। शाल के अन्तिम अंश का यह परिवर्तित रंग सरोज को अपने अन्यथा सुखमय जीवन के इन परिवर्तित दिनों ही की भाँति दुःख-दायी लग रहा था। 'समय की अबाध गति के साथ शायद दोनों एक ही रंग के हो जायँ अथवा.....' फिर आगे न सोचकर शाल को तीलियों सहित बड़ी मेज के ऊपर डालकर सरोज अकारण ही उस कमरे को पार करके अगले कमरे में गई। सोफासेट की गद्दियों और कुर्सियों को उसने एक नई ही दृष्टि से देखा। मन ही मन कहा—'यह सब हमारे 'अपने' ही तो हैं। पर अब इन चीजों को रखकर खर्च बढ़ाना व्यर्थ है। मैं आज स्वयं इन्हें बेच देने का प्रस्ताव करूँगी।' फिर उस कमरे से भी आगे बढ़कर वह बरामदे की बेंचों तक गई। बरामदे की खिड़कियों से उस पर नीचे

की मंजिल के आँगन में उगे अमरूद और पपीते के वृक्षों की ऊपर तक आई हुई टहनियों पर एक तरल दृष्टि दौड़ाकर उसने अपने ही को सम्बोधित कर कहा—'यह मकान बुरा न था। ऊपर की मंजिल तो बड़ी सुरक्षित थी। एक ही जीना और उस पर भी मजबूत फाटक था। मुझे अकेले रहते भी इसमें कभी डर नहीं लगा। पड़ोसिन भी बड़ी अच्छी महिला हैं। आजकल दूसरे शहरों में मकान मिलना बड़ा कठिन है। उनकी नौकरी सदा रहने की तो नहीं है। वे कहते थे, युद्ध के उपरान्त फिर हमें यहीं आकर रहना पड़ेगा। शायद वे अध्यापन कार्य करेंगे। तब तक यह मकान हमारे पास रहता तो तब की एक दुश्चिन्ता चली जाती। इस नौकरी को भी वे यथाशीघ्र, अनुसंधान के लिए वृत्ति मिलने पर निश्चय ही छोड़ देंगे, तब अभी से मकान को छोड़ देना उचित न होगा।'

फिर कमरे के अन्दर जाते हुए सरोज ने अपना विचार बदल लिया। वह सोचने लगी—'इन वस्तुओं को रखना, व्यर्थ ही पुरानी वस्तुओं के संरक्षण के लिए, पैंतीस रुपया प्रति मास व्यय उठाना है। मेज पर जाकर उसने पेंसिल और कागज उठाकर उन सब बड़ी-बड़ी वस्तुओं की सूची बना ली। प्रत्येक वस्तु के सम्मुख, उसके दाम भी, जहाँ तक उसे याद थे, लिख डाले। सब के मूल्य का योग निकला २२५ रुपए। तानपूरा और सूक्ष्मदर्शक यन्त्र इस सूची में न थे। दोनों वस्तुएँ उनके प्रतिदिन के व्यवहार की थीं। यद्यपि पिछले पाँच दिनों से केशवचन्द्र ने एक भी बार तानपूरा न उठाया था; पर वही एक वस्तु ऐसी थी, जो पति-पत्नी के मध्य उनके अन्यथा विभिन्न कार्यों के बीच सामञ्जस्य लाती थी। सूक्ष्मदर्शक यन्त्र तो केशवचन्द्र को इतना आवश्यक हो गया था, जितना कमजोर दृष्टिवालों के लिए ऐनक हो जाता है। वह छोटी वस्तु, किसी नए पत्ते या फूल के पा जाने पर तत्काल

उसका निरीक्षण करने के लिए उसी यन्त्र का आश्रय लेता था। कभी-कभी तो दिन में आठ-दस बार उसे निकालकर फिर बन्द करना पड़ता था।

'पाँच सौ रुपए में अवश्य यह सामान बिक जायगा। मैं आज उन्हें इसे बेचने के लिए स्पष्ट रूप से कह दूँगी। निश्चय हो गया, निश्चय हो गया।' मन ही मन इन्हीं दो शब्दों को रटते हुए अपने संकल्प की पुष्टि करती हुई सरोज उस सूची को हाथ में लेकर फिर खिड़की के पास बैठ गई। तीलियों पर फिर ऊन के डोरे के फंदे जल्दी-जल्दी लगाती हुई वह, अपने पति के आगमन की प्रतीक्षा करने लगी। सोचने लगी—'मैं ही तो इस अनबन का कारण हूँ। वे तो वैज्ञानिक हैं, मननशील व्यक्ति। अपनी बात पर मन ही मन खूब विचार करके ही उसे उच्चारित करते हैं। उनसे यह आशा करना कि वे मेरी ही भाँति जब मन में जो बात आई, बक देंगे, मेरी ही मूर्खता है। इतनी छोटी सी बात को लेकर मैंने अपने हृदय में ऐसा तूफान मचा रखा है। मुझे तो अब तक कभी अपनी स्वीकृति दे देनी थी। यही तो वे चाहते हैं। मैं जितने दिन और चुप रहूँगी, उतना ही अधिक जीवन को दुखमय बनाती रहूँगी। इस घने बढ़ते हुए अन्धकार के निवारण का उपाय तो स्वयं मुझे ढूँढ़ना चाहिए था। और वह था इतना सरल। वे अपने मन की व्यथा स्वयं मन ही मन झेल रहे हैं। मुझसे वे क्रुद्ध नहीं हैं। मुझमें ही इतनी क्षमता नहीं कि उनके मस्तिष्क के इस बोझ का भार मैं हलका कर सकूँ। स्वयं तो वे जब तक इसका हल न ढूँढ़ लेंगे, मुझे परेशान करना न चाहेंगे।'

सीढ़ियों पर पदचाप सुनकर सरोज उस सूची को हाथ में लेकर आरम्भिक बातचीत की भूमिका के लिए मन ही मन उपयुक्त बात सोचकर मानो एक नए सैनिक की भाँति अपने लक्ष्य पर ठीक निशाना लगाने के लिए अपने को संतुलित-सा करने लगी।

८—डाक्टर राय, प्रयोगशाला में

अपनी प्रयोगशाला को छोड़ने से पूर्व जब केशवचन्द्र डाक्टर राय से अन्तिम बार नमस्कार करने गया, तो वे सदा की भाँति 'कुछ तो करो, कुछ तो करो' यही शब्द अपने विद्यार्थियों पर एक सामूहिक दृष्टि डालते हुए मानो सबको एक साथ सम्बोधित करते हुए बार-बार कहते जा रहे थे। सापेक्ष्य ताप के उस यन्त्र के समीप वृजमोहन को न देखकर उन्होंने पास ही खड़े एक विद्यार्थी की ओर देखकर कहा—"मिस्टर आज कहाँ चले गये? फिर कहेंगे कि थर्मल रिलेटिविटी का यह एक्सपेरिमेण्ट बड़ा टेढ़ा है।"

डॉ० राय को अपने विद्यार्थियों के नाम याद नहीं रहते। प्रति वर्ष पचास नए विद्यार्थी उनकी कक्षा में प्रयोग करने आते हैं। सब प्रायः एक ही आयु और पिछले वर्ष के छात्रों की सी विभिन्न आकृति के। उन सबके नाम भला, कब तक याद रह सकते हैं। वे तो बस इतना ही जानते हैं कि ऐसे ही भूरे बालोंवाला एक विद्यार्थी पिछले साल भी आया था। पहले उस लड़के ने प्रकाश-तरंगों के प्रयोग करते समय सारे यन्त्र को आग लगा दी थी। वह बिलकुल इस नवागन्तुक लड़के की भाँति बनठनकर आता था। एक-दो पहाड़ी लड़के भी प्रतिवर्ष आते हैं। वे भी अपने ढंग के निराले होते हैं। काले मद्रासी लड़कों में भी वही क्रम चला आता है। उन्हें गणित-सम्बन्धी प्रयोग देने चाहिए।

कभी-कभी तो डाक्टर राय को एक ही वय और एक ही रूप-रंग के लड़कों के वर्षों चलते सतत प्रवाह को देखकर अपने बुढ़ापे पर झुंझलाहट होने लगती। वे सोचते कि संसार में नित नवीनता

है, कहीं शिथिलता नहीं। कहीं भी कोई बूढ़ा विद्यार्थी नहीं। बीस वर्ष की लम्बी अवधि से अधिक समय से वे ऐसी ही स्फूर्तिमयी, अल्हड़ युवक मण्डली का प्रवाह देखते आ रहे हैं। उन्हें विश्व-विद्यालय के इन यन्त्रों, इन कमरों और पत्थरों की बनी इन दीवारों में भी कहीं कोई अन्तर आता नहीं दीखता। सन्ध्या समय इन बड़े मैदानों में सदा वही श्वेत पतलूनधारी युवक वर्षों से टेनिस खेलते दीखते हैं। उनमें भी कहीं कोई अंतर नहीं। सब पच्चीस वर्ष पहले जैसा था, वैसा ही नवीन है! अन्तर आया है तो केवल उन्हीं में।

विद्यार्थी ने कहा—"डाक्टर साहब, वह 'इण्टरव्यू' में गया है। आज नायब तहसीलदारों का चुनाव है। वह भी परीक्षा में बैठा था।"

"कोई थानेदार बनता है, कोई नायब तहसीलदार। ऐसे लोगों के लिए विज्ञान के इन प्रयोगों में रक्खा ही क्या है?" डॉ० राय ने कुपित होकर कहा—"ऐसे लोगों को तो मेरी प्रयोगशाला में भेजना व्यर्थ है। कहाँ विज्ञान के ये क्लिष्ट अनुसंधान और कहाँ थानेदारी?"

पास ही एक विद्यार्थी उबलते हुए कड़वे तेल में तांबे का एक गोला डालकर तांबे की आपेक्षिक तप्तता को ज्ञात कर रहा था। तेल की भीनी-भीनी गन्ध से आकर्षित होकर डाक्टर राय वहीं खड़े हो गए। अभी जो कुछ बात वे कह रहे थे, उसी के प्रभाव में बोले—"मिस्टर, तुम भी कहीं इस प्रयोग को छोड़छाड़ पकौड़ियों की दूकान खोलने न चल देना। रिसर्च करने आते हैं और उद्देश्य होता है थानेदारी! क्या सूझ है और क्या आदर्श? कड़वे तेल की इस सुगन्ध से आकर्षित होकर तुम्हीं सोचो मिस्टर, तुम क्या पकौड़ियों की दूकान खोलोगे? क्या तुम्हारे ऊपर इस प्रयोग का

प्रभाव यही होगा ? मैं किस लगन से पढ़ाता हूँ; लेकिन उस पढ़ाई का उद्देश्य क्या है, जबकि पढ़नेवालों का लक्ष्य होता है, महज थानेदारी करना।"

फिर अपने पीछे की ओर चर्र-मर्र की आवाज सुनकर डाक्टर राय ने चश्मा उठाकर माथे पर लगा लिया। केशवचन्द्र को देखकर बोले—"कुछ तो करो मिस्टर, कुछ तो करो। तुम आज बेकार क्यों घूम रहे हो ? कल का वह एक्सपेरिमेंट·····"

"जी मैं·····" केशवचन्द्र ने किंचित् मुस्कराकर कहा—"मैं केशवचन्द्र हूँ। रासायनिक प्रयोगशाला का रिसर्च स्टूडेंट।"

"ओह ! हाँ-आँ·····" डॉ० राय ने उसके बिलकुल समीप आकर एक हाथ से पीठ थपथपाते हुए, दूसरे हाथ से चश्मे को माथे से खिसकाकर आँखों के सामने लाते हुए कहा—"आज तो तुम पहचाने भी नहीं गए। हाँ, क्या हो रहा है तुम्हारे कृत्रिम अन्न : सिन्थैटिक गेहूँ का ? मिस्टर, अब तो गेहूँ बाजार में रुपया सेर भी प्राप्य नहीं है। जब तक तुम जैसे वैज्ञानिक आगे बढ़कर इस समस्या को हल न करेंगे, सारा मामला चौपट हो जायगा। मैं तो आश्चर्य करता हूँ कि लोग ऐसे विकट अन्नाभाव में भी कैसे जीवित रहते हैं ! महँगाई इतनी उग्र हो गई है। ओफो: !"

केशवचन्द्र ने, अभी कुछ ही क्षण पहले, जो कुछ उन्होंने थानेदारी और नायब तहसीलदारी की प्रतियोगिता में बैठनेवालों के प्रति कहा था, उसी बात को अपने प्रति लागू करते हुए अपने ही से कहा—'केशवचन्द्र, तुम भी तो सैनिक रसायनशाला में नौकरी करने जा रहे हो। और इस समय तुम बड़े कुसमय में इनसे विदा लेने आये हो। अब भी समय है, अपनी नौकरी के विषय में कुछ न कहो, और लौट जाओ।'

वह थोड़ी देर चुपचाप खड़ा रह गया, पर नौकरी मिलने की आशा से अपने परिवर्त्तित भावी जीवन के अस्तित्व की सत्यता को वह पिछले सप्ताह भर नित नए रूप में सोचकर अनेक प्रकार से अपने को इस परिवर्तन के लिए भवितव्यता के सम्मुख प्रस्तुत-सा कर रहा था। अब तो वह भली भाँति संकल्प कर चुका था कि रिसर्च से अब उसका कोई संबंध नहीं। वह तो उसके उस जीवन का दृश्य है, जो अब रहा ही नहीं है। उस जीवन से केशवचन्द्र का उतना ही सम्बन्ध रह गया है, जितना कि तितली का अपने गत शरीर 'क्रिसेलिस' से रहता है। मानो अनुसन्धानकर्त्ता केशवचन्द्र अब मृत क्रिसेलिस (गोजर कीड़े का कोया) है। संक्रांति के ये जो दिन और रात बीत रहे हैं, वे और कुछ नहीं, मृत देह से ताप की क्रमशः घटने की क्रिया है। अपने से विमुक्त गोजर कीड़े के उस कोये की अवशिष्ट तप्तता अब धीरे-धीरे कम होती जा रही है। शीघ्र ही वह सम्पूर्ण रूप से अपरिचित और नव-नवीन तितली की भाँति उड़कर एक नए अप्रत्याशित संसार में चला जायगा। ये सब प्रयोगशाला के भवन और यह चिरपरिचित आत्मीयता, फिर उस कोये के अन्दर से निकलने के उपरान्त रिक्त जरायु की भाँति निर्जीव और व्यर्थ हो जायँगे। अब रिसर्च करना या उस सम्बन्ध में सोचना उतना ही असंगत और असंभव है, जितना तितली का उस कोये के अन्दर समाकर फिर गोजर बनकर उसी की भाँति रेंगने का प्रयत्न करना।

केशवचन्द्र ने क्षण भर में उठते संकल्प और विकल्प को एक झटका-सा देकर दृढ़ स्वर में कहा—"मैं नमस्कार करने आया हूँ—अन्तिम नमस्कार! जा रहा हूँ।" फिर कुछ अटककर कहा—"नौकरी मुझे भी मिल गई है।"

अनुसन्धान-कार्य को छोड़ने की अपनी बात कहने के उपरांत केशवचन्द्र ने उस सम्वाद का प्रभाव डॉ० राय की मुद्रा पर स्पष्ट

अंकित होते देखा। उनकी आँखों की पलकों पर वह क्षणिक, किन्तु स्पष्ट थिरकन और उनके होठों का वह किंचित् सा एकाएक विकृत होकर फिर स्थिर हो जाना, स्पष्ट ही दीख पड़ा। एक शोक-संवाद के धक्के की भाँति उनकी मुद्रा पर ये प्रभाव व्यक्त होकर विलीन हो गए।

"थानेदारी तुम्हें भी मिल गई!" उन्होंने एकाएक बहुत ही उद्विग्न मन से कहा। अपने एक परिश्रमी और विद्वान् शिष्य की यह दुर्गति उनके लिए असह्य वेदना का कारण थी। केशवचन्द्र उस सच्चे गुरु के मनोभावों से अप्रभावित न रह सका। सोचने लगा कि डाक्टर राय अवश्य ही मुझसे घृणा करेंगे कि मैं अनुसन्धान कार्य से विमुख हो गया। वैज्ञानिक का नौकरी करना एक पथ-भ्रष्ट व्यक्ति का-सा जीवन-यापन करना है। उसने आँखें नीची कर लीं और बोला—"थानेदारी तो नहीं, पर सेना में नौकरी मिल गई है। वहाँ मैं रासायनिक परीक्षक का काम करूँगा।"

"हाँ, रासायनिक परीक्षक!" डाक्टर राय ने रासायनिक शब्द का सहारा पाकर कुछ उत्साहित होकर कहा—"कुछ तो करो मिस्टर, कुछ तो करो। हाँ, पर थानेदारी मत करना। कितना वेतन मिलेगा?"

"पाँच सौ रुपये।" केशवचन्द्र ने कहा और सोचा, निश्चय ही पुलिस के हाथों इस सरल स्वभाव के डाक्टर का कभी कुछ अनिष्ट हुआ है।

"ओह, पाँच सौ!" डॉ० राय उल्लसित होकर बोले—"बहुत है, मिस्टर। ठीक है। यहाँ तो बाईस वर्ष हो गए। अब जाकर तीन सौ मिल रहे हैं। महँगाई बेहद बढ़ गई है। हमारे पूज्य गुरु ने जो आदर्श हमारे सम्मुख रखा, उसे हम भूल गए। स्वर्गीय डॉ० राय ने विद्वान् की वेदी पर तपस्या करनेवाले अपने शिष्यों को

सदा सन्तों की भाँति रहने का आदेश दिया था। हम तब उनकी बात नहीं समझते थे। आज हमारी दुर्दशा प्रत्यक्ष है। परिवार की चिंता में ही, पत्नी और बच्चों के लिए अन्न जुटाने में ही कितने ही प्रखर बुद्धि के वैज्ञानिकों की आधी से अधिक प्रतिभा व्यय हो जाती है। विज्ञान देवी की तपस्या का फल जीविकोपार्जन के हेतु की गई दासता का कारण या साधन मात्र ही न होना चाहिए था। मैं तो सदा यही कहता आया हूँ। लेकिन अब अपने आश्रितों की दुर्दशा देखकर मेरी भी इच्छा होती है कि कहीं अच्छी नौकरी कर लूँ। जब दुःख-निवारण ही विज्ञान का ध्येय है, तो मिस्टर, हमारा पहला कर्त्तव्य अन्न के उत्पादन में वृद्धि करना है। तुम्हारे प्रयोग इसलिए बहुत महत्वपूर्ण हैं। वे जिस नई दिशा की ओर संकेत करते हैं, कौन जाने, वही संसार की सुख-समृद्धि का भंडार हो। पर तुम यह सब छोड़-छाड़कर जा रहे हो, यही दुःख का विषय है।"

"अवसर मिला तो मैं वहाँ भी अपने प्रयोगों को जारी रखूँगा।" केशवचन्द्र को तत्काल ही एक नया विचार सूझा। वह बोला—"शायद वहाँ एक से एक अच्छे माइक्रास्कोप होंगे। सैनिकों के खाद्य पदार्थों का परीक्षण ही तो मेरा कार्य होगा। आधुनिकतम यन्त्र निश्चय ही वहाँ होंगे।"

"हाँ, तब ठीक है।" डॉ० राय ने कुछ उदासीन होकर कहा। उस समय प्रयोगशाला के किसी कोने पर चिट-चिट सी ध्वनि को सुनकर उनके कान उसी ओर आकर्षित थे कि शायद कोई विद्यार्थी किसी यन्त्र से व्यर्थ गड़बड़ कर रहा है।

"अच्छा, तो मैं जाता हूँ।" केशवचन्द्र ने कहा और झुककर डॉ० राय को प्रणाम किया।

"हाँ, जाओ।" डॉ० राय ने चलते-चलते कहा—"अन्न की

समस्या सचमुच बड़ी कठिन है। इसे सुलझाने का प्रयत्न करना ही चाहिए! हाँ, कुछ तो करो; कुछ तो करो!" अन्तिम वाक्य के अनायास ही जिह्वा पर आ जाने से डॉ० राय अपने इस शब्द के दुरुपयोग से किंचित् सकुचाकर क्षीण स्वर में 'नमस्कार' का प्रत्युत्तर देकर उसी ओर चल दिये, जिधर चिट-चिट शब्द सुनाई दे रहा था।

६—सूक्ष्मदर्शक यंत्र का सौदा

सरोज ने सूची को पति के हाथ पर देते हुए कहा—"मैंने उस दिन आपकी उस फरनीचर को बेचने की बात को ठीक भाति न समझा था। आज मैंने इन सब वस्तुओं के मूल्य का हिसाब लगाया, तो ज्ञात हुआ कि ढाई सौ रुपए से अधिक व्यय इन पर नहीं हुआ होगा। आप कहते थे कि पाँच सौ तक में सब चीजें बिक जायँगी। तब तो निश्चय ही इन्हें बेच डालिए।"

केशवचन्द्र ने सूची देखी फिर किंचित् मुस्कराकर कहा—"नहीं, इन्हें नहीं बेचूँगा।"

पति की प्रसन्नमुद्रा से प्रभावित होकर सरोज बोली—"दो-तीन वर्ष बाद यह फरनीचर बिलकुल पुराना सा हो जायगा। तब तक हम इतने ही रुपयों में इससे भी सुन्दर नए प्रकार का फरनीचर खरीद लेंगे।"

पति ने अब हँसकर कहा—"और कोई कारण है इसे बेचने का? तुम कहती जाओ, मैं अपनी राय अन्त में दूँगा।"

"आप तो हँसी में ही मेरी बात उड़ा देते हैं।" पत्नी ने कृत्रिम रोष का भाव धारण करते हुए कहा—"बस, एक ही और कारण इसे बेच डालने का है।"

पति ने कहा—"वह क्या है? उसे भी सुन लूँ।"

पत्नी ने किंचित् मुस्कराकर कहा—"यही कि आपकी राय है कि इसे बेच डाला जाए, इसीलिए मेरी भी राय यही है।"

पत्नी की कलाई पकड़कर उसे अपने निकट बिठाते हुए केशवचन्द्र ने कहा—"मेरी राय यह नहीं है सरोज, मेरी राय को

समझने में ही तुम गलती कर गईं। विवाह के अवसर पर मिली ये वस्तुएँ हमें कितनी प्रिय हैं। इन्हें भला, हम कभी बेचने का साहस कर सकते हैं? मेरे लिए तो ये ऐसी ही मंगलमय और शुभ हैं जैसी तुम···"

"तब आप मुझसे क्यों नाराज थे?" पत्नी ने अपनी चिबुक से पति की हथेली को हटाते हुए बालसुलभ सरलता से कहा—"आपसे मैंने उस दिन पूछा था कि आप कौन सा फरनीचर बेचने की बात कह रहे हैं। उत्तर में आपने चुप्पी साध ली और ऐसी गम्भीर मुद्रा बना ली कि मुझे आगे कुछ और पूछने का साहस भी नहीं हुआ।"

"आह!" केशवचन्द्र ने एक उच्छ्वास लेकर दोनों बोझिल हाथों को मेज पर थके हुए व्यक्ति की भाँति रखते हुए और स्वयं मेज का ही आसरा लेकर कहा—"सरोज, तुम बड़ी भोली हो, शायद तुम इस सारे सप्ताह भर मेरे मन की अशान्ति का कारण यही सोचती रही हो कि मैं तुमसे क्रुद्ध हूँ। यह मेरा अनोखा स्वभाव है। मैं तो ठीक इसके विपरीत यही सोचता रहा कि बिना किसी स्थायी आय के मैंने विवाह क्यों कर लिया और क्यों तुम जैसी सरल प्रकृति की बाला का निरन्तर दुःख का कारण बन गया। सोचता हूँ कि मेरी आँखों को उस समय तुम्हारा यह सुन्दर रूप ही दीख पड़ा। इसके परे इसी रूप के अन्दर जो नारी है, उसके सौजन्य को मैंने देखा तक नहीं। मैं तो उस नारी के योग्य कभी बन ही न पाया और उसे सुखी बनाने के अपने उत्तरदायित्व को मैंने समझा ही नहीं।"

"मुझे यहाँ दुःख ही कहाँ है?" पत्नी ने पति की सच्ची भावना से प्रभावित होकर सजल नेत्रों से कहा—"दुःख और चिंता है तो आपको। मैं तो आराम से घर बैठी रहती हूँ।"

"तुम्हारी इन वस्तुओं को, विवाह के अवसर पर धरोहर स्वरूप प्राप्त इस फरनीचर को बेच डालने का इरादा करना, दुःख का ही तो विषय है। पति का इस प्रकार रुपये पैसे के लिए मोहताज हो जाना और अपनी पत्नी से उसकी सम्पत्ति को बेच डालने का प्रस्ताव कर डालना भी तो सुख का विषय नहीं कहा जा सकता। इतना सब तो मैं समझता हूँ, सरोज।"

पति की इस बात को सुनकर उसके प्रति हार्दिक श्रद्धा से सरोज का गला रुँध सा आया। वह कुछ भी न बोल सकी। केवल मेज की चादर पर कढ़े हुए उस फूल के रंगों को ध्यान से एकटक देखने का प्रयत्न करती रही।

केशवचन्द्र कहता गया—"उस दिन, उसी दिन क्यों, पिछले सप्ताह भर कानपुर जाने तक को पैसे जुटाना कठिन हो गया था। प्रयोगशाला से जब टूटे हुए यन्त्रों का बिल आया, तो वही पौने दो सौ रुपये का निकला। आनेवाली छात्रवृत्ति उसी को चुकाने में समाप्त हो जाती और तुम्हें मथुरा पहुँचाने और मेरे कानपुर में अगले मास की पहली तारीख तक अपना व्यय चलाने के लिए रुपये प्राप्त करना कितनी कठिन समस्या थी। मैं रह-रहकर कभी फरनीचर बेचने का संकल्प कर रहा था और कभी यही सोचता कि नौकरी पर जाना अस्वीकार कर दूँ। और यदि फरनीचर ही बेचकर वहाँ जाना पड़े, तो उससे तो अच्छा यही है कि उसी रुपए से रूखा-सूखा खाकर अपना अनुसन्धान करता रहूँ। शायद पाँच छः महीने के उपरान्त सफलता मिल जाए। पिछला सारा सप्ताह इसी द्विविधा में कटा कि मुझे करना क्या चाहिए। क्या कानपुर नौकरी पर जाना अस्वीकार कर दूँ? क्या फरनीचर बेचकर जो रुपया मिलता है, उसे लेकर कानपुर जाऊँ? अथवा जैसा हूँ वैसा ही रहूँ और चाचा से प्रार्थना करूँ कि प्रतिमास कुछ रुपया मुझे भेज दिया करें? अपने मन की इस अशान्ति के कारण

मैं तुम्हारे प्रति भी आकरण ऐसा कठोर हो गया कि सारी शिष्टता खो बैठा। सरोज, तुम मुझे क्षमा करना। मेरा स्वभाव ही ऐसा बेढंगा हो गया है। मैं स्वयं आत्मग्लानि के कारण तुम्हारे प्रति अपना कर्त्तव्य भूल गया और तुम्हें इतना दुःख दे गया।"

थोड़ी देर दोनों चुप रहे, फिर सरोज ने कहा—"फरनीचर और ये सब वस्तुएँ तो आपकी ही हैं। इसके लिए इतने व्यग्र होने की बात ही क्या है?"

"यह तुम्हारी भद्रता है सरोज, जो तुम ऐसा सोचती हो।" केशवचन्द्र ने कहा—"मेरा सौभाग्य है कि ऐसी सुसंस्कृता नारी मेरी सहधर्मिणी है। मैं स्वयं कितना नीच और ध्येयहीन हूँ।"

"अब तो आप व्याख्यान ही देने लग गए।" सरोज ने इस अप्रिय प्रसंग को समाप्त करने की इच्छा से कहा। उसका हाथ मेज पर पड़ी उस सूची से खेल रहा था, जो कुछ ही मिनट पहले उसने पति को दी थी। अपनी उद्विग्नता में लिखे वे अक्षर और वे अंक अब उसे पति के इस स्नेह सामीप्य के कारण एक उज्ज्वल मंगलमय कार्य की भूमिका से प्रिय लग रहे थे। उसी सूची को उठाकर पति की ओर देखे बिना ही उसने कहा—"अब इस सूची के विषय में क्या सोचा है?"

"यही तो मैं कहने जा रहा था।" केशवचन्द्र ने अपनी मन्द-मन्द मुस्कराहट से अब तक की गम्भीरता को समाप्त करके कहा—"तुमने अमेरिकन लेखक ओ-हेनरी की वह प्रसिद्ध कहानी तो पढ़ी है न—गिफ्ट ऑफ दि मैगी? दीन पति-पत्नी बड़ी कठिनता से जीविकोपार्जन करते थे। बड़े दिन के उपहार में वे दोनों एक दूसरे को उत्तम से उत्तम उपहार देना चाहते थे। पति ने अपनी पत्नी के सुन्दर बालों की बात सोचकर अपनी घड़ी गिरवी रखकर एक जोड़ा सुन्दर कंघियों का खरीदा था। घर आकर उसने देखा कि

पत्नी उसकी अनुपस्थिति में अपने सुन्दर बालों को कटवाकर बेच आई थी और पति की उस प्रिय घड़ी के लिए एक बहुमूल्य जंजीर खरीद लाई थी। यही हाल हमारा है। तुमने अपने फरनीचर की यह सूची बना ली। उसे बेचने का पक्का निश्चय कर लिया। इससे तुम्हारी असीम भद्रता स्पष्ट है। पर मैं तो इस फरनीचर की ही रक्षा करने के लिए अपनी एक और प्रिय वस्तु विदा करने का वचन दे आया हूँ।"

आश्चर्य से पत्नी ने आकर्ण होकर पूछा—"वह क्या?"

"दो सौ रुपए हैं ये," पति ने जेब में भरे नोटों को मेज पर उलटते हुए कहा—"माइक्रास्कोप को वैकावि माँगता था। वही काँच की वस्तुएँ बेचनेवाला बहरा दूकानदार।"

"बेच दिया?" पत्नी ने कहा।

"नहीं।" पति ने कहा।

"तब क्या गिरवी रख आए हो?" पत्नी बोली।

"नहीं," पति ने हँसते हुए कहा—"वैकावि—महेन्द्र उसका असली नाम है—बड़ा सच्चा आदमी है। उसने मुझे डाक्टर विश्वास का पत्र दिखलाया। वे किसी देहली के कारखाने के लिए बिलकुल यही जीस-आइकन सूक्ष्मदर्शक-यंत्र चाहते थे और पचास रुपया मासिक तक किराया देने के लिए तत्पर थे। मैंने वैकावि से कह दिया है कि वह मेरा माइक्रास्कोप उन्हें साल-दो साल के लिए किराए पर दे सकता है।"

"तब ये दो सौ रुपए कैसे हैं?" पत्नी ने पूछा।

"वैकावि से मैं केवल चालीस रुपए माहवार लूँगा, शेष दस उसके ही होंगे। दो सौ रुपए उसने पेशगी दे दिये हैं। वह अभी माइक्रास्कोप लेने आयगा। यह बात मुझे पहले नहीं सूझी थी, नहीं तो इतना दुःख तुम्हें न देता।" पति ने कहा।

पत्नी गम्भीरता से बोली—"माइक्रास्कोप के बिना क्या वहाँ

आपका काम चल जायगा ? यह तो अब आपके दैनिक व्यवहार की वस्तु हो गया है, बड़ा ही आवश्यक और उपादेय।"

"जब मैं अपनी आजीविका के लिए अपने प्रिय आविष्कार को ही छोड़कर नौकरी करने जा रहा हूँ," केशवचन्द्र विरक्त सा होकर कहने लगा—"तो माइक्रास्कोप से ही इतना मोह क्यों करूँ। वहाँ भी तो ऐसे यन्त्र मिल जायँगे। चालीस रुपए माहवार बहुत होते हैं। कम से कम इस मकान का किराया प्रति मास तो चुकता ही रहेगा। और यह फरनीचर यहीं सुरक्षित रहा, तो हम भी कभी अवकाश मिलने पर यहाँ आ जाया करेंगे।"

"अनुसंधान-कार्य को त्यागकर नौकरी करना अब भी आपको खटक रहा है ?" पत्नी ने सहृदयता से कहा।

"नहीं, अब तो मैंने निश्चय कर लिया।" केशवचन्द्र ने उठकर पास ही पड़े तानपूरे को उठाते हुए कहा—"आज कोई सुन्दर लय मुझे सिखा दो। बहुत दिनों से इसे छुआ तक नहीं।"

सरोज ने प्रसन्न होकर तानपूरे के उस काले बक्स को खोलते हुए पति की मुद्रा की ओर देखा। केशवचन्द्र की आँखों में किसी बिछुड़ते हुए प्रिय संसार के चित्र अब भी नाच रहे थे। सरोज की आँखें काम तो बक्स खोलने का कर रही थीं; पर उसे यह जानते देर न लगी कि अनुसंधान-कार्य को छोड़ने का पति का यह निश्चय एक आपरेशन के लिए तैयार होने के पूर्व रोगी की अनिश्चित, किन्तु अनिवार्य दशा का परिचायक है। पत्नी के हृदय में एक गांठ सी, अपने पति की उस कातर दृष्टि को देखकर पड़ने लगी। वह सोचने लगी—मेरा जीवन तो निश्चिन्त है। मैं पति के आश्रय में सदा सुखी हूँ। पर उनका जीवन अनिश्चित और दुःखपूर्ण है।

"तो पहले तुम बजाओ।" पति ने एक तार पर हलकी-सी गत देते हुए कहा।

सरोज ने तानपूरा ले लिया और एक सुन्दर लय से वे निर्जीव तार झंकृत हो गए। उस संगीत का स्वर हवा में थिरकता उस दम्पति के मस्तिष्कों में भी मधुर संगीतमय लहरों के ताने-बाने बुनने लगा। पति समीप ही स्टूल पर बैठकर अर्द्धनिमीलित नेत्रों से उन संगीत के मकड़ी के से जालों की कोमलता के बीच एक अनोखे सामीप्य का अनुभव करने लगा, जो संगीत की संतुलित तारतम्यमय स्वर-लहरी का ही एक अंग था और उनके दो हृदयों के सामीप्य और सामञ्जस्य का ध्वनिमय मूर्त्त रूप। इतनी शीघ्रता से उन दोनों के मध्य एक सप्ताह के उपरान्त फिर वही स्नेहिल सहृदयता मानो जीवित होकर सजग हो उठी थी।

१०—मोहक प्रस्ताव

उस दिन शाम को अपने परिचितों तथा सहयोगियों से मिलकर और क्लब में अपने साथियों से अंतिम विदाई लेकर जब केशवचन्द्र घर लौटा, तो अपने बरामदे में दो व्यक्तियों को बैठे देखा। एक तो वैकावि था, जो उसके सीढ़ियों को पार करते ही उठकर खड़ा हो गया। वैकावि दो दिन पहले माइक्रास्कोप ले गया था, इसलिए उसका आना इस समय एक नई बात थी। 'शायद वह उन पुस्तकों के विषय में बातचीत करने आया है, जिन्हें वह उस दिन मेरी मेज पर देख गया था।' केशचन्द्र ने मन ही मन कहा, 'पर मैं उन पुस्तकों को अपने साथ ले जाऊँगा और अवकाश के समय उनका मनन करूँगा। बहुत सी पुस्तकें, विशेषतः हाल्डेन के संतति-शास्त्र के वे बड़े-बड़े चारों ग्रंथ तो अभी-अभी आए हैं। उन पर पूरे अस्सी रुपए व्यय हुए हैं। उन्हें बेचना ठीक नहीं। फिर उनके विषय में वैकावि जाने भी क्या?'

सीढ़ियों से बरामदे में आने के लिए जो बड़ा दरवाजा था, उस पर चिक पड़ी थी। चिक के सामने फाटक की ओर मुँह किए वैकावि बैठा था और फाटक की ओर पीठ किए बैठी, एक नारी मूर्त्ति है, यह बात केशवचन्द्र बरामदे में पाँव रखने पर ही जान पाया।

वैकावि ने हाथ जोड़कर अभिवादन किया और प्रत्युत्तर में केशवचन्द्र ने 'नमस्ते' कहा। पर वह नारी मूर्त्ति उसकी ओर पीठ किए बैठी ही रही, आगन्तुक की ओर अपनी किंचित् भी जिज्ञासा उसने प्रकट न की।

क्या यह सरोज बैठी है ? यदि वही है तो आज क्या बातें हो रही हैं ? यह बहरा सुन भी क्या सकता है ? केशवचन्द्र ने उस नारी मूर्त्ति की पीठ ही पीठ देखकर मन ही मन सोचा। कुर्सी के पीछे की ओर जनाने ओवरकोट को लटका देखकर उसने फिर तत्काल ही सोचा, यह सरोज नहीं है, ऐसा ओवरकोट उसके पास नहीं है।

केशवचन्द्र उस नारी मूर्त्ति के सम्मुख आया। फिर भी उस नारी ने आँखें उठाकर उसकी ओर न देखा। वह तीलियों पर पीले ऊन से बच्चे का कोई मोजा सा बुन रही थी। केशवचन्द्र ने एक बार उसके चेहरे की ओर देखा और फिर एकाएक आँखें हटा लीं। वह फिर क्षण भर उन तीलियों की ओर ही देखता रहा, तीलियाँ भी पीली थीं, ऊन भी पीला था और जिन मोतियों की भाँति चमकते नाखूनों के मध्य उँगलियों पर ऊन के वे छोटे-छोटे फन्दे जल्दी-जल्दी पड़ रहे थे, वे लम्बी-लम्बी उँगलियाँ भी दमकते स्वर्ण सी सुन्दर थीं। उँगलियों के लाल-लाल रँगे हुए नख पीले ऊन पर तितलियों की भाँति नाचते-से जान पड़ते थे। उस नारी की वेशभूषा भी कम सुन्दर न थी। हलके नीले रंग की बिना किनारी की साड़ी पाँवों को छिपाए थी। वह पूरे बाँह का एक गरम स्वेटर पहने थी। स्वेटर था तो हलके आसमानी रंग का, पर उसकी बाँहों के पृष्ठ भाग गहरे नीले रंग के ऊन से बुने गए थे। हलके नीले रंग की साड़ी के पीछे लम्बी, काली लटों की छाया ही मानो उन बाँहों की पीठ पर पड़े उस गहरे नीले रंग का कारण थी, और उज्ज्वल गौर वर्ण की उस युवती की देदीप्यमान मुद्रा की आभा उन काली लटों पर पड़कर उस मन्द नील रंग का कारण थी। युवती के शरीर पर एक ही नील रंग की वे दो हल्की और गहरी छटाएँ छाया और प्रकाश की आँखमिचौनी-सी खेलती दीखती थीं।

नीले वस्त्रों से सुसज्जित उस युवती को देखकर उस सन्ध्या समय केशवचन्द्र जैसे वैज्ञानिक के मन में भी पर्वत प्रदेश के स्वच्छ नीलाकाश में गहरी नील पर्वत श्रेणी से परिवेष्टित पूर्व क्षितिज पर अटके चन्द्रमा की उपमा अनायास ही आ गई। ऐसी आकर्षक वेशभूषा और अपने वस्त्रों में ऐसा कवितामय सामंजस्य रखने का प्रयत्न करनेवाली भारतीय नारी तो उसने आज तक इस नगरी में कभी न देखी थी।

मानसिक जगत् में इतनी सारी बात क्षणों के शतांश में हो गई। वैकावि ने तब निकट आकर मानो किसी भेद का रहस्य खोलते हुए कहा—"आप हैं श्रीमती रुस्तम, जो आपसे मिलने आई हैं।"

"और आप?" उस नारी मूर्त्ति ने तीलियों पर थिरकते हाथों की गति मन्द करते हुए आँखें उठाकर उसकी ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा। वैकावि बोला—"आप ही केशवचन्द्र हैं।"

"ओह!" उस नीलाम्बरी नारी ने अब उठकर दोनों हाथ जोड़ नतमस्तक होकर कहा—"मैं तो सोच रही थी कि आप मोटर में आयँगे। वैकावि महाशय ने ऐसा ही कुछ कहा था।"

केशवचन्द्र ने खड़े-खड़े कहा—"मेरी मोटर कहाँ? वह तो कलक्टर साहब की मोटर थी, जिसमें वैकावि ने क्लब जाते देखा होगा। आज क्लब में जाने से पहले उनसे मिला था। उन्हीं के साथ फिर क्लब जाना पड़ा।"

वैकावि केवल अपने नाम और मोटर शब्द को सुनकर बोला—"आप जैसे ही मोटर में गए, मिसेज रुस्तमजी आ गईं। जरा सी देर बाद भी आप जाते, तो उसी समय मुलाकात हो जाती।"

अपने कमरे के दरवाजे की चिक उठाते हुए केशवचन्द्र ने कहा—"चलिए अन्दर ही बैठें। आप लोग न जाने कब से यहाँ बैठे हैं।"

सरोज ने तब तक चाय बनाकर तैयार कर ली थी। वह भी तब अपने पति के सम्मुख स्वयं चिक उठाकर खड़ी हो गई और मुस्कराकर पति से बोली—"आपने इन्हें पहचाना नहीं? मिसेज रुस्तमजी तो आपको पहले ही से जानती हैं।" फिर उन दोनों आगन्तुकों को सम्बोधित करके वह बोली—"आइए, चाय पी लीजिए।"

केशवचन्द्र ने एक बार फिर युवती की ओर देखा और मन ही मन कहा—कभी नहीं, मैंने इस जन्म में तो कभी सौंदर्य की इस शालीनता को नहीं देखा। यह निश्चय ही कोई चित्रकार होगी अथवा अभिनेत्री। पर परिचित सिनेमा अभिनेत्रियों को भी स्मरण करके वह मन ही मन सोचने लगा—साधना बोस, सुरैया, माया, नलिनी, कामिनी कौशल, नरगिस कोई भी तो यह नहीं है। रुस्तमजी नाम तो पारसी है।

अन्दर के कमरे में शयनकक्ष के समीप ही चाय की बड़ी मेज लगी थी। तीनों उसी के इर्द-गिर्द बैठ गए। वैकावि पहले केशवचन्द्र के ठीक सामने बैठा, फिर अपने बहरेपन का ध्यान आने पर उनकी बगल में बैठ गया। दूसरी ओर वह सुन्दरी बैठ गई। सरोज दोनों हाथों में तश्तरियाँ लाई, तो अपने पति के सम्मुख चौथी खाली कुर्सी पर उसे बैठना पड़ा।

"क्षमा कीजिए, मैंने आपको नहीं पहचाना।" केशवचन्द्र ने कहा।

"मैं सुषमा हूँ।" उस युवती ने कहा—"आपने मुझे नहीं पहचाना, इसमें क्षमा याचना की आवश्यकता कहाँ है? मैं भी तो आपको नहीं पहचान सकी। दोनों से अपराध हुआ। दोनों एक ही भाँति अपराधी हैं। पहले क्षमा मुझे ही माँगनी थी।"

बातचीत के इस पांडित्यपूर्ण गाम्भीर्य से केशवचन्द्र को यह भास होते देर न लगी कि इस गर्वीली नारी से उसका कहीं न कहीं अवश्य सम्पर्क हुआ था; पर कब और कहाँ, यह बात अब भी याद न आई।

"उस दिन आप हमारे घर चाय पीने आये थे। आपके चाचा भी साथ थे।" सुषमा ने सूखे फलों की तश्तरी पर दृष्टि गड़ाए कहा।

"आह, अब मैं समझ गया।" केशवचन्द्र ने प्रसन्नता से कुर्सी से उठकर हर्षोल्लास में व्यर्थ ही सुषमा की ओर हाथ बढ़ाया; पर सुषमा की ओर से वैसा ही उल्लास प्रदर्शन न देखकर सकुचा कर वह बैठ गया और बोला—"आज आपने कैसे कष्ट किया?"

सुषमा ने कहा—"आप ही से मिलने आई थी।"

केशवचन्द्र मन ही मन सोचने लगा—तब की उच्छृङ्खल बाला सुषमा और इस गम्भीर युवती में कितना अन्तर हो गया है। अच्छा, तो अब ये मिसेज रुस्तमजी हैं। विवाहिता नारी हैं। इनके पति कोई बड़े पारसी व्यापारी होंगे।

"मेरे योग्य क्या कार्य था?" केशवचन्द्र ने सरोज की ओर देखकर ही प्रश्न किया। वह अपनी व्यंगपूर्ण मुस्कराहट तथा भावभंगी से पत्नी को यह व्यक्त कर देना चाहता था कि यही वह लड़की थी, जिससे उसके चाचा उसका विवाह करना चाहते थे। प्रत्युत्तर में पत्नी ने अपनी पूर्ण प्रफुल्ल मुद्रा से पति को व्यक्त कर दिया कि वह सब कुछ पहले ही जान चुकी है।

सुषमा उसी गम्भीरता से बोली—"मेरे पति खनिज पदार्थों की खोज करनेवाली एक संस्था के सभापति हैं। इस संस्था का नाम प्रॉसपेक्टर्स एसोसिएशन है। इसका कार्य सारे देश में घूम-फिर कर खनिज पदार्थों का पता लगाना है। उन्होंने अभी-अभी किसी दूर पर्वत श्रेणी के समीप अभ्रक की खान का पता लगाया

है। उसी सम्बन्ध में आपकी सहायता-याचना के लिए आई थी।"

"कहाँ है वह पर्वत-श्रेणी ?" केशवचन्द्र ने चाय पीते-पीते पूछा।

सुषमा ने उसकी ओर देखा और किंचित् मुस्कराकर बोली—"खनिज पदार्थों के पता लगानेवाले ऐसी बातों को अपने ही तक सीमित रखते हैं। मैंने इसलिए दूर पर्वत श्रेणी कहकर ही उस स्थान की गुप्त तथा अनिश्चित स्थिति का आपको पता दिया। जब तक उन्हें उस खदान की आज्ञा न मिल जाए, वे उसका पूरा पता न देंगे। स्वयं मुझे ही नहीं मालूम कि वह कहाँ है ?"

"हाँ, अभ्रक या माइका तो आजकल बहुत ही बहुमूल्य खनिज पदार्थ है।" केशवचंद्र गम्भीर होकर बोला—"निश्चय ही ऐसे रहस्य को गुप्त रखना चाहिए। पर हम व्यवस्था की बातें क्या जाने ? वैज्ञानिक तो स्वभाव से ही जिज्ञासु होता है। इसीलिए मैं यह प्रश्न कर बैठा था। पर खनिज पदार्थों से तो मेरा कुछ भी संबंध नहीं। हमारी प्रयोगशाला में तो धातु-विषयक अनुसंधान भी नहीं होते। मैं नहीं समझता कि मैं इस संबंध में आपकी कुछ सहायता कर सकूँगा।"

"अनुसंधान के लिए हमें एक उपयुक्त वैज्ञानिक चाहिए।" सुषमा ने कहा। ऊन की उन पिंडियों और तीलियों को मेज पर रखकर वह भी अब तश्तरी उठाकर अपनी ओर ले गई और बोली—"मेरे पति अभ्रक के सम्बन्ध में अनुसंधान करने के लिए पर्याप्त धन व्यय करने को तैयार हैं। लगभग एक हजार रुपया प्रति मास तो माइका व्यापारियों की संस्था ने ही देना स्वीकार कर लिया है। इतना ही और रुपया वे अपनी ओर से देंगे।"

"करना क्या होगा ?" केशवचंद्र बोला।

"अभ्रक की खान जिस दूर पर्वत-श्रेणी पर मिली है, वहाँ अभ्रक की परतों के साथ एक और पदार्थ मिला हुआ पाया जाता

है।" सुषमा फिर गम्भीर होकर बोली—"वह पदार्थ किस प्रकार सुगमता से छुड़ाया जा सकता है इसी पर आविष्कार करना है।"

"बहुत कठिन काम नहीं है।" केशवचंद्र ने कहा—"आपको बनारस विश्वविद्यालय के भूगर्भ-विज्ञान के प्रोफेसर सेन से मिल लेना चाहिए।"

"पर हमारी संस्था किसी शिक्षण संस्था को इस नए पदार्थ का भेद नहीं देना चाहती।" सुषमा बोली—"वह स्वतंत्र रूप से वैज्ञानिकों की सहायता चाहती है, और अपनी अलग अनुसंधान-शाला खोलकर, विदेश के माइका व्यापारियों से आगे बढ़ जाना चाहती है। शिक्षण संस्था द्वारा अनुसंधान कराने से रहस्य के खुल जाने का डर है।"

केशवचंद्र खिड़की से बाहर ध्यानमग्न सा देखता रहा। सोचने लगा—'संगीत में प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण होनेवाली यह वही सुषमा है, जो उस दिन पदार्थों के घनत्व का ध्वनि-तरंगों पर प्रभाव जानना चाहती थी; जिसने मुझसे जलतरंग की ताल और ध्वनि के विषय में जिज्ञासापूर्ण प्रश्न किए थे। अब इसका वह संगीत प्रेम, प्रस्तरी-भूत होकर पत्थर और खानों की खोज की ओर चला गया है। अब भी क्या यह गाती होगी? ऐसी शालीन, चञ्चल युवती को तो निश्चय ही किसी कला की साधना करनी चाहिए थी, न कि व्यवसाय की।'

उस क्षणिक निस्तब्धता को भंग करते हुए सुषमा ने कहा—"आप यदि माइका व्यवसाय की इस प्रयोगशाला के सञ्चालन का भार उठाना चाहें और हमारे इस अनुसंधान में सहायता करने का वचन दें, तो हम लोग आपको डेढ़-दो हजार रुपया मासिक तक दे सकते हैं।"

वह फिर अपनी इस बात का अन्य तीनों पर कुछ भी स्पष्ट प्रभाव पड़ते न देखकर और उन सबको चुप देखकर बोली—"मैं इसी प्रार्थना की लेकर आपके पास आई थी।"..

केशवचन्द्र चुप रहा। सोचने लगा—'यह कैसा मायाजाल है। मैं जब एक बार ध्येयहीन हो गया हूँ, तो ये प्रलोभन मुझे दलदल की ओर खींचे ले जा रहे हैं। पाँच सौ रुपये मासिक प्राप्ति के लोभ में आकर मैंने अपना प्रिय अनुसंधान कार्य छोड़ा। अपने यंत्रों को, जो मेरे आवश्यक अवयव से थे, किराए पर उठा दिया; अब जब मैं यहाँ से जाने की तैयारी करके बिलकुल तत्पर ही बैठा हूँ, तो यह युवती आकर एक नया ही प्रलोभन मेरे सम्मुख रख रही है। मानो रुपये के लोभ में आकर अब तक जो कुछ मैंने करने का निश्चय किया है, वह पर्याप्त नहीं है। और उससे भी अधिक मुझे अपने मार्ग से विचलित होना पड़ेगा।'

सरोज अपने पति की मुद्रा पर पड़ती हुई गम्भीरता को लैम्प के प्रकाश में स्पष्ट देख रही थी। सुषमा की वह आकर्षक योजना उसे एक कुटिल चाल की भूमिका-सी ज्ञात हो रही थी और डर हो रहा था कि पति, बिना उसे भली भाँति सोचे-विचारे कहीं अपना सहयोग देने की स्वीकृति न दे दें।

वैकावि उन सबको चुप देखकर अपनी बात कहने का अवसर पाकर पहली बार कुछ हिचकिचाता हुआ बोला—"मैं आपसे मिलने आने ही वाला था कि बहिनजी आ गईं। साथ ही चला आया। यहाँ सैनिक शस्त्रागार में तो वैकावि वस्तुएँ जाती ही हैं, कानपुर में भी आप उन्हें मँगवा लें, तो मेरा बड़ा उपकार हो जायगा। मैं यहाँ के कमांडिंग अफसर की चिट्ठी ले आया हूँ। इसकी एक नकल आप रख लें। कभी अवसर मिले तो इसका उपयोग करके कोई आर्डर भिजवा दें।" उसने अपनी जेब से एक टाइप किया हुआ कागज निकालकर केशवचंद्र को दे दिया।

केशवचंद्र ने केवल सिर हिला दिया और उस कागज को जेब में रख लिया। वह सोचने लगा, सभी मेरे कानपुर जाने से लाभ उठाना चाहते हैं। कलक्टर साहब ने जूतों का पार्सल भिजवा देने को कहा है। बनर्जी कृषि-कालेज में आवेदन-पत्र देकर मेरे ही द्वारा नियुक्ति का प्रयत्न करवाना चाहता है। बैकावि अपनी वस्तुओं के लिए ग्राहक ढूँढ़ना चाहता है। और सुषमा माइका की खान के व्यवसाय में सहायता माँग रही है। कहीं कोई यह नहीं पूछता कि तुम वहाँ क्या करोगे? तुम्हारा चित्त तो वहाँ प्रसन्न रहेगा? पर इस सुषमा को हो क्या गया है? अपनी संगीतप्रियता से क्या यह विमुख होकर मेरी ही भाँति लक्ष्यहीन हो गई है? जो भी हो, मैं इसकी योजना के फेर में बिलकुल न पड़ूँगा, यह निश्चय है।

अब वह चाय की अंतिम घूँट पीकर प्याली को तश्तरी पर रखकर कुर्सी पर पूरी तरह लदकर बैठ गया और मानो उस आक्रांता सुन्दरी की कुटिल प्रगति को यथाशक्ति विफल करने के लिए दृढ़संकल्प हो बोला—"सुषमाजी, जाने भी दीजिए व्यवसाय की इन बातों को। आप तो नारी हैं। संगीत से आपको विशेष प्रेम है। व्यापार और व्यवसाय की बातें वैसे भी स्त्रियोचित नहीं जान पड़तीं, फिर आप जैसी उच्च शिक्षाप्राप्त युवती इनके बिलकुल योग्य नहीं है। क्या आपने संगीत से बिलकुल ही सम्बन्ध तोड़ दिया है?"

'सुषमा' इस नाम को, जिसे वह विवाह के उपरान्त पिछले कई मास से केवल अपने पति के मुँह से सुनती है, अब परपुरुष के मुँह से सुनकर उसे किंचित् रोमांच सा हो आया और संगीत तथा शिक्षा-संबन्धी अपनी इस प्रकार की प्रशंसा सुनकर वह क्षण भर मुस्कराई; किन्तु फिर केवल होठों से ही हँसकर वह गम्भीर हो बोली—"क्या करना है संगीत-प्रियता से? केवल संगीत ही तो

जीविकोपार्जन के लिए पर्याप्त नहीं है। मैं तो आपके जैसे वैज्ञानिक के धंधे को चाहती हूँ, जिससे एक ओर तो किसी नई ज्ञानदिशा से परिचय प्राप्त हो जाता है और दूसरी ओर मानव का उपकार भी। इसलिए मैंने माइका के इस व्यवसाय में अनुसंधान करने की योजना बनाई थी। माइका-बोर्ड ने मेरी इस योजना को स्वीकार कर लिया है। कितना अच्छा होता, यदि आप भी इसमें सहयोग देने का वचन दे देते। रुपया हमारा लगता और ज्ञान आपका।"

केशवचन्द्र बोला—"पर मैं तो विज्ञान-सम्बन्धी अनुसंधानों को छोड़ रहा हूँ?"

"नहीं, आप भला ऐसा कर सकते हैं?" सुषमा ने आश्चर्य-चकित होकर कहा—"आप जैसे विद्वान यदि अनुसंधान-कार्य में संलग्न न रहें, तो कौन इस महान् कार्य के उत्तरदायित्व का भार ग्रहण करेगा?"

"जो भी चाहे ग्रहण करे।" केशवचन्द्र ने विरक्त होकर कहा—"मैं तो यह सब छोड़कर कल ही जा रहा हूँ। मुझे नौकरी मिल गई है।"

सुषमा ने और भी अधिक आश्चर्य से कहा—"क्या आप सचमुच जा रहे हैं?"

वैकावि ने केवल इसी प्रश्न को समझकर बीच ही में कहा—"हाँ-हाँ, जा तो रहे हैं।"

"कहाँ जा रहे हैं? सुषमा ने सारी बात को ठीक न समझ सकने से तथा अपनी जिज्ञासा को न रोक सकने के कारण तत्काल ही पूछा।

उत्तर में किंचित् मुस्कराकर केशवचन्द्र ने कहा—"यह भी एक रहस्य की बात है, जिसे एक सैनिक को बतलाना नहीं चाहिए।"

"तो आप सेना में नौकरी करने जा रहे हैं ?" सुषमा बोली—"और कानपुर जा रहे हैं ? वैकावि तभी तो कानपुर के विषय में आपसे कुछ कह रहे थे ?"

"हाँ, वह तो आप वैकावि की उस बात से समझ गई होंगी।" केशवचन्द्र ने हँसते हुए कहा।

घड़ी देखकर देरी का बहाना करते हुए सुषमा ने कहा—"तब मैंने आपको व्यर्थ कष्ट दिया।" और वह उठने लगी।

"पान तो खा लीजिए।" सरोज भी उठते हुए बोली, और थोड़ी ही देर में पान लाकर सुषमा और वैकावि की ओर तश्तरी बढ़ाकर बोली—"आप ठहरी कहाँ हैं ? क्या तांगा मँगवा दूँ ?"

"नहीं नहीं, मैं इनके साथ चली जाऊँगी। कालेज के पास ही उस होटल में हम ठहरे हैं।" सुषमा ने वैकावि के कन्धे पर हाथ रखकर कहा—"मिस्टर रुस्तमजी अब दूकान से आते ही होंगे।"

"किस दूकान से ?" केशवचन्द्र ने पूछा।

"बम्बई में अपने व्यवसाय के बन्द होने पर उन्होंने पास के जिले में एक ठेका ले लिया है। महीने में एक बार हिसाब लेने यहाँ भी आना होता है।"

"अभ्रक की खान क्या यहाँ भी है ?" केशवचन्द्र ने पूछा।

"नहीं, वह तो ताड़ी का ठेका है।" सुषमा बोली—"आपको तो ज्ञात ही होगा कि वे बम्बई में शराब के बड़े व्यापारी थे। अब किसी दूसरे व्यवसाय की तलाश में हैं।"

"मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं। मैं तो आज जान पाया कि आपका विवाह एक पारसी परिवार में हुआ।" केशवचन्द्र बोला।

"विवाह हो गया, यह तो आपने सुना था ?" सुषमा फिर मुस्कराकर किंचित् व्यंग से बोली।

"शायद सुना हो, पर ध्यान नहीं है।" केशवचन्द्र ने कहा।

इस उत्तर को सुनकर सुषमा ने एक दीर्घ निःश्वास लिया और साड़ी के ऊपर कोट डाल लिया। शायद सुषमा का वैवाहिक जीवन सुखमय नहीं है, यही सोचकर केशवचन्द्र क्षण भर चुप रहा और प्रसंग को बदलकर बोला—"पर अभ्रक की खान की बात आपने कही थी ?"

सुषमा ने कहा—"हाँ, वह तो अभी खोजनेवालों के हाथ में है। यदि किसी वैज्ञानिक ने सहायता दी, तो सफलता भी मिल सकती है। है वह बड़े लाभ की वस्तु। उसमें जो कुछ व्यय किया जाए, सब शीघ्र वसूल हो सकता है।"

फिर उसी गम्भीरता का आवरण-सा पहने हुए, कुर्सी से उठकर बाहर की ओर चलते हुए सुषमा ने थकी सी वाणी में कहा—"आपने सचमुच अनुसंधान-कार्य को छोड़ने का निश्चय कर लिया है, यह जानकर बड़ी निराशा हुई। शराब के ठेकों का हमारा व्यवसाय समाप्तप्राय है। शराबबन्दी-योजना के कारण बम्बई में ही क्या, कहीं भी ठेके मिलना कठिन है। अभ्रक के व्यवसाय में लग जाने का इरादा किया है, पर वहाँ भी किसी वैज्ञानिक शोध करनेवाले की सहायता के बिना काम न होगा।"

"हाँ, यह तो आवश्यक है।" केशवचन्द्र ने सुषमा को सीढ़ियों तक पहुँचाकर उसके पीछे-पीछे चलते हुए कहा।

धीरे-धीरे सब सीढ़ियों को पार करके फिर क्षण भर वहीं अटक कर सुषमा बोली—"नमस्ते। आपसे चलते समय मिल सकी, यह मेरा सौभाग्य है। कभी किसी काम की आवश्यकता पड़ गई तो कष्ट देने आऊँगी।"

"अवश्य, अवश्य।" केशवचन्द्र ने कहा और हाथ जोड़कर जल्दी-जल्दी सीढ़ियों को पारकर ऊपर आ गया।

११—सैनिक गोदाम

"उसमें मुझे क्या देखना होगा ?" केशवचन्द्र ने पूछा।

"क्या देखना होगा ? आप तो,..." टेलीफोन पर आवाज आई—"मुझसे ही पूछ रहे हैं कि उसमें क्या देखना होगा। देखना तो जो कुछ है, आपही को है। मैं क्या बता सकता हूँ ? कैमिस्ट का काम जानें आप।"

"जमादार साहब, मुझे कुछ नहीं मालूम, उसमें क्या देखना है। घी है, यह तो आप भी बता सकते हैं।" केशवचन्द्र ने कहा।

"हाँ, घी तो है ही।" टेलीफोन पर वह जमादार बोला—"आप के पास नमूना भेज रहा हूँ। लिखकर भेज दीजिए कि 'ए-वन' है या 'ए-टू' या 'ए-सी'। बस, इतना ही तो करना है।"

केशवचन्द्र ने टेलीफोन रख दिया। मन ही मन कहा—'अब सारा रसायनशास्त्र भूलकर मुझे पदार्थों का नया ही विभाजन सीखना होगा। कोई भी वस्तु क्यों न हो, मुझे यही बताना होगा कि वह ए—१ है, ए—२ है, या ए—३। मानो तत्व, अणु और परमाणु सब पल्टन के इन गोदामों में आकर इन्हीं तीन नई इकाइयों में परिवर्तित हो जाते हैं। आटे में वही तीन इकाइयाँ हैं, चावल में वही तीन, दाल में वही तीन और घी में भी वही। इसके अतिरिक्त मुझे न कुछ देखना है और न कुछ बताना। तब भी मैं कैमिस्ट हूँ—रासायनिक। मुझे इस विश्लेषण के लिए पाँच सौ रुपए मिलते हैं—प्रतिदिन सोलह रुपए। पर्वत-शिखरों की दुर्गमता का अनुभव प्राप्त करके अब मुझे दीमक के बनाए इन लुप्तप्राय घरौंदों को पर्वत-सा महत्वपूर्ण समझकर उनका विभाजन करना है। यह

काम किसी बनिए को दिया जाता अथवा किसी अनपढ़ किसान को तो कहीं अधिक उपयुक्त होता।'

टेलीफोन की घंटी फिर बजी और केशवचन्द्र ने फिर उसे कान पर लगाया। जमादार बोल रहे थे—"देखिए डाक्टर साहब, घी का जो नमूना भेजा है, वह आज ही भेजना है। घी अच्छा है, दूध का है—'मिल्क-घी', वनस्पति घी नहीं है।"

"हाँ हाँ, मैंने सुन लिया है।" केशवचन्द्र ने कहा—"आप की राय में क्या घी अच्छा है, कच्चा खाया जा सकता है?"

"अजी, घी का क्या कहना? ए-वन है ए-वन।" जमादार बोला—"ऐसा घी बहुत कम आता है, तभी तो मैंने कहा, डाक्टर साहब।"

केशवचन्द्र ने कहा—"मैं डाक्टर नहीं हूँ, जमादार साहब, मैं तो कैमिस्ट हूँ, कैमिस्ट।"

"अच्छा, जो भी हों, हमारे लिए तो आप डाक्टर ही हैं। मेहरबानी करके इसे ए-वन लिख दीजिए ताकि इसे आज ही भिजवा दूँ। मेजर साहब ने कहा है ब्वाय-कम्पनी के पास अभी घी नहीं पहुँचा।"

केशवचन्द्र ने फिर टेलीफोन रख दिया। सोचा—'तब फिर विश्लेषण की आवश्यकता ही क्या। कहाँ अन्न के वे सूक्ष्म अनुसंधान, श्वेतसार और स्टार्च के वे विश्लिष्ट विभाजन और कहाँ यह काम! मैंने तो रुपए के लोभ में अपना जीवन ही बरबाद कर दिया। इससे तो यदि मैं सुषमा की उस अभ्रक योजना का संचालक बनना स्वीकार कर लेता, तो कहीं अच्छा रहता। रसायनों के प्रतिदिन के व्यवहार से मुझे उनके उपयोग का अभ्यास तो निश्चय ही रहता। यहाँ तो घी, दूध, आटे और चावल के इस मनमाने विश्लेषण से मैं अपनी उस दुनिया से ही विलग होता जा रहा हूँ।

'उस दिन कानपुर पहुँचने पर सबसे पहला पत्र जो मुझे मिला था, वह सुषमा का ही था। उस पत्र को तथा उसके साथ में भेजे हुए अखबार की उस कटिंग को देखकर सरोज को भी विश्वास हो गया था कि माइका के उन अनुसंधान-कर्त्ताओं की वह संस्था वास्तव में किसी अच्छे वैज्ञानिक की तलाश में है। उस छोटे से पत्र में सुषमा ने अपनी संस्था के उस विज्ञापन को मेरे पास भेजने के लिए क्षमा चाही थी और आग्रह किया था कि सेना की नौकरी यदि मुझे न रुचे, तो मैं अब भी उनकी संस्था का वैज्ञानिक सहायक बनने का वचन दे दूँ। सरोज को अब भी उस सारी योजना में कुछ भी तथ्य की बात नहीं ज्ञात होती। वह सुषमा के आग्रह को अब भी सन्देह की दृष्टि से देखती है। उसने कहा था—आप जैसे उत्कृष्ट प्रसिद्धिप्राप्त वैज्ञानिक के क्षणिक सम्पर्क से ही शायद सुषमा प्रभावित होकर आपके सहयोग की अपेक्षा से ऐसी योजना को बनाकर लाई हो। यदि वह सच है तो उस संस्था के अन्य सदस्य, और स्वयं सुषमा के पति ही क्यों आपसे सीधे पत्र-व्यवहार नहीं करते।

'सरोज की यह आशंका सच हो सकती है। वैज्ञानिकों के अनुसंधानों की सुषमा बड़ी प्रशंसा करती थी। उस दिन उसने कहा था—संगीत से ही तो जीविकोपार्जन नहीं हो सकता। वैज्ञानिक अनुसंधान चित्ताकर्षक मनोरंजन भी है और मानव-कल्याण का साधन भी। पर मैं तो ध्येयहीन ही नहीं, पथभ्रष्ट हो गया हूँ। यदि यह जानता कि रासायनिक परीक्षक के नाम पर मुझे यहाँ, एक आदिवासी बनिए की भाँति सूँघने-चखने का परीक्षण करना पड़ेगा, तो इससे तो कोई भी और स्वतंत्र व्यवसाय अधिक उपयोगी होता।'

कानपुर में केशचन्द्र का मन बिलकुल न लगा। वहाँ न तो किसी क्लब में जाने की उसकी इच्छा होती और न किसी आमोद

प्रमोद के सैनिक आयोजन में ही वह सहयोग देता। अपने साथ जो थोड़ी-सी पुस्तकें और रसायन वह लाया था, उनके बंडल ज्यों के त्यों बँधे रखे थे। उसे अपनी स्वतंत्र प्रयोगशाला बनाने के लिए कहीं कोई कमरा नहीं मिला और न सैनिक अधिकारियों ने इस बात की आज्ञा ही दी। उसके रहने के लिए जो कमरे मिले, वे भी कुछ अच्छे न थे। क्वार्टरों की उस पंक्ति में, पल्टन के कई सूबेदार और जमादार रहते थे, जिनमें से अधिकांश को सेना के खाद्यान्नों के भंडारों की देख-रेख का काम सौंपा गया था। सरोज को इसीलिए दो ही तीन दिन के उपरान्त कानपुर छोड़कर अपने पिता के घर चले जाना पड़ा।

प्रतिदिन प्रातःकाल केशवचन्द्र को सब्जी और फलों की खरीदारी के समय सड़ाई-डिपो जाकर उन्हें प्रमाणित करना पड़ता कि वे सेना द्वारा निर्धारित उन तीन श्रेणियों में से किस श्रेणी में आँके जा सकते हैं। दोपहर को खाना खा चुकने के उपरान्त उसे फिर आटे और चावल के गोदामों की खरीदारी के समय ऐसे ही काम के लिए उपस्थित रहना पड़ता। शाम को बाहर किसी सैनिक टुकुड़ी के लिए भेजे जानेवाले गल्ले की परीक्षा करनी पड़ती थी। सैनिक अधिकारियों ने इन सब वस्तुओं की परीक्षा के लिए जो पुराने और भद्दे नियम बना रखे थे, उनसे विचलित होकर स्वतंत्र परीक्षण के तरीके को अपनाने की, कई बार प्रयत्न करने पर भी केशवचन्द्र को आज्ञा नहीं मिली थी।

अपने पुराने सहपाठी उस कम्पनी कमाण्डर की आज्ञा प्राप्त करके केशवचन्द्र ने बड़ी कठिनाई से एक नए आधुनिकतम सूक्ष्मदर्शक यंत्र प्राप्त करने की अनुमति तो ले ली; पर ऐसे यंत्रों के ग्राहकों की सूची में उससे आगे कई और संस्थाओं के नाम थे, इसलिए वह यंत्र भी उसे न प्राप्त हो सका।

दिन भर के परिश्रम के उपरान्त केशवचन्द्र सन्ध्या समय सेना

के साधारण 'मेस' में खाना खाकर यह संकल्प करता कि आज स्टार्च के विषय में रूसी विद्वान् की लिखी उस पुस्तक के दो अध्याय अवश्य समाप्त कर लूँगा। पुस्तक लेकर वह बैठ भी जाता; पर एक-दो पृष्ठ पढ़ने के उपरान्त ही पुस्तक के सारे पृष्ठ अस्पष्ट से हो जाते। छपी हुई पंक्तियों के शब्द छितराकर रेंगती हुई चींटियों की भाँति दीखने लगते। दूर किसी अश्लील उपहास की ध्वनि, अथवा रेडियो के किसी गाने को सुनकर सिपाहियों की हँसी का तुमुल गर्जन उसके कानों में तैरता-सा आकर उसकी सारी एकाग्रता को बहा ले जाता। पुस्तक बन्द करके वह अपने ही से कुढ़कर चारपाई पर लेट जाता।

उसे नींद भी भली भाँति न आती। पिछले कई सप्ताह से वह लगभग प्रत्येक रात में एक ही भाँति का स्वप्न देखता कि परीक्षा के दिन हैं। केशवचंद्र प्रथम उत्तीर्ण होने की आशा करता है। प्रातःकाल उठकर नहा-धोकर वह परीक्षाभवन तक गया है। पर वहाँ जाकर देखता है कि वह तो निश्चित समय से बहुत देर में पहुँचा है। अब उस लम्बे हाल के सभी द्वार बन्द हो गए हैं। परीक्षार्थी अपनी-अपनी मेज पर बैठकर तल्लीनता से लिख रहे हैं। केशवचंद्र अपराधी-सा एक दरवाजे पर खड़ा हो गया। उसने धीरे से डरकर कुंडी खटखटाई। बड़ी देर में परीक्षक ने सुना। वह दरवाजे तक आया और उसे बिना खोले ही तथा केशवचन्द्र को बिना पहचाने परीक्षक ने कहा—"जाओ, अब अन्दर आने की आज्ञा नहीं है। बहुत समय हो गया है।" 'मैं हूँ केशवचन्द्र, मैं अब भी सब प्रश्नों का यथासमय उत्तर दे सकता हूँ।' उसने बन्द दरवाजे के बाहर से ही प्रार्थना की, पर परीक्षक ने तब तक उसकी ओर पीठ फेर दी!

कभी-कभी केशवचन्द्र सोते-सोते चौंक पड़ता। स्वप्न में वह देखता कि उसके पिताजी विश्वविद्यालय के उस बड़े होस्टल के

अधिष्ठाता हैं। पिछले वर्ष परीक्षा में न बैठ सकने के कारण वह अपने पिता से बिछुड़ गया था और पूरे साल भर अपने चाचा के पास रहा था। अब फिर होस्टल में भर्ती होकर नए विद्यार्थियों के साथ पढ़ने आया है। उसके पुराने सहपाठी उसे पहचानकर कह रहे हैं—'हाँ, तुम्हें अवश्य परीक्षा देनी चाहिए। ऐसे बुद्धिमान् विद्यार्थी के लिए तो पढ़ाई बीच ही में छोड़ देना ठीक नहीं। सफलता सुख-समृद्धि भावी जीवन का द्वार खोलकर तुम्हारे स्वागत के लिए मानो खड़े हैं। अब की बार अवश्य परीक्षा में बैठना।'

केशवचन्द्र संकुचित-सा हो अपनी गलती पर पश्चात्ताप करता है और प्रत्युत्तर में फीकी हँसी अपनी मुद्रा पर धारण कर लेता है। शीघ्र ही चञ्चल विद्यार्थियों का एक झुण्ड आ उसे घेर लेता है। वे कहते हैं—'अब केशवचन्द्र से कुछ नहीं हो सकता। यह तो सदा ऐसा ही करता है। प्रति वर्ष जुलाई के आरम्भ में आकर यही कहता है कि इस साल अवश्य नाम लिखवा लूँगा और परीक्षा दूँगा। पर दो-चार दिन नए नए विद्यार्थियों के मध्य रहकर फिर अपना निश्चय त्यागकर वापस घर चला जाता है। पिछले कई वर्षों से इसका एकमात्र यही काम हो गया है।'

× × ×

इस प्रकार पूरा एक माह समाप्त हो गया। वेतन मिलने पर केशवचन्द्र ने चार सौ रुपए सरोज को भेज दिए। वह अपने पिता के घर चली गई थी। उन रुपयों के चेक के साथ केशवचन्द्र ने एक लम्बा-सा पत्र लिखकर रख दिया। उसमें उसने अपनी मनोदशा का संक्षिप्त वर्णन किया था और अन्त में लिखा था—"इन रुपयों के प्रलोभन में आकर ही सोचता हूँ कि मैंने आविष्कारक केशवचन्द्र को बेच दिया। विज्ञान का अनुसंधान-कार्य करके, थानेदारी या नायब तहसीलदारी खोजने वाले अपने सहपाठियों से मैं किसी भी भाँति बढ़कर नहीं हूँ।"

पर डाक में छोड़ने से पहले केशवचन्द्र ने एक बार फिर उसे पढ़ा और पढ़कर फाड़ दिया। फिर नया कागज लेकर एक छोटा-सा पत्र लिखा। उसमें अपने मन की स्थिति का किंचित् भी आभास नहीं दिया। वह इस प्रकार था :—

प्रिय सरोज,

आशा है, तुम प्रसन्न होगी। आटे-चावल की बोरियों के साथ मेरे दिन भी आनन्द से कट रहे हैं। विश्वविद्यालय में शायद तीन वर्ष अनुसंधान करने के उपरान्त मुझे डाक्टर की उपाधि मिलती; पर यहाँ खाद्यान्नों के परीक्षण के कारण सभी सैनिक मुझे 'डाक्टर' कहकर पुकारते हैं। उपाधि मिल गई है, भले ही मैं इसके योग्य न होऊँ।

होली में, अवकाश मिला तो छुट्टी लेकर आऊँगा।

तुम्हारा ही,
केशवचन्द्र।

चिट्ठी डाल देने के उपरांत केशवचन्द्र फिर सिपाहियों की उस बड़ी पंक्ति को, जो परेड करती हुई उसके निवास के समीप से गुजर रही थी, देखकर सोचने लगा—'ये लोग मेरे विषय में क्या जान सकते हैं? और मैं ही इनके विषय में क्या जानता हूँ? ये लोग तो मृत्यु के घेरे के किनारे पर ही बैठे हैं। न जाने कितने ही इनमें से मुझसे भी अधिक खिन्न हैं। शायद मेरे अनुसंधान-कार्य से भी अधिक प्रिय वस्तुओं को छोड़कर इनमें से कई व्यक्तियों को बाध्य होकर यहाँ आना पड़ा हो। जीवन क्षण भर में बुझ जाने-वाली एक चिनगारी से भी अधिक क्षणभंगुर है इनके लिए। मैं इनसे कहीं अधिक निरापद स्थिति में हूँ, इसलिए मुझे सुखी होना चाहिए।'

दिन भर अपने काम में व्यस्त रहकर कई गोदामों का चक्कर काट

कर वह जब शाम को अपनी चारपाई पर लेटता, तो फिर पुस्तक लेकर पढ़ने का प्रयत्न करता और सोचता कि आज अपने विषय में वह किंचित् भी न सोचेगा। अपने मन को वह उत्साहित करता कि इधर-उधर की अन्य घटनाओं पर ही उसका मस्तिष्क विचरता रहे। दिन भर में किए परीक्षण, बाहर भेजी गई मोटर ट्रकों तथा मिलनेवाले ठेकेदारों के विषय में वह फिर सोते-सोते विचार करता। पर मोटर का नम्बर याद आते ही उसका रंग भी याद आ जाता। कॉमोफ्लेज किया हुआ ट्रक, वह रंग उसे बहुत भाता। जमीन और घास-फूस के रंग से, युद्धक्षेत्र में चलनेवाली उन मोटर लारियों का रंग बिलकुल मिल जाता था। शत्रु की आँखों से बचने के लिए ऐसा करना आवश्यक था। 'वह रंग कैसे बना होगा? लकड़ी पर का वह खाकी रंग किस रसायन के किस अनुपात में मिलाने से प्राप्त हुआ होगा? क्रोमोमियम, मैंगनीज तथा कोबाल्ट के से धातुओं का उपयोग हुआ होगा या फिर लोहे के किसी आक्साइड का? या वह रंग मिट्टी का ही रंग है? मैं भी गेहूँ के स्टार्च के लिए किसी ऐसे ही रंग की खोज में था।' ऐसे विचार अचानक ही आ घेरते। फिर तत्काल वह अपने मस्तिष्क को एक झटका सा देकर आँखों को जल्दी-जल्दी दो-तीन बार बन्द करके फिर खोलकर परसीवाल की उस पुस्तक को एकाग्र होकर पढ़ने का प्रयत्न करता अथवा उसे बन्द करके सिपाहियों के किसी 'फरमायशी' रेडियो के गाने की स्वरलहरी पर मन ही मन ताल और ध्वनि देने का प्रयत्न करता; पर फिर बरबस ही लौट-फिरकर उसके विचार प्रयोगशाला की ओर उसे ले चलते। कभी-कभी तो विचारों का यह क्रम उसे रात भर एक असह्य उलझन में डाल देता और प्रातःकाल तक नींद की एक झपकी भी न आती।

किसी साथी से अपने मन की बात कहकर शायद उसकी व्याकुलता कुछ दूर भी हो जाती; पर उस नगर में ऐसा कोई भी

मित्र उसका न था, जिसके सम्मुख वह अपनी उस ग्रन्थिल समस्या को सुलझाने का साहस करता। कई बार उसने अपने उस सहपाठी के सम्मुख जाकर, जिसने उसे यह नौकरी दिलवा दी थी, अपनी व्यथा के कह डालने का संकल्प किया। पर यही सोचकर कि सैनिक अधिकारी जीवन को इतना गम्भीर नहीं समझते और शायद अपनी नियुक्ति के उपरान्त अब इस पद के लिए अनुपयुक्तता प्रदर्शित करना, उस सच्चे हितैषी अफसर को रुष्ट करना होगा, यही सोचकर केशवचन्द्र उससे भी मिलने में संकोच करने लगा।

१२—अस्पताल में

सेना के उस खाद्यान्न परीक्षक, तथाकथित 'डाक्टर' केशवचन्द्र का मनोद्वेग बढ़ता ही गया। सिपाहियों और गोदामों के चौकीदारों से भी उसका वह अद्भुत स्वभाव छिपा न रहा। बहुधा उसके पड़ोस में रहनेवाले उसकी दिनोदिन निस्तेज होती मुद्रा को देखकर उसका उपहास करते और कहते—'क्यों डाक्टर साहब, इतनी सारी खाने-पीने की बढ़िया-बढ़िया चीजों को पाकर भी आप दुबले होते जा रहे हैं।'

'डाक्टर' प्रत्युत्तर में कभी खिसियाकर दाँत खोल देता। कभी केवल सिरा हिलाकर मूक प्रत्युत्तर सा देकर मानो यह जतलाने का प्रयत्न करता कि मुझे इस सबसे क्या प्रयोजन। यह जिसके लिए निश्चित है, उसी को मिलेगा।

"इस कुर्सी पर बैठकर तो बड़े-बड़े माल उड़ाए हैं पुराने परीक्षकों ने।" गोदाम का पुराना ईमानदार मुंशी कहता—"खूब मोटे होकर गए हैं।"

चौकीदार मुंशी का समर्थन करके, अपनी भी ईमानदारी प्रकट करने के लिए तत्काल कहता—"हाँ, ठाट किए उन लोगों ने। खूब रुपया कमाया बनियों से। शर्माजी तो बनियों को भी बना गए और सरकार को भी।"

केशवचन्द्र कटते हुए आलुओं की गिनती करता हुआ इन सबकी व्यर्थ बातों की बिलकुल ही अवहेलना करके कहता—"दस हो गए। कितने आलू खराब निकले।"

परीक्षा के लिए प्रस्तुत आलुओं के ढेर में कोई दस आलू उठाकर केशवचन्द्र चौकीदार की ओर बढ़ाता। चौकीदार चाकू से काटकर प्रत्येक के दो-दो टुकड़े करता और फिर वे टुकड़े केशवचन्द्र के सामने रखे जाते। कटे हुए गोलाकार भाग में कोई छेद मिलने अथवा नीला धब्बा ज्ञात होने पर उस टुकड़े को अलग रख दिया जाता। दस आलुओं में तीन खराब निकलने पर उसे ए-३, दो खराब निकलने पर ए-२ और एक या कोई भी खराब न निकलनेवाले आलू को ए-१ घोषित किया जाता। गोदाम के नियमों में परीक्षा के लिए यही विधि निर्धारित थी, इसलिए केशवचन्द्र भी इसमें परिवर्त्तन न ला सका। कई बार उसकी इच्छा हुई कि आलुओं की इस श्वेत कटी हुई परत पर अपने सूक्ष्मदर्शक यंत्र को लगाकर देखे कि वह नीला रंग किस बैक्टीरिया के कारण उत्पन्न हुआ है। श्वेतसार पर आयोडीन के संसर्ग से जो नीला रंग उत्पन्न होता है, उसमें और इस स्वाभाविक नीले रंग में क्या कोई सामञ्जस्य है? पर न तो कोई ऐसा यंत्र वहाँ सुलभ था और न ऐसा करने की उसे अनुमति ही प्राप्त थी। गोदाम की वस्तुओं का गोदाम ही के अन्दर परीक्षण होना चाहिए, सैन्य गोदामों से एक भी दाना बिना अनुमति के बाहर नहीं जा सकता था। पहरेदार बाहर जाते समय परीक्षक की भी परीक्षा लेना न चूकते थे।

यद्यपि उस दिन कटे हुए एक आलू के मध्य में एक गोलाकार नील वर्ण की रेखा को देखकर केशवचन्द्र ने उसे उठा लिया और कुर्सी से उठकर समीप ही एक खिड़की के पास ले जाकर उसे देखना चाहा। पर ज्योंही वह उठा, उसका सिर भन्ना उठा। खिड़की के पास जाते ही उसे बिना किसी टक्कर या अवरोध के एक धक्का सा लगा। उसके खिड़की तक पहुँचते-पहुँचते वह गोलाकार नील रेखा, कई ऐसे ही वृत्तों में विभाजित होकर उसकी आँखों के सम्मुख नाचने लगी। तब केशवचन्द्र आलू को तो क्या, अपने ही

हाथ को न देख सका। नाचनेवाले उन टुकड़ों में तब एकाएक गर्मी सी उत्पन्न हो गई। वे चिनगारियों में बदल गए। ये चिनगारियाँ भी फिर केशवचन्द्र की कनपटियों के पास आकर आँखों के द्वारा प्रविष्ट होकर, अनोखी झनझनाहट करती हुई कानों द्वारा बाहर निकलने लगीं।

केशवचन्द्र धड़ाम से फर्श पर गिर पड़ा।

"रंग के कीटाणु! स्वाभाविक रंग के कीटाणु!" यह कहता हुआ केशवचन्द्र फिर अंग्रेजी में कहने लगा--"मैं गया। मैं जा रहा हूँ। मैं गया। मैं जा रहा हूँ।"

मुंशी ने टेलीफोन करके उसी समय पल्टन के डाक्टर को बुलाया। केशवचन्द्र उन्हीं दो वाक्यों को अपनी क्षीण ध्वनि में धीरे-धीरे दुहराता हुआ, फिर केवल होठ ही हिलाकर चुप हो गया। उसका सारा शरीर पसीने से तर था।

मुंशी ने फिर केशवचन्द्र के औंधे मुँह को सीधा किया और उसकी नाक से निकलते हुए रक्त को होठों पर से पोंछा। चौकीदार पानी लाने दौड़ा।

थोड़ी ही देर में डाक्टर भी आगए। उन्होंने उसकी कमीज के बटन खोलकर मुँह पर पानी के छींटे दिए। केशवचन्द्र ने फिर पहले की भाँति कुछ कहना चाहा; पर कोई शब्द उसके मुँह से न निकल सका। केवल होंठ ही फड़कते रहे।

अस्पताल की गाड़ी में केशवचन्द्र को रखते हुए डाक्टर ने कहा—"मूर्च्छा आ गई है। शक्तिहीनता, भोजन की कमी से उत्पन्न निर्बलता ही इसका कारण ज्ञात होती है।"

अस्पताल में पहुँचकर थोड़े से उपचार के उपरान्त केशवचन्द्र की चेतना लौट आई। गिर जाने के कारण सिर में हल्का सा घाव हो गया था, उस पर पट्टी बाँध दी गई।

नर्स को यह आज्ञा देकर कि रोगी को आज रात परीक्षण में रखकर, यदि और कोई बात न हो तो कल सुबह जाने की आज्ञा दे दी जाय, डाक्टर बाहर निकला ही था कि केशवचन्द्र फिर सहसा चारपाई से उठा। उसे एक वमन हुआ और दूसरी बार वह गिरते-गिरते बचा।

शाम होते-होते उसे भयंकर ज्वर ने आ घेरा। रात भर वह बड़-बड़ाता रहा। कपड़े को बर्फ में भिगाकर जब नर्स उसके माथे पर रखती, तो वह कभी-कभी कह उठता—"अन्न का विश्लेषण सम्भव है तो उसका संश्लेषण भी सम्भव है। सिंथेटिक फूड (कृत्रिम खाद्यान्न) प्राप्त करने में कठिनाई नहीं हो सकती।"

कभी-कभी एकाएक करवट बदलकर या बिस्तर से उठने का प्रयत्न करते हुए वह कहता—"नीला रंग सुहावन होता है। गोला-कार नीले रंग के वे धब्बे बड़े अच्छे थे। सुषमा के स्वेटर पर बुने हुए। आकाश का नीला रंग धूल के सूक्ष्म कणों द्वारा प्रकाश-तरंगों को उछाल देने के कारण है। बड़ी तरंगें और छोटी तरंगें। लाल-पीली तरंगें बड़ी हैं। वे धूल-कणों को पार कर जाती हैं। नीली छोटी तरंगें उछलकर आकाश को नीला रंग प्रदान करती हैं। आलू भी खराब खोकर नीला हो जाता है।"

उसके बड़बड़ाने में बहुधा बातें स्पष्ट सुनाई देतीं। ऐसा ज्ञात होता, मानो कोई प्रोफेसर विद्यार्थियों को विज्ञान का कोई नया पाठ पढ़ा रहा हो। पर कभी वह अस्पष्ट शब्दों में एक ही वाक्य या एक ही शब्द को लगातार दुहराता जाता। एक बार तो वह एनैलेसिस (विश्लेषण) और सिंथेसिस (संश्लेषण) इन दो अंग्रेजी शब्दों को ही रटता चला गया। समीप ही कुर्सी पर बैठी नर्स पहले तो इन शब्दों को किसी उसकी अंग्रेज महिला या प्रेमिका का नाम समझी, पर जब केशवचन्द्र ने एक बार पूरा वाक्य अंग्रेजी में दुहरा-कर कहा कि गेहूँ को संश्लेषित किया जा सकता है, तो पहली

बार उस नर्स ने इस रोगी के समीप आकर उसकी बातों को ध्यान से सुनने का प्रयत्न किया। फिर घंटे भर तक केशवचन्द्र गेहूँ को किस प्रकार कागज, लकड़ी की लुगदी और घास-फूस से बिना बीज और कृषि के रसायनशाला में बनाया जा सकता है, इसी को समझाता रहा। इससे उसका गला सूख गया और आवाज अस्पष्ट होने लगी।

जब नर्स ने उसे झकझोरकर पानी पी लेने को कहा और पीठ पर सहारा देकर गिलास उसके हाथ पर दे दिया, तो एक घूँट पीकर केशवचन्द्र ने गिलास हटा लिया, कहा—"मीठा है।"

नर्स ने कहा—"पी लीजिए। ग्लूकोज मिला है।" और गिलास को उसके होठों पर लगा दिया।

सारा गिलास दो ही तीन घूंट में समाप्त करके केशवचन्द्र फिर बोला—"ग्लूकोज का संश्लेषण होता है मक्के या आलू के स्टार्च से। रुई से भी होता है।"

रोगी के माथे पर सुगंधित दवा को रगड़ते हुए और उसके तकिए को सँभालकर सिरहाने लगाकर नर्स ने कहा—"आप बहुत थके हैं। सो जाने का प्रयत्न कीजिए। इन सब बातों को मत सोचिए।"

केशवचन्द्र सुनकर चुप हो गया। नर्स सोचने लगी—यह बेचारा कहीं अध्यापक होगा। विज्ञान का विद्यार्थी रहा होगा। शायद अविवाहित है। उसे अपने विज्ञान की ही धुन है।

झट फिर अकारण ही करवट बदलकर केशवचन्द्र बड़बड़ाया—"नहीं सोचूँगा, विज्ञान की बातें नहीं सोचूँगा। मैं अब वैज्ञानिक नहीं हूँ। (आइ एम नो मोर ए साइंटिस्ट। नो मोर ए मैन।) मैं मानव भी अब नहीं।"

नर्स ने कम्बल ओढ़ाकर फिर कहा—"सो जाइए।"

केशवचन्द्र फरांटे की अंग्रेजी में व्याख्याता की भाँति फिर अपने ही को धिक्कारने लगा कि रुपयों के लोभ में आकर उसने अपनी आत्मा को बेच दिया।

गीले तौलिए से उसका मुँह पोंछते हुए नर्स ने उसके मन की दशा का वास्तविक परिचय पाकर दयार्द्र होकर कहा—"कृपया सोने का प्रयत्न कीजिए। थोड़ी देर तो चुप रहिए। पसीना आ रहा है। नींद आ जायगी।"

थोड़ी देर केशवचन्द्र चुप रहा, फिर बोला—"सब क्वार्टर सुनसान हैं। कहीं कोई गा भी नहीं रहा। नींद आए भी तो कैसे?"

इस कातरवाणी को सुनकर नर्स की आँखें उमड़ आईं। सोचा—कैसा अनोखा रोगी है। 'चुप हो जाओ' कहने पर झट चुप हो जाता है। 'सो जाओ' कहने पर सोने का भरसक प्रयत्न करता है। पर उसे नींद नहीं आती। किसी वैज्ञानिक समस्या को न सुलझा सकने के कारण उसके मस्तिष्क पर यह जबरदस्त धक्का लगा है।

अनायास ही बच्चों की भाँति उस रोगी को थपकी देती हुई नर्स गुनगुनाने लगी।

प्रत्युत्तर में केशवचन्द्र भी हुँ-हुँ-हुँ सा करता हुआ ताल-ध्वनि सी मिलाने लगा और थोड़ी देर में सो गया।

× × ×

ज्वर चलता रहा और एक सप्ताह बीत गया, पर उसकी तीव्रता में कमी न आई। उसके घर के पते पर इस बीमारी की सूचना दी गई; पर वह सरकारी पत्र लौट आया। केशवचन्द्र के चाचा ने यह लिखकर कि यहाँ पर उसके कोई सम्बन्धी नहीं हैं, उसे वापस कर दिया।

उस लौटे हुए पत्र को देखकर नर्स ने मन ही मन कहा—"बेचारा संसार में अकेला है। उसके न माँ है और न बाप।

अविवाहित है। उसका प्रेम था तो केवल विज्ञान से। लगन है तो केवल प्रयोगशाला की।"

अस्पताल के जिस कमरे में केशवचन्द्र रक्खा गया था, वह कमरा अकेले और एक ही रोगी के लिए था। बहुधा सेना के किसी अफसर को ही ऐसे कमरे दिये जाते थे। पास ही नर्सों और कम्पाउंडरों के कमरे थे। कमरे के आगे छोटा सा बरामदा था। आंगन में फूलों की क्यारियाँ थीं और उसके बाद बड़ा हाल सा था, जिसमें रोगियों की पचास चारपाइयाँ थीं। प्रतिदिन अस्पताल की लाल क्रॉसवाली गाड़ियाँ अस्पताल के सम्मुख उतरतीं और नये-नये रोगियों को ले आतीं। बरामदों में रबर के पहियोंवाले हाथ से चलानेवाले ठेले एक कमरे से दूसरे कमरे तक जाकर लम्बे-लम्बे स्ट्रेचरों पर चित्त लिटाए हुए मृतकों को बीनकर ले जाते। नये रोगी लाकर खाली चारपाइयों पर डाल दिए जाते। केशवचन्द्र को यह सब समझने का अवकाश ही न था। वह या तो बड़बड़ाता या आँखें मूँदकर चुपचाप लेटा रहता।

अन्य कमरों और बड़े हाल के रोगी घंटियाँ बजाते। बार-बार नर्स को बुलाते। पट्टी बँधे हुए रोगी दर्द से कराहते। कोई अपने पाँव को सीधा रख देने की प्रार्थना करता, कोई अपने तकिए को नीचा करना चाहता और कोई बार-बार पानी की याचना करता। पर केशवचन्द्र को इन सबकी कुछ भी आवश्यकता नहीं थी। उसके सभी काम नर्स की इच्छा पर निर्भर रहते। वह किसी प्रश्न का उत्तर न देता और न अपनी ओर से कोई प्रश्न करता। केवल एक आज्ञाकारी बालक की भाँति नर्स की सभी आज्ञाओं का यथा-शक्ति पालन करने का प्रयत्न करता।

एक दिन प्रातःकाल थर्मामीटर लगाकर जब नर्स ने उसे सदा की भाँति सन्तरे का रस दिया तो उसने पीकर आँखें खोलीं। नर्स

ने पहली बार रोगी की निष्कपट आत्मा का मानो प्रतिबिम्ब देख लिया।

"क्या तुम किसी को बुलाना चाहते हो?" नर्स ने पूछा और सोचा कि शायद सदा की भाँति आज भी वह उत्तर में बड़बड़ाने लगेगा।

केशवचन्द्र ने क्षीण ध्वनि में कहा—"कम्पनी कमांडर साहब अजित सेन को बुला दो।"

यह उसके उस सहपाठी का नाम था, जो प्रयोगशाला में उसके प्रयोग देखने आया था और जिसने उसे नौकरी पर लगा दिया था।

"वे क्या आपके परिचित हैं?" नर्स ने कहा।

केशवचन्द्र ने आँखें बन्द करके करवट बदलकर कहा—"मत बुलाओ। उनका क्या दोष, दोष तो मेरा ही है।" वह सदा की भाँति फिर जोर-जोर से बड़बड़ाने लगा।

उस दिन दोपहर को रबर के पहियोंवाला ठेला केशवचन्द्र के कमरे के बाहर आ लगा। स्ट्रेचर उठानेवालों ने कहा—"ले आओ।"

नर्स उस ठेले को देखकर अपने कमरे से निकल आई। बोली—"चलो, क्या रोगी को कहीं अन्यत्र ले जाओगे?"

हँसकर बुड्ढे स्ट्रेचर बीयरर ने कहा—"हम कहाँ ले जायँगे। यह तो उसी की बीमारी ले जायगी।"

"कहाँ?" नर्स ने व्याकुल मुद्रा से पूछा।

"डाइङ्गरूम (मरनेवाले कमरे) में?"

"पर वह तो जीवित है!" नर्स ने कहा।

"हाँ, पर जीने की आशा नहीं है। इसीलिए तो डाइङ्ग रूम में ले जाने का आदेश हुआ है।" बुड्ढे ने कहा—"वहाँ जाकर फिर लौटा कौन है? सभी उससे अगले कमरे (यह लाशघर था) में चले जाते हैं।"

"पर उसकी दशा इतनी खराब नहीं है। यहाँ रहेगा तो शायद आरोग्य लाभ करले।" नर्स ने कहा।

"पर उसे हटाना जरूरी है। यह कमरा सिविलियनों (असैनिकों) के लिए नहीं है। आज एक घायल मेजर आनेवाला है। उसके लिए कमरा खाली करने का हुक्म हुआ है।" बुड्ढे ने कहा।

"जाओ, बीमार नहीं निकाला जायगा।" नर्स ने कुछ दृढ़ होकर कहा—"सिविलियन वह है सही, पर सेना का कैमिकल एनैलिस्ट है। मेजर और कैप्टेन से भी बड़ा अफसर।"

"पर डाक्टर ने हुक्म दिया है कि कमरा अभी खाली होना चाहिए।" बुड्ढा बोला—"हमें तो उनका हुक्म मानना है।"

"गलती से ऐसा हुक्म दिया गया होगा।" नर्स ने कहा—"फिर पूछकर आओ।" और वह किवाड़ों के आगे मानो उन्हें बरबस अन्दर जाने से रोकने के लिए रास्ता रोककर खड़ी होगई। यह काम उसने जान-बूझकर नहीं किया; पर उसकी दृढ़ता को देखकर ठेलेवाले ठेला वहीं छोड़कर फिर डाक्टर से पूछने चले गए। नर्स जानती थी कि डाक्टर ने ठीक ही हुक्म दिया होगा। पर उस असहाय रोगी का, मरणासन्न रोगियों के साथ, उस कमरे में जहाँ नर्स और कम्पाउण्डर चौबीस घंटे में एक ही बार मृतकों को बीनने जाते हैं, मरना उसे सह्य न था।

नर्स केशवचन्द्र के कमरे में चली गई। द्वार खुलने के शब्द और पदचाप को सुनकर केशवचन्द्र ने फिर होंठ फड़फड़ाए। पर वह सदा की भाँति आँखें मूँदे लेटा रहा। उसके तकिए और कम्बल को व्यवस्थित करके नर्स ने उसे पानी पिलाया। तब तक स्ट्रेचर ढोनेवालों सहित डाक्टर भी उसी कमरे में आगया।

"तुम रोगी को हटाने क्यों नहीं देती नर्स?" डाक्टर ने कहा।

"तुम जानते नहीं डाक्टर साहब", नर्स ने कहा—"वह कौन है। वह कम्पनी कमाण्डर अजित सेन का....." अचानक ही यह

बात नर्स की जिह्वा पर आ गई। पर वह तत्काल यह न गढ़ सकी कि सेन साहब का वह रोगी क्या है।

"तुमने यह बात मुझे पहले क्यों नहीं बताई।" यह सोचकर कि शायद ऐसे रोगी की उसने ठीक चर्या नहीं की, डाक्टर ने कहा।

"आज ही सुबह तो रोगी ने कहा।" नर्स ने कहा।

"क्या कहा?" डाक्टर ने पूछा।

"यही कि—यही कि—वे उसके रिश्तेदार हैं, निकट संबंधी।" नर्स बोली।

"अजित सेन?" डाक्टर बोला।

सुनकर रोगी ने करवट बदली, कहा—"आगए भाई अजित, कंपनी कमांडर साहब।"

उसने फिर अपनी आँखें खोलीं, पर फिर मानो चौंधियाकर तत्काल उन्हें मूँद लिया।

"तब क्या कंपनी-कमांडर साहब को सूचना दे दी?" डाक्टर ने पूछा।

"बिना आपसे पूछे कैसे देती?" नर्स ने कहा।

"तो अब शीघ्र दो।" डाक्टर ने कमरे से बाहर निकलते हुए नर्स से कहा और बाहर आकर ठेलेवालों से कहा—"मेजर साहब के लिए यहाँ जगह नहीं है। आज उन्हें जनरल वार्ड में रहना होगा। तुम लोग जाओ।"

१३—कम्पनी-कमाण्डर की दया

डाक्टर ने अपने कमरे में जाकर उस बड़े अफसर को रासायनिक विश्लेषक की बीमारी की सूचना देने के लिए टेलीफोन किया।

कम्पनी कमांडर अजित सेन ने अपनी मोटी-सी आवाज में डाक्टर पर बिगड़ते हुए कहा—"आपके मरीजों से मुझे मतलब क्या ?"

डाक्टर ने प्रत्युत्तर में डरते-डरते कहा—"लेकिन श्रीमान्, वह तो आपसे मिलना चाहता है।"

"कैसे मिल सकता है ? उसने मुझसे मिलने के लिए अपने अफसर से आज्ञा प्राप्त करली है ?" अजित सेन ने पूछा।

"नहीं साहब, वह पिछले सप्ताह से बेहोश पड़ा है। कभी-कभी होश आ जाता है, तो आपको याद करता है।"

"क्या नाम है उसका ?" अजित सेन ने पूछा।

"केशवचन्द्र। उसे नियुक्त हुए अभी दो ही महीने हुए हैं।"

"केशवचन्द्र ! आह केशवचन्द्र ! आपने मुझे अब तक सूचना क्यों नहीं दी ?" अजित सेन ने पूछा "क्या केस है ?"

"बुखार तेज है और रक्त का परीक्षण अभी ऋणात्मक है।" डाक्टर ने कहा—"कुछ कहा नहीं जा सकता कि क्या केस है।"

अंग्रेजी में अजित सेन ने कहा—"मैं अभी आ रहा हूँ।" और टेलीफोन उठाकर रख दिया।

डाक्टर ने तत्काल नर्स को टेलीफोन पर बुलाकर कहा कि रोगी का चार्ट ठीक बनाकर रख दे और पीतल के उस प्लेट पर अच्छी प्रकार पालिश करा दे। नया बेसिन और टावल-स्टेंड भी वहाँ पर आ जाए। उस वार्ड के तीसरे कमरे से रेडियो-सेट भी लाकर इस कमरे में लगा देना चाहिए।

कुछ याद आ जाने पर थोड़ी देर बाद फिर टेलीफोन उठाकर डाक्टर ने कहा—"फूल का एक गुलदस्ता भी माली से बनवाकर कोने की मेज पर रख देना चाहिए।"

"यह तो मैं पहले ही सोच रही थी, पर माली तो कहीं दीखता ही नहीं।" नर्स ने कहा।

डाक्टर बोला—"किसी से कहो। अच्छा, हमारे नौकर से कह दो। वह हमारे कमरे में से ले आयगा। हाँ, चार्ट पर टेम्परेचर और दिल की धड़कन दोनों ठीक-ठीक दर्ज हैं न?"

नर्स ने कहा—"हाँ, सब ठीक है; पर·····।"

"पर क्या?" डाक्टर ने पूछा।

"रोगी बहुत बेचैन है। दवा नहीं पी सकता है।" नर्स बोली।

डाक्टर ने कहा—"गर्म पानी के भीगे तौलिए से जरा उसका हाथ-मुँह पोंछ दो। मैं अभी आता हूँ। नहीं, मैं फाटक पर कम्पनी-कमांडर साहब को लिवा लाने जा रहा हूँ। वे आते ही होंगे।"

एक चोख मारकर नर्स ने कहा—"मैंने तो आज छुट्टी के कारण ठीक भाँति कपड़े भी नहीं पहने। डाक्टर साहब, मैं कपड़े पहन आती हूँ।"

जब कम्पनी-कमांडर अजित सेन डाक्टर के साथ केशवचन्द्र के कमरे में गया, तो अस्पताल के उस सुनसान कमरे में उस निःसहाय रोगी को देखकर उसका मन दयार्द्र हो गया। केशवचन्द्र का मुँह खुला हुआ था और अधखुली आँखें भयानक-सी प्रतीत हो रही थीं। उसकी निष्प्रभ मुद्रा और हफ्ते भर में उगी हुई दाढ़ी को देखकर अजित सेन को पहले तो यह भ्रम हुआ कि वास्तव में वही उसका सहपाठी केशवचन्द्र है या कोई और व्यक्ति। लेकिन निकट आकर उसकी उज्ज्वल श्वेत दाँतों की पंक्ति और विशाल माथे पर लगे उस बचपन के घाव को देखकर उसने सोचा उसे पहचानने में गलती नहीं हो सकती। कैसा आदर्श विद्यार्थी था वह और हम किस भाँति एक साथ तीन वर्ष तक एक ही विद्यालय में रहे।

"हैलो, केशव।" अजित सेन ने हौले से कहा।

अपने नाम को सुनते ही चौंककर केशवचन्द्र ने तंद्रिल आँखों को विस्फारित कर दिया। वह क्षीण स्वर में बोला-- "मैं? मुझे पुकार रहे हैं आप?"

अजित सेन की आँखें अपने सहपाठी की इस दयनीय दशा को देखकर सजल हो गईं। सोचा—'आज यह पुनर्मिलन कैसा दुखद और कैसा विपरीत है। यह तो उपन्यास में वर्णित-सी एक घटना है। मैं सेना का एक उच्च अधिकारी, सेनापति और मेरा ही यह एक साथी मरणासन्न इस चारपाई पर मेरे सम्मुख पड़ा हुआ है।' क्षण भर वह कुछ भी नहीं कह सका।

रोगी के जलते हुए माथे पर हाथ रखकर अपने को प्रकृतिस्थ करके फिर अजित सेन ने कहा—"मुझे तो मालूम भी नहीं हुआ कि तुम बीमार हो।"

"हाँ, बुखार है। शरीर जल-सा रहा है।" बिस्तर से उठने का प्रयत्न करते हुए उसने फिर असमर्थ होकर वक्ता की ओर करवट

बदलकर कहा—"क्या अब भी बहुत समय लगेगा? वैसे ही बहुत देर हो गई है।"

अजित सेन ने डाक्टर की ओर प्रश्नात्मक दृष्टि से देखा, पर उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना रोगी ने जल्दी से अपने पाँव समेटकर कहा—"ये लोग सब आ गए। मुझे देर हो गई है। मुझे मेरा पर्चा दे दीजिए। मैं भी·····"

"केशव·····" अजित सेन ने रोगी की आँखों के बदलते हुए भाव से घबड़ाकर कहा—"केशवचन्द्र, तुमने मुझे नहीं पहचाना?"

"थोड़ी भी तो देर हुई है।" रोगी क्षीण ध्वनि में किन्तु चिल्ला कर बोला "आप मुझे आने क्यों नहीं देते? मैं इतनी ही देर में पर्चा हल कर लूँगा।"

"बुखार बहुत तेज है, नर्स जग स्पंजिंग कर दो।" डाक्टर ने कहा।

नर्स को कमरे में अकेली छोड़कर डाक्टर के साथ बाहर बरामदे में आकर अजित सेन ने कहा—"हालत बहुत बुरी है। क्या आपने रोगी के घरवालों को सूचित कर दिया था?"

"हाँ, लेकिन वहाँ से पत्र आया है कि कोई नहीं आ सकता।" डाक्टर ने कहा।

"पत्र कहाँ लिखा गया था?" अजित सेन ने पूछा—"क्या रोगी की पत्नी को भी पत्र लिखा गया था?"

"नहीं, उसके किसी चाचा ने उत्तर दिया है कि नहीं आ सकते।" डाक्टर ने कहा।

"चाचा नहीं, मिसेज केशवचन्द्र को पत्र लिखना चाहिए था।" अजित ने कहा।

"पर उनका पता हमें मालूम नहीं है। नियुक्ति-पत्र में घर का जो पता लिखा गया था, उसी को देखकर हमने पत्र लिखा था।" डाक्टर बोला।

अजित सेन कुछ देर चुप रहा। उसे स्वयं यह ज्ञात न था कि केशवचन्द्र की पत्नी कहाँ होगी ? विद्यालय की प्रयोगशाला की बात, फिर अपने सभी सहपाठियों का स्मरण करके उसने सोचा कि वैज्ञानिक यंत्रों के विक्रेता महेन्द्र को पत्र लिखना चाहिए। उसे निश्चय ही केशवचन्द्र की पत्नी का पता ज्ञात होगा।

अपने हाथ पर लिये हुए रोगी के तापक्रम के उस चार्ट पर छोटे से सुन्दर अक्षरों में वैकावि का पता लिखकर अजित सेन ने कहा—"इस पते पर एक तार श्रीमती केशवचन्द्र को दे दें, और रोगी को जब होश आए, तो मुझे फिर बुला लें।"

अस्पताल के और कमरों का निरीक्षण करके, फिर मन ही मन यह सोचता हुआ कि एक कुशाग्र विद्यार्थी, एक उदीयमान वैज्ञानिक तथा एक कर्त्तव्यपरायण ईमानदार सैनिक रासायनिक का क्या इस अस्पताल में इस प्रकार अन्त हो जायगा ? मृत्यु क्या ऐसी निष्ठुर है ? क्या वह स्वयं उसकी मृत्यु का कारण नहीं है ? उसने केशवचन्द्र की नियुक्ति के उपरान्त कभी यह भी तो जानने का प्रयत्न नहीं किया कि वह कैसा जीवन व्यतीत कर रहा है ? उसके भोजन आदि की क्या व्यवस्था है ? वह तो यही जानकर संतोष कर लेता था कि नया रासायनिक ईमानदारी से अपना काम कर रहा है। रोगी उससे सभी भाँति बढ़कर है और स्वयं उसमें ऐसा कोई गुण नहीं और न वह इस बड़े पद के योग्य है, जिस पर वह आसीन है।

अपने बँगले को जाते समय मार्ग में उन बड़े-बड़े छायादार वृक्षों के मध्य से क्वार्टरों के आगे सड़क पर उसकी मोटर दौड़ रही थी। उस मोटर को पहचानकर सिपाही सड़क के दोनों ओर जहाँ तक भी दृष्टि जाती, जल्दी-जल्दी पैर सटाकर अभिवादन के हेतु खड़े हो जाते थे। तब अपने पद का स्मरण करके अजित सेन ने विचार किया, 'ऐसा तो होता ही है। यह तो प्रतिदिन की

बात है। मानव रोगग्रस्त भी होता है और रोगमुक्त भी। मरता भी है और जीवित भी रह जाता है। केशवचन्द्र जैसे विद्वान लोग इस व्यापार में अपवाद नहीं हैं। उसकी इस बीमारी तथा तज्जनित मृत्यु का न मैं कारण हूँ और न कोई और हो सकता है। अजित सेन से निकृष्ट कई व्यक्ति उससे भी आगे और ऊँचे पदों पर हैं और केशवचन्द्र से भी अधिक योग्य व्यक्ति इस आयु तक भी जीवित नहीं रह सके, जितनी उसने प्राप्त कर ली है।

अपने बँगले पर पहुँचकर उसने सीढ़ियों के पास गाड़ी रोक दी। आज उसे खूब भूख थी। प्रहरी के सैनिक सलाम का यथोचित उत्तर देकर उसने बैरा से कहा—"खाना लगा दो।" आज मीठे मटर और चावल की तहरी बनी होगी, यही एक विचार तब उसके मन पर रह गया और जल्दी-जल्दी तैयार होकर वह अपने भव्य भोजन-कक्ष की ओर चल दिया। सचमुच मीठे मटर की तहरी उसे बहुत पसन्द थी।

खाने की मेज पर बैठकर सुस्वाद भोजन की गंध से वह ऐसा पुलकित हो गया कि रोगी केशवचन्द्र की बात बिलकुल ही भूल गया।

१४—तार मिला

शाम को अपनी दूकान के सामने के किवाड़ बन्द करके वेकावि तन्मयता से काँच की नलियों को घिस रहा था। दरवाजे पर किसी ने थपकी दी। फिर आवाज आई—"बाबूजी।"

वेकावि चुप रहा। ऐसे समय में जब काँच की नलियाँ एक दर्जन पूरा होने में केवल एक कम थीं, किसी का उसके काम में विघ्न डालना उसे सह्य नहीं होता था। ऐसे अवसर पर वह अपने बहरेपन का पूरा लाभ उठा लेता था।

"बाबूजी।" उस विघ्नकर्त्ता ने फिर कहा।

वेकावि ने फिर कूड़े-करकट की टोकरी को दोनों हाथों से उठा कर हिलाया कि एक भी साबित नली और मिल जाए तो वह दर्जन पूरा कर लेगा। मैंगनीज के भस्म की कालिख चढ़ी हुई एक नली पर उसका हाथ जा लगा। उसे उठाकर उसने सोचा, क्लोरीन के लिए इसमें विद्यार्थी ने गन्धक के तेजाब में नमक के साथ काली मैंगनीज डॉयआक्साइड मिलाई होगी। वेकावि ने फिल्टर के नीचे उसे लगा कर धोया और एक हाथ से उसे पकड़कर दूसरे से उसमें शीशियाँ साफ करनेवाली कूँची डाली। पर थपकी का शब्द जोर-जोर से सुनकर उसका मन उचट गया और ब्रश पेंदी से नीचे तक चला गया। टूटे काँच का एक टुकड़ा उसकी हथेली में घुस गया और रक्त निकल आया।

"धत्तेरे की!" वेकावि ने चिढ़कर ट्यूब को फेंकते हुए कहा।

उस धत्तेरे की तथा गिरते हुए काँच की झनझनाहट से उत्साहित हो विघ्नकर्त्ता ने और जोर-जोर से कहा—"बाबूजी, तार है, आपका तार है।"

"तार!" वैकावि ने एक ही झटके में टूटे काँच के टुकड़े को हथेली से निकालकर कटे हुए स्थान को दूसरे हाथ की उँगली से दबाकर उठते हुए कहा—"अरे, पहले ही क्यों नहीं कहा कि तार है। मैं तो तुम्हें कोई विद्यार्थी समझा था। विद्यार्थी तो न दिन देखते हैं, न रात।"

अंदर से कुर्सी खोलकर वैकावि ने दस्तखत किए और तार पढ़ा। वह अंग्रेजी में था। लिखा था—"श्रीमती केशवचन्द्र को सूचना दो कि उनका पति मिलिटरी अस्पताल, कानपुर में बहुत बीमार है। सोमवार, शुक्रवार को मिल सकते हैं।—अफसर कमांडिंग।"

"केशवचन्द्र बीमार है। बहुत बीमार। पर मैं क्या कर सकता हूँ?" वैकावि ने टोकरी की ओर दृष्टि गड़ाए अपने ही को सम्बोधित कर कहा · "बहुत बीमार हैं। होंगे। सोमवार, शुक्रवार को मिल सकते हैं। सोमवार···" फिर कलेंडर की ओर, जो दीवाल पर टँगा था, देखते हुए उसने कहा—"तेरह तारीख आज बुधवार है। कल, हाँ, परसों मिलना होगा।"

खुले लिफाफे को लेकर कमरे के दो चक्कर लगाकर वह फिर बोला—"जाऊँगा। जरूर जाऊँगा, केशवचन्द्र को देखने जरूर जाऊँगा। रेल का सफर है। पर कल शाम चलकर परसों उससे मिल लूँगा। बहुत बीमार है। गाड़ी सुबह नौ बजे पहुँच जायगी। उसी समय जाना ठीक होगा। शाम को लौट आऊँगा। पर यहाँ तो रोगियों से शाम को मिलने देते हैं: चार बजे शाम से छः बजे तक। वहाँ भी यदि शाम का समय हुआ तो?"

तार के उस लिफाफे की ओर उसने फिर देखा कि कहीं मिलने का समय तो इसमें नहीं दे दिया गया है। पर लिफाफा खाली था। उसने तार को पकड़कर टोकरी के ऊपर रख दिया था। उसे ढूँढने में देर न लगी। लैम्प के पास ले जाकर उसने उसे फिर पढ़ा—"श्रीमती केशवचन्द्र को सूचना दो कि उसका पति बहुत बीमार है।" अब सोचा—'अरे, यह तो श्रीमती केशवचन्द्र को सूचना देने के लिए है। मैंने तो इसे ठीक-ठीक पढ़ा भी नहीं। मैं उन्हें अभी सूचना दूँगा। अभी इसी समय। साइकिल निकालकर अभी जाऊँगा।'

"अरी, सुनती हो," उसने किवाड़ से अपने टूटे अहाते की ओर झाँककर कहा—"मैं जा रहा हूँ। बहुत जरूरी काम है। आध घंटे से अधिक न लगेगा। जरा दूकान की ओर देखती रहियो।"

साइकिल निकाली और कमीज का अंतिम बटन लगाकर जल्दी में अपनी टाई का फंदा लगाया और कुर्सी पर पड़े कोट को कन्धे पर डालकर शीशे के किवाड़ में अपना अस्पष्ट सा प्रतिबिंब देखकर मन ही मन यह संतोष करके कि कपड़े ठीक पहन लिए गए हैं, वह सड़क पर निकल गया।

आधा रास्ता तय कर चुकने पर उसे ध्यान हुआ कि मिसेज केशवचन्द्र तो वहाँ होंगी भी नहीं। वे तो पति के साथ ही उस मकान को छोड़कर चली गई थीं। साइकिल की गति को मन्द करके वह लौटने की सोच रहा था कि फिर उसने अपना विचार बदल दिया। सोचा, वहाँ जाकर मिसेज केशवचन्द्र का पता ठीक-ठीक लग जायगा। उनकी मकान-मालिका को अवश्य उसका पता ज्ञात होगा।

मकान के समीप पहुँचकर वह नीचे की मञ्जिल के अहाते के अन्दर साइकिल से उतरा और बरामदे में घंटी बजाता रहा।

कुछ देर अँधेरे बरामदे में खड़े रहकर उसने फिर जोर-जोर से साइकिल की घंटी बजाई। यद्यपि फरवरी मास का अंत होने को था, फिर भी देर में वर्षा होने के कारण जाड़ा बहुत था। मकान के सभी लोग कमरों के अन्दर ही थे।

घंटों की आवाज सुनकर कमरा खुला और बुढ़िया ने बरामदे की बत्ती जला दी। वैकावि को पहचान न सकने के कारण, किन्तु वेशभूषा को देखकर, जो रात के समय और भी स्वच्छ और नई ज्ञात हो रही थी, बुढ़िया ने हाथ जोड़कर वैकावि के अभिवादन का प्रत्युत्तर दिया।

"मैं आपको थोड़ा कष्ट देने आया हूँ।" वैकावि ने कहा। और जेब में हाथ डालकर उस तार को निकाल लिया कि यदि वह बुढ़िया का प्रत्युत्तर ठीक-ठीक न सुन सका, तो पता इस लिफाफे पर लिखा लेगा और स्वयं बुढ़िया उस तार को देखकर उसका आशय समझ जायगी।

"मुझे मिसेज केशवचन्द्र का पता चाहिए।" वैकावि ने उस तार के लिफाफे को खोलते हुए कहा—"आपको तो उनका पता ज्ञात ही होगा।" बुढ़िया के मुख को खुलते न देखकर वैकावि ने कुछ सहमकर व्यग्रता का शमन न कर सकने के कारण उस तार को बढ़ा दिया।

कमरे के अन्दर किसी मधुर क्षीण स्वर ने कहा—"इन्हें अंदर ही बुला लीजिए। मैं इन्हें जानती हूँ। इन्हें कम सुनाई देता है।"

वैकावि ने कुछ स्पष्ट नहीं सुना। पर बुढ़िया ने उस मधुर स्वर को सुनकर तार को अपने हाथ में पकड़कर चिक उठाते हुए कहा "चलिए, अन्दर ही चले चलें।"

वैकावि कमरे के अन्दर चला आया। कमरे में जाकर लैम्प के प्रकाश में उसने काँच से मानो उसी के अभिवादन के हेतु उठी हुई उस नारी मूर्त्ति को पहचानने का प्रयत्न किया, जो अपने

कीमती शाल को पीठ पर डालने में ही तन्मय दीख रही थी। उसके निकट पहुँचकर दोनों हाथ जोड़कर कहा—"ओहो, सुषमा देवीजी हैं। आप यहाँ ?" पर शीघ्र ही यहाँ तक आने की व्यग्रता ने परिचित सुषमा से मिलने से प्राप्त उसके क्षणिक उल्लास को तिरोहित कर दिया। गम्भीर होकर वह बोला—"केशवचन्द्र का तार आया है—मेरे नाम। यह देखिए।"

"आह, मैं जानती हूँ।" कहकर सुषमा ने तत्काल सोचा—'मैं जानती हूँ, जो भी उस महापुरुष के संपर्क में आयगा, चमक उठेगा। काँच का विक्रेता वैकावि भी उस स्वर्ण पुरुष के सम्पर्क से मणि-सा महत्वपूर्ण हो जायगा। वह यशस्वी वैज्ञानिक जिस वस्तु पर हाथ रख देगा, वही मानो अमूल्य हो जायगी। तार आया होगा। उसने वैकावि को पल्टन के गोदामों का कोई बड़ा ठेका दिला दिया होगा, या किसी बड़े पद पर उसकी नियुक्ति करा दी होगी।' क्षण भर में इतनी सारी बात उसके मस्तिष्क में आ गई। अब वैकावि की बात को सुनी-अनसुनी करके मन ही मन उसके भाग्य से ईर्ष्या करती हुई वह जोर से बोली—"वैकावि जी, तो आप कानपुर जा रहे हैं ?"

"जाना ही पड़ेगा।" वैकावि ने कहा—"तार जो आया है।"

"जाइए, अवश्य जाइए।" सुषमा ने उच्छ्वास लेकर कहा—"वह देवता है, एक महान् व्यक्ति। उसका आह्वान बड़ा महत्व रखेगा।"

कुछ भी न समझ सकने ने कारण अपनी बात कह डालने की शीघ्रता में वैकावि बीच ही में बोल उठा—"तो आपको मिस्टर केशवचन्द्र का पता ज्ञात है ?"

"पता क्यों ज्ञात न होगा ?" एक लम्बी साँस लेकर सुषमा ने कहा—"मैं तो उसकी एक-एक बात जानती हूँ। वह तो हमारे ही कस्बे की लड़की है—बहुत ही साधारण लड़की। उसके पिता भी

बहुत ही साधारण व्यापारी हैं। पर कहा न, जो भी उस महापुरुष के संपर्क में आयगा, वह चमक उठेगा। कल की सरोज जिसे बोलने तक का सऊर न था, और न है, आज की मिसेज केशवचन्द्र है, उस वैज्ञानिक की पत्नी। इसे तो आप सभी मानेंगे।"

वेकावि अब भी कुछ स्पष्ट न सुन सका। बुढ़िया के हाथ से तार के उस लिफाफे को लेकर सुषमा की ओर बढ़ाते हुए उसने कहा—"कृपा करके इसमें श्रीमती केशवचन्द्र का पता लिख दीजिए।"

सुषमा को तार को खोलकर पढ़ने की किंचित भी इच्छा न थी। पर उसकी उँगलियाँ अनायास ही उस लिफाफे के अन्दर चली गईं और उस तार के लाल फार्म को निकालती हुई वह कहती रही— "वेकावि का भाग्य अच्छा है कि ऐसे विद्वान् का सहयोग उसे प्राप्त है। किसी दिन वेकावि भी उस होनहार वैज्ञानिक की सहायता से हेनरी फोर्ड सा नोबेल या सम्पत्तिशाली हो जायगा। और वेकावि की प्रार्थना की ओर उसने ध्यान भी नहीं दिया। श्रीमती केशवचन्द्र का पता लिखना तो क्या, उसके अन्तर्मन ने यह सोचना भी उचित न समझा कि श्रीमती केशवचन्द्र के पते के लिए ही यह बहरा शाम को इतनी दूर साइकिल दौड़ाकर घबड़ाया हुआ-सा आया है।

तार को दो बार पढ़कर उस अनोखे समाचार को समझकर तब तत्काल एक नितांत परिवर्तित व्यक्ति की भाँति उसने कहा— "आह, केशवचन्द्र बीमार हैं। तब तो मुझे निश्चय ही वहाँ जाना चाहिए। वेकाविजी, आप इसीलिए इस तार को मेरे पास लाए थे क्या?"

वेकावि ने फिर नम्रता से कहा—"उसमें श्रीमती केशवचन्द्र का पता लिख दीजिए। मैं वहाँ खबर करूँगा।"

"अच्छा, अच्छा।" कहकर सुषमा ने स्वेटर की आस्तीन के किनारे से रूमाल निकाल उमड़ते हुए आँसुओं को सुखाया और वेंकावि के बढ़े हुए हाथ से फाउंटेन-पेन लेकर लिख दिया—"श्रीमती केशवचन्द्र, मकान नं० ५१, मुहल्ला राजपुरा....." अपने उद्देश्य की प्राप्तिकर वेंकावि जाने के लिए तत्पर हो गया और कुर्सी से उठ गया। फिर श्रीमती केशवचन्द्र का पता इतनी शीघ्रता से प्राप्त कर लेने पर सुषमा के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के हेतु अपनी व्यावसायिक प्रवृत्ति के कारण उसने खड़े-खड़े उस बुढ़िया को सम्बोधित करके कहा—"मैं श्रीमती रुस्तमजी की प्रशंसा नहीं कर सकता। इतने बड़े घर की ये महिला हैं, पर गर्व या घमंड इन्हें छू तक नहीं गया। स्वभाव की इतनी सरल, ऐसी उदार कि कभी किसी का दिल न दुखायँगी। उस दिन मुझे साथ लेकर केशवचन्द्र जी से मिलने आई थीं।"

"क्या केशवचन्द्रजी ने आपसे ऐसा कहा है?" सुषमा के मुख से अचानक निकल पड़ा—"क्या उनकी मेरे लिए यही राय है?"

"अच्छे गुण छिप कहाँ सकते हैं?" वेंकावि कहता गया—"बड़े लोगों की बातें ही बड़ी होती हैं। यही तो बड़प्पन कि सबके साथ हँसकर बोल देना, दुःख के समय सबकी सहायता कर देना। और क्या धन और सम्पत्ति ही किसी को बड़ा बना देती है? अच्छा, मैंने आपको बड़ा कष्ट दिया। क्षमा कीजिए।" हाथ जोड़कर वह निकलने लगा।

उसे जाते देखकर बुढ़िया ने सुषमा से कहा—"आप मेरे इस मकान के विषय में पूछ रही थीं। थोड़े दिन यदि रहना है तो श्रीमती केशवचन्द्र से पुछवा लीजिए। इन्हीं से कह दीजिए, ये उन से पूछकर आपको बतला देंगे।"

"हाँ!" सुषमा ने कहा—"आपने ठीक सुझाया।" और उठकर वह वेकावि से बोली—"जरा सुनिए, एक बात तो सुनिए।"

वेकावि रुक गया और खड़े-खड़े ही सुषमा की बात सुनने का भरसक प्रयत्न करने लगा। वह कहती गई—"मेरे पति बीमार हैं। मोटर दुर्घटना में उन्हें चोट आई है। यहाँ अस्पताल में पड़े हैं। मैं चाहती हूँ कि कहीं रहने का ठिकाना हो जाए। यह सोचकर कि शायद केशवचन्द्रजी वाला यह मकान खाली होगा, मैं कल भी इस ओर चली आई थी। यहाँ आकर ज्ञात हुआ कि उन्होंने अभी इसे खाली नहीं किया। क्या आप सरोज से पूछ न देंगे कि उनके मकान में तीन-चार सप्ताह रहने की सुविधा मुझे मिल सकेगी या नहीं।"

वेकावि खिसियाकर हँस दिया। मकान की बात थोड़ी-थोड़ी ही उसकी समझ में आई, पर ऐसे अवसर पर सदा की भाँति वह इस समय भी अपनी स्वाभाविक चालाकी से काम लेकर बोला—"आप एक पत्र लिख दीजिए, मैं उनका उत्तर ले आऊँगा।"

सुषमा ने क्षण भर सोचा, फिर कहा—"अच्छा, इस समय रहने दीजिए। मैं कुछ और प्रबन्ध करूँगी। आप जाइए। नमस्ते।"

फिर बुढ़िया के समीप बैठती हुई वह बोली—"बहरा है बेचारा! कुछ सुनता ही नहीं, उससे क्या कहूँ? मैं स्वयं कानपुर जाकर उनसे मिलकर मकान के विषय में तय कर लूँगी।" फिर रुआंसी सी होकर सुषमा बोली—"कैसा दुर्भाग्य है मेरा! एक ओर पति घायल पड़े हैं और दूसरी ओर केशवचन्द्र—एक अभिन्न मित्र बीमार पड़े हैं।"

"केशवचन्द्रजी क्या आपके सहपाठी हैं?" बुढ़ियाने पूछा।

"सहपाठी ही समझिए। मैं उन्हें बचपन से जानती हूँ।" सुषमा ने एक उच्छ्वास लेकर अपने हृदय में उमड़ती भावनाओं का यथाशक्ति अवरोध करते हुए कहा—"न जाने वे कितने बीमार हैं।"

अपने पाँव समेटकर वह फिर दोनों हथेलियों पर अपना माथा रखकर कुर्सी के किनारे मुँह ढाँपे सिसकर सिसकने लगी। पर शीघ्र ही सुस्थिर होकर अपनी भीगी आँखों को सुखाकर बोली—"मेरा केवल इन दो दिनों से आपसे परिचय है; पर इन्हीं दो दिनों में कितनी आत्मीया-सी आप लगती हैं। आपसे छिपाना ही क्या? मैं केशवचन्द्रजी को बहुत चाहती थी। उनके परिवार के लोगों ने तो मेरे पिताजी से बात भी पक्की कर ली थी। मेरी उनसे शादी होनेवाली थी कि अपने चाचा को केवल चिढ़ाने के अभिप्राय से उन्होंने उनकी बात न मानी और सरोज जैसी साधारण लड़की से विवाह करना स्वीकार किया।"

स्वर्गाप्सरा-सी रूपसी तथा सदा सम्पन्न और सन्तुष्ट-सी दीखनेवाली इस आधुनिकतम युवती के मन के इस रहस्य को जानकर बुढ़िया स्तम्भित रह गई।

'अब यह चाहती क्या है? क्या विवाह जैसी वस्तु किसी के अपने बस की घटना है? वह तो विधाता का खेल है। उसके विषय में अब क्या सोचना?' यह सोचकर बुढ़िया ने उसे सान्त्वना देने के लिए कहा—"क्या आपका पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं है? वैसे आपके पति तो बड़े धनी हैं।"

"हाँ, हैं तो।" सुषमा ने क्षीण ध्वनि में कहा—"पर केवल धन ही से क्या होता है?"

वृद्धा बोली—"तब क्या आपका यह विवाह आपकी इच्छा के अनुकूल नहीं हुआ?"

"ऐसा भी नहीं है।" सुषमा ने कहा—"मैं स्वयं उनके प्रेम-जाल में फँस गई। शादी तो मैंने ही अपनी जिद से की। मेरे माता-पिता को तो यह सम्बन्ध स्वीकार ही नहीं था। पर तब मैं इनर अपाके वैभव को ही देखकर शायद इनकी ओर आकर्षित हुई। मैंने अपने पिताजी की आज्ञा प्राप्त किए बिना ही यह विवाह कर लिया। अब मैं गलती समझ गई।" मन ही मन तब वह सोच रही थी—'केशवचन्द्र ने भी तो अपने अभिभावकों की इच्छा के विरुद्ध विवाह किया और वह सुखी है। मैं इतने धनी परिवार में कभी दुखी रहूँगी, यह बात मैंने कभी सोची भी न थी। लेकिन शायद पुरुष दूसरी ही प्रकार सोचते हैं। उन्हें प्रेम इतना गम्भीर नहीं लगता, जितना हम स्त्रियों के लिए यह होता है।'

"अब आपके पति की आर्थिक दशा बिगड़ गई है क्या?" वृद्धा उसकी बात को पूरी न समझकर बोली।

"नहीं-नहीं!" सुषमा ने कहा—"कहती तो हूँ, धन से ही क्या होता है। पति का व्यवसाय तो खूब चलता है। कहीं रुपए-पैसे की कमी नहीं है। पर अपना व्यक्तित्व भी तो कुछ होना चाहिए। कल ही अस्पताल की घटना है। रात को पीकर मोटर चला रहे थे। इसीलिए वह दुर्घटना हुई, यह बात तो सभी जान गए थे। पर कल शाम अपनी इस बुरी हालत में भी अस्पताल में उन्होंने जो शराब पीने की जिद की और न मिलने पर जैसा तूफान उठा दिया, उससे भला किसका मन घृणा से भर न जायगा? इसीलिए तो मैं अस्पताल से दूर रहना चहती हूँ।"

"सचमुच तुम्हारा जीवन बड़ा दुःखी है।" बुढ़िया ने सिसकती हुई सुषमा को सान्त्वना देते हुए सहृदयता से कहा—"पर तुम जैसी शिक्षिता नारी को तो सभी परिस्थितियों में अपनत्व न खोकर समान भाव से रहना चाहिए। तुम अपने प्रभाव से उनके स्वभाव को भी बदल सकती हो। इसके लिए इतना चिन्तित न होना चाहिए।

और फिर इस समय, अपनी इस दशा में तुम्हें अपना दिल छोटा न करना चाहिए। मेरे सामने तो तुम छोटी ही हो।"

कुछ देर ऊनी शाल की गठरी सी बनी हुई सुषमा कुर्सी पर सिसकती रही। बाहर मोटर का शब्द हुआ। बुढ़िया ने कहा—"शायद तुम्हारी गाड़ी आ गई। कभी-कभी इस ओर जरूर चली आया करो।"

रुँधे हुए कंठ को यथाशक्ति साफ करके सुषमा ने कहा—"आऊँगी, आपको ही कष्ट दूँगी। यहाँ और मेरा है ही कौन? आपका ही एकमात्र सहारा है।"

१५—सरोज के मन में काँटा

वैकावि ने सरोज को तार द्वारा सूचना भेज दी; पर वह स्वयं अपने उस संकल्प को, जिसे तार पाने पर उसने किया था, पूरा न कर सका और कानपुर नहीं गया।

केशवचन्द्र अस्पताल के एक नए कमरे में लाया गया। उसके साथ उसके ससुर और पत्नी भी आकर रहने लगे। उसके निवास में यह परिवर्त्तन, उसकी बीमारी के बिगड़ जाने से करना आवश्यक समझा गया। उस नए कमरे में आने के पाँच दिन पश्चात् एक दिन सुबह उसका बुखार कुछ कम हुआ। पहली बार उसने अपनी पत्नी को पहचाना और अपने कमरे के चारों ओर दृष्टि दौड़ाने का प्रयत्न किया। सरोज उसके सिरहाने से कुर्सी पर बैठी उसके माथे पर हाथ रख रही थी। उसकी साड़ी का एक किनारा कम्बल के ऊपर घसिटता एक शीतल हवा के झोंके सा उसे ज्ञात हुआ। अपने माथे पर से उस हाथ को हटाने के प्रयत्न करने की केशवचन्द्र को इच्छा हुई। पर यह सोचते ही उसके हाथ में भारीपन सा आ गया और उसने फिर अपना विचार त्याग दिया। उतनी ही देर देखने में उसकी आँखों के आगे कुहरा सा छाने लगा।

सरोज थर्मामीटर लेने कुर्सी से उठी और धीरे-धीरे पास की आलमारी तक गई, फिर लौटकर पलंग के पास बैठ गई। केशवचन्द्र यह सब ध्यान से सुनने लगा। फिर किसी ने जालीदार किवाड़ खोला और धीरे से उसे बन्द किया। उसका शब्द भी

केशवचन्द्र ने सुना। अब वह कानों से ही कमरे में आने-जानेवालों का अनुमान लगाने का प्रयत्न करने लगा।

"आज कुछ आराम है क्या?" ये शब्द उसके कान में पड़े।

उत्तर में केशवचन्द्र ने सिर हिलाया। स्वयं यह कहना चाहा कि आज मेरी तबीअत कुछ अच्छी जान पड़ती है। पर शुष्क होंठों को जिह्वा से केवल गीला करके ही वह चुप रहा। अपने ससुर को पहचानकर भावोद्रेक से उसकी आँखें आर्द्र हो गईं। मन-ही-मन उसने दोहराया—'आज मैं ठीक हूँ।' फिर अपने उमड़ते आँसुओं को बरबस रोकने का प्रयत्न करके भी सफल न हो सकने के कारण उसने आँखें मूँद लीं। थोड़ी देर तक उसका सारा शरीर कुछ कहने या कोई हरकत करने से पूर्व एक अनोखी आँधी के कारण काँपता सा रहा और वह वात रोग के पक्षाघाती रोगी की भाँति स्वयं न तो हिल-डुल सका और न कुछ बोल ही पाया। आँसू उसके चक्षु कोटरों को भरकर कनपटियों को गर्म करके कानों के छिद्रों को भी रूँधने से लगे।

"क्या बात है? क्या बात है?" कहते हुए उसके ससुर ने उसके चेहरे को सुखा दिया। पर आँसू उसकी इच्छा के विरुद्ध फिर भी उमड़ते ही रहे।

फिर अपने को यथाशक्ति कुछ कहने के लिए प्रस्तुत करते हुए केशवचन्द्र ने कहा—"मुझे एक रूमाल दीजिए।" और कुछ कहने योग्य बात उसे उस समय सूझी ही नहीं।

सरोज ने खुली आलमारी पर तह किए हुए वस्त्रों में से एक रूमाल निकालकर स्वयं भी अवरुद्ध कंठ से उसे पति की ओर बढ़ा दिया।

रोगी ने अपनी आँखें सुखाईं। देखा उसकी पत्नी छपी हुई खादी की मोटी-सी धोती पहने हुए है और उसके माथे पर बिखरे से बालों के बीच लाल-लाल माँग स्पष्ट दीख रही है।

"आपको आए कितने दिन हो गए ?" पूरा जोर लगाकर किन्तु फिर भी क्षीण ध्वनि में रोगी ने कहा। आज कई सप्ताह के उपरान्त उसके मुँह से वह पहला युक्तिसंगत वाक्य निकला था।

सरोज ने अब भी कुछ न कहा। उसके पिता बोले—"हम दोनों शुक्रवार को आ गए थे। आज हमें पाँच दिन हो गए।"

सरोज अब फिर थर्मामीटर को व्यर्थ ही उठाकर पति के सम्मुख आकर कहने लगी—"आज बुखार कुछ कम है।"

'आज बुखार कुछ कम है।' केशवचन्द्र के कानों में ये शब्द फिर उसी के मन ने अन्दर ही अन्दर दुहराए और एक सजीव तप्तता सी उसके शरीर में इन शब्दों से संचारित हो गई। जिस पंकिल अन्धकारमय स्थिति में वह इतने दिनों से असहाय-सा डूबता ही चला जा रहा था, अब मानो एक ही छलाँग में कूदकर फिर अपनी वास्तविक दुनिया में आ गया। अपनी पत्नी की वह वाणी उसके तन-मन और मस्तिष्क को खींचकर अब सुखमय नए जीवन की ओर ले आई।

"बड़ा भयानक ज्वर था।" उसने कहा—"अब मैं अच्छा हो जाऊँगा।" और कम्बल से निकालकर अपने दुर्बल क्षीण हाथों और पीली-सी लम्बी उँगलियों को देखा, फिर पास में खड़ी अपनी पत्नी की ओर। उसकी आँखों में भी उस समय आँसू चमक रहे थे। अपने पति की दृष्टि से वह किंचित् सकुचा गई। सोचने लगी कि अभी कुछ नहीं बिगड़ा है। सब कुछ जैसा पहले था वैसा ही है। वह बात जो नर्स ने कही थी, सच नहीं हो सकती। उन्होंने अपनी बेहोशी में कोई और बात कही होगी, जिसे नर्स ने ठीक न सुना होगा।

पति के बिस्तर की चादर और तकिए को बदलकर और उसे संतरे का रस पिलाकर सरोज कुर्सी पर बैठ गई। फूलों के उस

गुलदस्ते को ठीक करती हुई नर्स की कही गई उस बात को वह फिर-फिर सोचने लगी।

उस दिन उसके आते ही नर्स ने कहा था—"आप आ गईं। अच्छा किया। कल रात अपनी बेहोशी में रोगी ने आपको बहुत याद किया था। मैं जान गई हूँ कि आपका क्या नाम है। रोगी पहले तो स्पष्ट रूप से 'सुषमा-सुषमा-सुषमा' कहता रहा, फिर उसकी आवाज इतनी क्षीण हो गई कि वह स्मा-स्मा कहने लगा। अन्त में माँ-माँ कहते-कहते वह बेहोश हो गया था।"

नर्स से यह बात सुनकर सरोज का मन मुरझा गया था और उसकी मुद्रा विवर्ण हो गई थी। उसने कहना चाहा था कि सुषमा उसका नाम नहीं है; पर उस समय पति की उस दशा को देखकर उसने कुछ न कहा था। पति की अस्तव्यस्तता, बिखरे बाल, पर्याप्त उगी हुई दाढ़ी, विभ्रान्त सी दृष्टि और असंयत व्यवहार से त्रस्त होकर वह नर्स की उस असंगत बात को भुला देने के लिए एक फीकी-फीकी हँसी बरबस अपने होठों पर ले आई थी और यह सोचने लगी थी कि कब वह नर्स जाए और कब वह अपने पति को भली-भाँति देख और छूकर उनके रोग का ठीक-ठीक अन्दाजा लगाए। इस समय उसने उस गुलदस्ते को ठीक कर लिया, पर उस विचार को समाप्त नहीं कर पाया था कि नर्स ने दरवाजे के अन्दर झाँका और कहा—"आज तो तुम्हारे पति की तबीअत ठीक है, सुषमाजी।"

सुषमा—इस नाम को सुनकर और पति के सम्मुख अपने लिए प्रयुक्त होते जानकर सरोज की मुद्रा फिर एकाएक निस्तेज और कठोर हो गई। उसने जल्दी ही एक क्षणिक चपल चितवन से अपने पति की ओर देखा और यह जानकर कि नर्स का वह सम्बोधन पति ने भी सुन लिया है, वह ऐसी निष्प्रभ और मलिन हो गई, मानो एक ऋषि का अभिशाप सुनकर अहल्या पत्थर की

मूर्त्ति में परिवर्तित हो गई हो। उसके भाव परिवर्त्तन को देखकर नर्स अन्दर ही चली आई और समीप आकर बोली—"क्यों नाराज हो गई, सुषमाजी!"

तीसरी बार उसका फिर सुषमा कहकर पुकारना सरोज के लिए असह्य हो गया। अतिशय विह्वल होकर उसने दोनों हाथों से कुर्सी के डंडे पकड़ लिए और आँखें मूद लीं। वह कुरसी से मानो गिर पड़ेगी, ऐसी आशंका उसे होने लगी।

रोगी ने उत्तर में कहा—"यह सुषमा नहीं हैं। इनका नाम सरोज है।" इस वाणी में न घबराहट थी और न किसी प्रकार का संकोच। पति को बिलकुल ही अप्रभावित देखकर सरोज को कुछ सोचने का साहस हुआ। उसने मन ही मन प्रार्थना की—'हे ईश्वर मेरी सहायता कर। नर्स इस समय और कुछ न कह जाए। ईश्वर, अब वह सुषमा के विषय में, पति की उस बेहोशी की बात न कहे।'

उसकी इस मूक प्रार्थना का कुछ भी फल न निकला। उसके पिता के सम्मुख ही नर्स ने सरोज की श्वेत, रक्तहीन, कातर मुद्रा की नितान्त अवहेलना करते हुए कहा—"उस रात आपने किसी को सुषमा कहकर पुकारा था। अच्छा, आप मुझे ही शायद सुषमा समझे थे। बड़ी देर तक सुषमा-सुषमा कहते रहे।"

पति की आँखों में लज्जा अथवा झेंप की किंचित् भी छाया न देखकर सरोज को इस अप्रत्याशित परिस्थिति का सामना करने का साहस मिला।

तीनों श्रोताओं को अपनी उस बात को सुनकर स्तब्ध होते देखकर नर्स भी चुप हो गई। उसे अपनी गलती पर ग्लानि-सी हुई और वह सोचने लगी कि ऐसी बात पति-पत्नी और उनके एक निकट पितर के सम्मुख मुँह से निकालना कदाचित् अशिष्ट कार्य हो। 'अपने अविवाहित होने और ईसाई परिवार में पली होने के

कारण कभी-कभी ऐसी गलती मुझसे हो ही जाती है।' यह सोच-कर वह अपने काम में रोज की भाँति लग गई। चार्ट को लेकर उसने सरोज से आज प्रातःकाल का रोगी का तापमान पूछकर उसमें दर्ज किया। फिर पूर्ण रूप से प्रकृतिस्थ होकर कहा—"अब ये दो ही तीन दिन में स्वस्थ हो जायँगे।"

नर्स के चले जाने पर केशवचन्द्र मन ही मन सोचने लगा—'सुषमा का नाम मेरी जिह्वा पर क्यों आया होगा? मैं बार-बार उस नाम को रटता रहा! यह तो एक अनोखी बात है। सरोज न जाने इसका क्या अर्थ लगाएगी। जो भी हो, मैं तो सरोज के सम्मुख, उसके परोक्ष में भी, किसी और नारी को अपने हृदय में उसका जैसा उच्च, सम्मान्य और स्नेहिल स्थान नहीं दे सकता। यह बात मैं अब भी एकान्त में उसके सम्मुख स्पष्ट ही कह दूँगा।'

उस दिन कई बार उसने सरोज के सम्मुख अपनी वह बात कहनी चाही। पर सरोज पकड़ाई न देना चाहती थी। वह पति को व्यर्थ ही व्यग्र नहीं करना चाहती थी। प्रतिक्षण यही भाव अपनी मुद्रा पर धारण करके वह उस कमरे में आती कि मानो पति के व्यवहार से वह कुछ भी प्रभावित नहीं हुई। मानो नर्स की कही हुई बात उसने सुनी ही नहीं। यद्यपि हृदय पर वह काँटा उसे प्रतिक्षण चुभता पीड़ा दे रहा था। वह जितनी दूर उसे ढकेल कर, अपनी मुद्रा पर पति के लिए शान्ति स्थापित करती, वह काँटा उतनी ही तेजी से उसके अन्तस्तल की गहराई की ओर बढ़ता जा रहा था।

१६—सुषमा भी आ गई

उस सप्ताह के अन्त में केशवचन्द्र ज्वरमुक्त हो गया। जो लोग इस बीच उसे देखने आए, उनमें उसका सहपाठी कम्पनी-कमाण्डर, अजित सेन भी था। केशवचन्द्र ने उससे स्पष्ट ही कह दिया कि सेना के रासायनिक विश्लेषक का काम उससे न हो सकेगा।

उत्तर सुनकर कम्पनी-कमाण्डर रुष्ट नहीं हुआ। उसने कहा—"यह तो मैं तुम्हारी बीमारी के समय ही समझ गया था।"

केशवचन्द्र ने कहा—"मैं नौकरी छोड़ना चाहता हूँ। पर तीन मास के दोनों पक्षों के नोटिस का प्रतिबन्ध है, क्या वह हट सकता है?"

अजित सेन ने सहृदयता से कहा—"उसकी आवश्यकता न पड़ेगी। तुम चाहो तो अब नौकरी छोड़ने की नियमानुकूल सूचना दे सकते हो। पर मैंने एक से और बात तुम्हारे लिए सोची है। हमारे पास जो अन्न युद्धक्षेत्र में शत्रु के त्यक्त गोदामों से आया आया है, उसकी परीक्षा करनेवाला कोई नहीं है। मैं सोचता हूँ, यदि तुम्हें उस पहाड़ी प्रदेश में भेज दूँ, तो तुम वहाँ रहकर उसके परीक्षण के साथ-साथ पूर्ण स्वास्थ्य-लाभ कर लोगे। तुम्हारे परीक्षण के उपरान्त जो अन्न खाने के योग्य निकलेगा, उसे हम अपनी सेना के गोदामों में ले लेंगे। इस प्रकार हमें यहाँ से अन्न भेजना न पड़ेगा।"

केशवचन्द्र ने कहा—"कितने दिन वहाँ रहना पड़ेगा?"

"जितने दिन भी तुम रहना चाहो।" अजित सेन बोला—"गोदाम सारी प्रमुख युद्ध-पंक्ति पर बिखरे हैं। तुम चाहो तो, सारे पर्वत-प्रदेश का भ्रमण कर लो, चाहो तो एक ही स्थान पर रहकर उन गोदामों से नमूने मँगवाकर परीक्षा कर लो। मैं तुम्हारे साथ के लिए एक अमेरिकन सज्जन को भी भेज दूँगा। वह हमारी सेना का अतिथि है और सम्वाददाता की हैसियत से उस क्षेत्र में जाना चाहता है। यहाँ आने से पहले कैलिफोर्निया के एक विद्यालय का वह छात्र था। वह भी एक सुसंस्कृत साथी की खोज में है। तुमसे अच्छा सहयोगी उसे कहाँ मिलेगा?"

केशवचन्द्र उस बड़े अफसर की सहृदयता की बात से गद्-गद होकर बोला—"मैं शीघ्र ही निश्चय करके आपको बतला दूँगा, इस भयंकर बीमारी के उपरान्त पर्वत-प्रदेश में गर्मी की आगामी ऋतु कट जाय, तो अवश्य ही मैं पूर्ण रूप से स्वस्थ हो जाऊँगा।"

सरोज और उसके पिता को जब युद्ध-क्षेत्र की केशवचन्द्र की उस नियुक्ति का पता लगा, तो वे बड़े चिंतित हुए। उन्हें आशा ही न थी कि केशवचन्द्र वहाँ जाने को तत्पर हो जायगा और इतनी जल्दी अपनी स्वीकृति दे देगा, जैसा कि उस शाम उसने उस अमेरिकन साथी से मिलने पर किया। वह न केवल जाने को उत्सुक था; किन्तु उसने अपने उस एक ही दिन के परिचित साथी से यात्रा का पूरा प्रबन्ध कर लेने को भी कह दिया था।

अगले दिन प्रातःकाल वैकावि भी केशवचन्द्र को देखने आया। उसके साथ सुषमा थी। नर्स इन दोनों को रोगी के कमरे में लिवा लाई। सुषमा सदा की भाँति भड़कीले वस्त्र पहने थी। उसके वस्त्रों से महँगे सेंट की मन्द-मन्द सुगन्ध आ रही थी। चेहरे पर पाउडर पुता था। वह अपने कपड़ों के भार से दबी हुई सी; किन्तु चंचल और नटखट बिल्ली के बच्चे की भाँति फुदकती सी प्रविष्ट हुई,

जो अपने चारों ओर सतर्क हो, शैतान बच्चों पर एक चतुर दृष्टि डालता हुआ बच्चों से खेलना भी चाहता है और उनसे दूर-दूर भागना भी।

केशवचन्द्र उस समय बिस्तर पर ही लेटा था। उसने वैकावि की ओर आहट पाकर चौंककर देखा; क्योंकि उस समय उसका मन नई रंगीनियों में उलझ रहा था। वह तो सुरम्य पर्वत-घाटियों के स्वप्न देख रहा था। उसका वह अमेरिकन साथी और अकस्मात् उस नए पर्वत-प्रदेश में नियुक्त होने के पूर्व ऐसे सम्भ्रान्त और उच्च-शिक्षाप्राप्त मित्र का साथ, ऐसा मधुर विषय था कि जितना ही अधिक वह इस विषय में सोचता, उतना ही वह प्रसन्न हो उठता था, मानो एक ऐसी निधि पर बिना परिश्रम के ही उसका हाथ जा लगा था, जिसकी उसने जीवन में न कभी कल्पना की थी और न कामना। उसकी मुद्रा भी, पिछले दिन दाढ़ी के बन जाने के उपरान्त, इतने दिन तक सूर्यालोक से वंचित हो जाने के कारण छाया में पली सुकुमार कोंपल-सी सुन्दर गौर वर्ण की लग रही थी।

वैकावि के नमस्कार के प्रत्युत्तर में केशवचन्द्र ने दोनों हाथ उठाकर 'नमस्ते' कहा। पर दो ही क्षण पश्चात् किवाड़ के अन्दर आती हुई उस सुषमा को पहचानकर उसकी प्रसन्न मुद्रा पर से वैकावि के आगमन से उत्पन्न मृदुल मुस्कराहट एकाएक समाप्त हो गई। वह गौर वर्ण की सुकुमार कोंपल भय की आशंका से एकाएक मानो मुरझाकर गिर पड़ी। अभिवादनार्थ अपने जुड़े हुए हाथों को वह उसी भाँति जोड़े रहा। उन्हें हटाने का भी ध्यान उसे न रहा, न उसके अभिवादन के प्रत्युत्तर में ही कोई शब्द उसके मुँह से निकल सके। उस मन्द सुगन्ध के कारण, जो अब कमरे के वातावरण में सिक्त हो चुकी थी, उसका दम घुटने लगा। यह गन्ध सुषमा के द्वारा प्रयुक्त किसी तेज सेंट की थी।

'केशव, घबड़ाओ, मत केशव !' उसने अपने आपको सम्बोधित करके मन ही मन कहा और इस प्रकार अपने आपको अपने ही नाम से स्वयं सम्बोधित कर आत्मबल सा एकत्रित करना चाहा। उस समय बड़ी कठिनाई से वह अपने हृदय में उठते हुए भावों को मर्यादा में रख सका और वैकावि तथा सुषमा के प्रश्नों को पूर्णरूप से हृदयंगम किए बिना ही कभी केवल 'हाँ' और कभी 'ना' जैसे एकाक्षरीय प्रत्युत्तर देने लगा। मन ही मन वह अपने सारे विचारों को समेटकर इस नारी से अपने को दुर्भेद्य सा बना कर यह प्रार्थना करने लगा कि—'वह अब चली जाय। शीघ्र जाय, यहाँ बैठी न रहे।' लेकिन सुषमा कभी चार्ट को, कभी मेजपोश को और कभी पास में रखे समाचार पत्रों को उलट-पलटकर देखती वहीं अटकी रही, मानो उसे कहीं जाना ही नहीं है।

दस मिनट के उपरान्त सरोज पास के कमरे से रोगी के लिए सूप बनाकर उसके कमरे में आई। ये दस मिनट केशवचन्द्र को दस घंटे से दीर्घ और असह्य जान पड़े।

सरोज ने उन दोनों आगन्तुकों को पहचानकर स्वाभाविक प्रसन्नता से उनके अभिवादन का प्रत्युत्तर दिया। केशवचन्द्र उसकी उस निष्कपट प्रसन्न मुद्रा से अप्रभावित न रह सका—'यह सरोज है, ऐसी सरल और सहज प्रकृति की नारी। हाँ, यह मेरी पत्नी है। इसने अपने जीवन का सारा अस्तित्व मुझ ही में केन्द्रित और समर्पित कर दिया है। मैं इस योग्य हूँ भी या नहीं, यह भी इसने कभी नहीं सोचा। जिस आदर्श पति का रूप देकर इसने मुझे, मुझ अपरिपक्व मानव को, पूर्ण देवता समझकर, अपना सब कुछ दे डाला है, उसी आदर्श को सम्मुख रखकर मुझे अपने को वैसा ही बनाना है। उसे सुषमा से किंचित् भी वैर नहीं, किंचित्

भी रोष या ईर्ष्या नहीं, तब मैं अकारण इतना तनाव अपने मन पर ला रहा हूँ।'

सुषमा ने कहा—"मैं अब तक नहीं आ सकी, बड़ी शर्मिन्दा हूँ। एक सप्ताह से रोज संकल्प करती रही कि आज जाऊँगी, कल जाऊँगी; किन्तु कुछ न कुछ बाधा आ जाती। वैकाविजी की कृपा न होती तो आज भी न आ सकती।"

सरोज ने कहा—"आपकी बड़ी कृपा है। उस दिन वैकाविजी ने बतलाया कि आपके पति भी बीमार हैं, जानकर बड़ा दुख हुआ। अब वे अच्छे हो गए होंगे?"

सुषमा बोली—"हाँ, अब कुछ अच्छे हैं। आपके उस मकान के विषय में भी वैकाविजी ने कहा होगा। हम लोग कुछ दिन उसमें रहना चाहते थे।"

"मैंने उनकी राय अभी इस विषय में नहीं ली।" सरोज ने सरलता से कहा—"उनकी तबीअत इतनी खराब थी कि अब तक मुझे कुछ पूछने का साहस नहीं हुआ।"

"जल्दी नहीं है।" सुषमा ने कहा—"आजकल तो टिकने का प्रबन्ध कर ही लिया है। पर जब कभी आप लोग उसे छोड़ना चाहें, मुझे अवश्य बता दें। छोटा सा वह मकान बड़ा सुन्दर है। मकान-मालिकन तो बड़ी ही भली महिला हैं।"

तब सरोज ने पति की ओर उस सूप के प्लेट और चम्मच को बढ़ाकर कहा—"मेज को आपकी चारपाई के पास लगा देती हूँ।"

इतनी स्वाभाविक सरोज की वाणी थी कि केशवचन्द्र को, सुषमा के आगमन से उत्पन्न अपनी उद्विग्न मनस्थिति पर ग्लानि सी हुई। उसका मन फिर भी यह चाहता रहा कि कब वह यहाँ से जाए और कब कमरे के वातावरण में सिक्त वह भारीपन हटे। उसके माथे पर पड़े बल को देखकर और शोरबे को एक घूँट गले

के नीचे उतारकर जो हल्की सी खाँसी उसे आई, उससे सरोज को यह समझते देर न लगी कि पति को यह मंडली कुपित कर रही है। सचमुच उस पति-पत्नी के मध्य स्नेह की ग्रन्थि इतनी सन्निकट और इतनी संवेदनशील थी कि हलका सा संकेत, किंचित् स्वर परिवर्त्तन या मुखाकृति का परिवर्तित रूप, उन्हें स्पष्ट बातचीत से अधिक एक दूसरे के भाव समझने में सहायक हो जाता था। वह बोली—"आप सूप पीजिए। तब तक हम दूसरे कमरे में बैठते हैं।" वैकावि और सुषमा को साथ लेकर वह पास के कमरे में चली गई।

सुषमा के हृदय में उस समय भी बिल्ली के नटखट मोटे-ताजे बच्चे की-सी क्रीड़ामय भावनाएँ व्याप्त थीं। कमरे में आते ही उसने सरोज के गले में अपने दोनों बाहु डालकर बड़े ही स्नेह से कहा—"बहिन, तुम बड़ी भाग्यशाली हो। अब वे शीघ्र अच्छे हो जायँगे। यह सब तुम्हारी ही सच्ची भावना और सतीत्व का फल होगा। मैं आ भी न पाई। मुझे क्षमा कर देना।" सरोज को उस समय कई और काम करने थे। उसका ध्यान न तो सुषमा की उच्छृङ्खल क्रीड़ा की ओर था और न उसकी बातों की ओर।

× × ×

उस दिन सुषमा के अस्पताल में आने का केशवचन्द्र पर उलटा ही प्रभाव पड़ा। केशवचन्द्र ने अपनी पत्नी से कह दिया कि वह अपने उस मकान में सुषमा को रहने की स्वीकृति नहीं दे सकता। सरोज भी मन ही मन यही चाहती थी। पर दूसरी बात उसकी इच्छा के विरुद्ध हुई। उसके पति ने सरोज को अपने समीप बैठाकर कहा—"अगर तुम बुरा न मानो तो मैं परसों ही अपनी नौकरी पर चला जाऊँ। न जाने मुझे क्यों सुषमा का यहाँ आना नहीं रुचता। कल ही, यदि वह घंटे भर भी इस कमरे में और टिक जाती, तो शायद मेरी बीमारी फिर लौट आती। परसों

शाम वह फिर आने को कह गई है। मैं उससे पहले ही यहाँ से चला जाना चाहता हूँ।"

पति की बात सुनकर पत्नी की आँखें सजल हो गईं। उसने केवल इतना ही कहा—"क्या डाक्टर इतनी जल्दी जाने की राय दे देंगे?"

"यह सब तो मेरी ही इच्छा पर निर्भर है।" पति ने कहा।

सरोज ने, यह सोचकर कि पति की बीमारी जितनी मानसिक है, उतनी शारीरिक नहीं, कहा – "आप शीघ्र स्वस्थ्य हो जायँ, यही मेरी भी इच्छा है। इसमें बुरा मानने की बात ही कहाँ है?"

"तब मैं परसों प्रातः चला जाऊँगा।" पति ने पत्नी को अपनी स्नेहिल दृष्टि से आनखशिख स्पर्श करते हुए कृतज्ञता से कहा।

१७—युद्धक्षेत्र में वसन्त ऋतु

अपने उस नये निवासस्थान में केशवचन्द्र अपने हँसमुख अमेरिकन साथी लूथर के साथ रहने लगा। पर्वत-प्रदेश का वह वातावरण वसन्त ऋतु की नई-नई तप्त हवाओं से नए ही जीवन की साँसें ले रहा था। पहाड़ों के मध्य बसी हुई उस सैनिक छावनी में मधुऋतु पिघले हुए बर्फ को अन्तिम विदाई देकर नए वातावरण का निर्माण कर रही थी। वह ऐसा नया वातावरण था जब कि जर्जर जाड्यता को त्याग वनस्पति संसार वृद्धि की ओर अग्रसर होने के लिए चंचल हो उठता है। वृक्षों की नसों में नए रस का संचार होने लगता है। शीतार्त के निर्जन उपवनों में जहाँ तुषार की दासता से स्थावर संसार में जड़ता आ गई थी, वहाँ अब एकाएक उछलकूद, दौड़धूप, खींचातानी और एक दूसरे से आगे बढ़ जाने की मनोहर प्रतियोगिता का आरम्भ हो गया था। कोमल लताएँ वृक्षों का आलिंगन करने बढ़ रही थीं। शाखाएँ नए-नए अंकुरों के निकलने से लज्जा से रक्ताभ हुई जान पड़ती थीं। चिरकुमार, चिर-हरित, ऊँचे-ऊँचे देवदार थे तो यह सब चुपचाप खड़े देख रहे, किन्तु उनका गहरा हरित वर्ण भी निखर आया था।

केशवचन्द्र को पहले दो सप्ताह तक कहीं बाहर जाने की न तो इच्छा ही हुई, न उसमें इतना बल ही था कि वह अपने साथी उस अमेरिकन सम्वाददाता के साथ दूर-दूर तक भ्रमण कर सके। उसके परीक्षण के लिए प्रतिदिन तीन या चार नमूने शत्रु के छोड़े हुए गल्ले में से आ जाते थे। उनके परीक्षण में आधे घंटे से अधिक न लगता। केशवचन्द्र को उन्हें देखकर अपने सहायक

क्लर्क को एक छोटा सा प्रमाणपत्र लिखाने का ही काम करना होता था कि उन अन्नों में कोई विष मिला है या नहीं। यदि विष मिला है तो उसे किस प्रकार साफ किया जा सकता है। इस कार्य से छुट्टी मिलने पर केशवचन्द्र अपने साथी की लिखी हुई यात्रा-वर्णनों की पुस्तकों को पढ़ने में अपना समय व्यतीत करता। उसका साथी विगत युद्ध के अनेकों स्थलों का भ्रमण करके लगभग सारी दुनिया का चक्कर लगाकर भारतवर्ष के इस पर्वत-प्रदेश के युद्ध को देखने आया था। अमेरिका के प्रसिद्ध अखबार 'ईस्टर्न ग्लोब' का वह भारतीय विशेष प्रतिनिधि तथा सम्वाददाता था।

शाम तक उसका वह साथी घूम-फिरकर लौट आता और अपने टाइपराइटर पर दिन भर के अपने अनुभवों को लिखने बैठ जाता। केशवचन्द्र भी तब एक तटस्थ विदेशी दृष्टिकोण से प्राप्त युद्ध के नवीनतम अनुभव, टाइप किए कागजों को पढ़कर उनमें टाइप की साधारण गलतियों को सुधारने में अपने मित्र की सहायता करके प्राप्त कर लेता। कभी-कभी युद्ध के विषय में उन दोनों में अच्छा मैत्रीपूर्ण तर्क छिड़ जाता। सम्वाददाता कहता—"कौन लड़ रहा है? किस हेतु लड़ाई हो रही है? इसे लड़नेवाला सैनिक कभी-कभी स्पष्ट रूप से नहीं जान पाता। लड़नेवालों को तो केवल यही सिखाया जाता है कि शत्रु को मारो। शत्रु क्या है? उन्हीं जैसे सैनिकों का समूह, जिन्होंने कभी उनसे कोई बुराई मोल नहीं ली। सेनापति तो शत्रु नहीं है। एक सेनापति के मरने से युद्ध की समाप्ति नहीं हो जाती। शत्रु कहलाए जानेवाले सैनिकों को अपनी मातृभूमि की रक्षा करना सिखलाया जाता है और अपनी मित्र सेनाओं को अपनी मातृभूमि का। कौन सही मार्ग है, कौन गलत, यह कहाँ स्पष्ट है? हम संवाददाता तो इसमें कहीं कोई अन्तर नहीं पाते।"

"पर हमारे पत्र तथा हमारे नेता तो सैनिकों को उनके सन्मार्ग का सदा आश्वासन दिलाते रहते हैं।" केशवचन्द्र कहता—"इसमें संदेह नहीं कि जो देश पहले आक्रमण करता है, वही गलत कार्य करता है।"

उस दिन ऐसे ही तर्क के प्रत्युत्तर में लूथर ने कहा—"आक्रमण की क्या परिभाषा है? एक बड़े देश की बड़ी लम्बी सीमा पर कभी न कभी कोई बड़ी घटना होती तो अवश्य ही है। फिर ऐसे एक देश का दूसरे देश को शत्रु कहना क्या ठीक ही है? जर्मनी का एक पहाड़ तो इंगलैंड के किसी पहाड़ से बैर नहीं रखता। न ऐसी शत्रुता तुम्हारे इस देश की सुरम्य घाटी के किसी पर्वत, किसी नदी या किसी झील की शत्रु कहे जानेवाले देश की किसी पर्वत-श्रेणी, नदी या झील से ही है।"

"लेकिन एक देश के लोग तो दूसरे देशवासियों के प्रति अपराध करके उसे दुखित करते हैं। देशवासी आपके शत्रु हैं न कि पर्वत-श्रेणियाँ या नदियाँ।"

"उन सैनिकों ने तो कभी दूसरे देश के लोगों को दुःखित नहीं किया।" सम्वाददाता ने कहा—"इन्हें लड़ने को क्यों कहा गया? जिन्होंने वह अपराध किया था, उन्हें ही मारना न्यायसंगत था न कि इन सब सैनिकों को।"

"तब एक राज्य दूसरे राज्य का शत्रु है।" केशवचन्द्र ने कहा।

"राज्य?" लूथर बोला—"राज्य का अर्थ है, सेना, पुलिस, टैक्स की व्यवस्था। ये कैसे एक दूसरे के शत्रु हैं? लड़ाई का यह व्यवसाय है—मैं तो कहूँगा, सीधे सादे देशवासी कृषकों, मछुओं, मजदूरों, माझियों तथा विद्यार्थियों के अज्ञान से लाभ उठाने का प्रयत्न करके चलाया गया व्यवसाय। एक अमेरिका का मोची या

लोहार क्यों जापान के मोची या लोहार से युद्ध करने को आता है ? उसने कभी इस युद्ध से पहले किसी जापानी को देखा तक नहीं है, तब वह उसका शत्रु कब बन गया ? यही बात जापान के उन माझियों के विषय में भी है। युद्ध का यह व्यवसाय उन माझियों और लोहारों को लाभ नहीं पहुँचाता। न यही उसका उद्देश्य है। न यह युद्ध बड़े-बड़े सेनापतियों ने अपनी प्रसिद्धि या अपने लाभ के लिए रचा है। सब यही कहते हैं कि हम लड़ाई के पक्ष में नहीं हैं। हम लड़ना नहीं चाहते, फिर भी एक ज्वर की भाँति लड़ाई, मानव का रोग, उसे नाश करने आ ही जाती है।

"पर शत्रु—कम से कम इस पर्वत-क्षेत्र में शत्रु कहलाए जाने-वाले सेनापति—तो बहुत ही मिथ्या प्रचार कर रहे हैं।" केशवचन्द्र ने कहा—"कल ही आप उनके डाले हुए पर्चे लाए थे। उनमें वर्णित अत्याचार की घटनाएँ तो इस ओर कभी घटी ही नहीं। वे लोग अपराधी अवश्य हैं।"

"अपने सैनिकों का उत्साह बढ़ाकर उन्हें युद्ध के लिए और अधिक सैनिकों को मारने के लिए उद्यत करना ही इन पर्चों का उद्देश्य है।" लूथर ने कहा—"ऐसा प्रचार एक उत्तेजना का साधन-मात्र होने से एक युद्ध-सामग्री ही जैसा उपयुक्त समझा जाता है।"

संवाददाता का तर्क केशवचन्द्र को बहुत प्रिय लगता। वह अपनी परिस्थिति को तथा अपनी नौकरी की अप्रियता को भुलाने के लिए उसके साथ निकट के जंगलों में कभी किसी टुकड़ी को देखने और सिपाहियों से बातचीत करने चले जाता। सैनिक उस वसन्ताकाश में ड्रिल करते दीख पड़ते। उनका सरदार उन्हें दौड़ाता। फिर वे एकदम जमीन पर चित लेट जाते। छोटे-छोटे

पुष्पों से भरे, वसन्त के प्रथम आह्वान के हेतु वे धरती पर उगे पौधे, लेटे हुए सैनिकों की नाक से उड़ती तेज साँस के कारण काँपते से दिखाई देते। पृथ्वी से एक भीनी-भीनी सुगन्ध सी आती ज्ञात होती। वहाँ पर सिपाही उन सब सुन्दरताओं की अवहेलना करके शत्रु कहलाने वाले मानव की मृत्यु के लिए सब उपकरणों को सीखते ताकि वे सफल प्राणघातक बन सकें।

केशवचन्द्र को ऊँचे-ऊँचे सनोवर के वृक्ष सबसे सुन्दर लगते। उनका रंग प्रतिक्षण बदलता सा ज्ञात होता। कभी वे वृक्ष बिलकुल हरे हो जाते। हवा से उनकी पतली-पतली नुकीली पत्तियों के गुच्छों के श्वेत भाग चमक उठते। फिर वे किसी बादल के सूर्य के सम्मुख आकाश में आते ही नील वर्ण के हो जाते। उनकी चोटियों पर काले, गहरे नीले रंग की छाया सी गिरती दीखती। यह छाया एक विशाल दैत्य सी उन सूच्याकार वृक्षों के हरियाले कुंजों के मध्य पेड़ों के ऊपर तैरती सी, पर्वत के इस ओर से जल्दी-जल्दी नाले में और फिर दूसरे पर्वत पर खिसक जाती। फिर पर्वत-शिखरों पर अपने अन्तिम पाँव रखती हुई आकाश में ही उतरी चली जाती। तब वे सनोवर मोटे-मोटे डंडी पर लटके हरे शान्त झंडों से दिखलाई देते।

नई कलियों की रक्ताभ नीलिमा ऊपर अंकित चित्रकारी सी ज्ञात होती। सड़क के किनारे पांगर के गोलाकार पेड़ों की नई कलियाँ उन्हें एक विशाल गुलाबी फूल का रूप दे देतीं। हवा के चलने से उनके फूल वायु में तैरते से दूर तक उड़ते चले जाते। इन उड़े हुए पुष्पों से सारी सड़क भर जाती। सड़क पर चलने में इन कोमल पुष्पों को पाँव के तले रौंदने में संकोच होता। किन्तु तभी कोई मोटर आकर उन लाखों पुष्पों को निर्ममता से रौंद जाती, पहिये के नीचे कुचले हुए पुष्पों की काली लकीरें दूर जहाँ तक दृष्टि जाती, दिखलाई देतीं। लेकिन नए पुष्प गिरकर इन काली लकीरों को भी शीघ्र भर देते।

दक्षिण की ओर से नए-नए रंग के पक्षियों के झुण्ड नित्य ही आकाश में उड़ते दिखलाई देते। कभी एकाएक ही हजारों जंगली तोते आकर किसी देवदार के नील वृक्ष को अपने हरे-हरे पंखों के कारण ऐसा छा देते कि पता ही न चलता कि यह वृक्ष देवदार का है या चौड़े हरे पत्तेवाले पांगर का। इन तोतों की चहचहाहट से सारा आकाश गूँज उठता।

केशवचन्द्र किसी पेड़ के नीचे लेटा हुआ यह सब देखा करता। लेकिन कभी अचानक ही उसे अपनी अकर्मण्यता खल उठती। इन रंगबिरंगी चिड़ियों को देखकर सहसा उसे अपने स्टार्च के बादामी रंग का स्मरण हो आता और वह आँख मूँदकर चुपचाप फिर प्रयोगशाला की ओर अपनी जीवन-धारा को मोड़ने की योजना बनाने लग जाता।

१८—साधु की बात

मार्च के अंत तक केशवचन्द्र पूर्ण रूप से नीरोग हो गया। वह कभी लूथर के साथ स्वयं भी दूर-दूर पहाड़ियों पर भ्रमणार्थ जाने लगा। आक्रमणकारियों के हमले भी लगभग शांत हो गए। विराम-संधि के लिए वार्ताएँ होने की तैयारी होने लगी। यद्यपि दोनों प्रतिद्वन्द्वी दलों के मध्य एक सीमा निर्धारित करने के लिए सेना का आगम-निगम होता रहा।

वे लोग कभी सुन्दर पुष्पों का चयन करते, कभी नए-नए पर्वत प्रदेशीय वनस्पतियों का। लूथर पर्वत प्रदेश के प्रपातों, निकुंजों और भीमकाय शिलाओं के फोटो खींचता, जिनको रात के समय दोनों मिलकर धोते और छापते। अच्छे-अच्छे चित्र छाँटकर अमेरिकन पत्रिकाओं में प्रकाशनार्थ भेजे जाते।

वे लोग कभी गाँवों में निकल जाते और छोटे-छोटे सरोवरों में तैरते या मछलियों का शिकार करते। कभी किसी ग्रामीण पाठ-शाला में जाकर बच्चों के खेल देखते और कभी गेहूँ के लहलहाते खेतों में काम करनेवाले कृषक परिवारों के मध्य जाकर उनके गीत सुनते। केशवचन्द्र दुभाषिए का काम करता।

एक दिन वे लोग गणानाथ नामक पर्वत श्रेणी पर जाकर वहाँ रहनेवाले प्रसिद्ध योरपियन चित्रकार से भी मिले। वह एक बहुत ही साधारण कुटिया में रहता था। लूथर को ज्ञात हुआ कि वह और कोई नहीं, अमेरिका में प्रसिद्ध फ्रांसीसी चित्रकार पिये-जाँ ही है। उस चित्रकार ने न्यूयार्क में दस वर्ष रहकर अपूर्व ख्याति प्राप्त की थी। संसार के लगभग सभी देशों में वह रह चुका था। और

संसार के अपने समकालीन सर्वोपरि चित्रकारों में उसकी गिनती थी। अब उसकी आयु लगभग ७० वर्ष की थी।

बातचीत के सिलसिले में चित्रकार ने बतलाया कि मनुष्यों को जितने रंगों और उनके सम्मिश्रणों का पता है, उनसे दर्जनों अधिक रंग और सैकड़ों सम्मिश्रण हिमालय की इन श्रेणियों में पाए जाते हैं, वह बोला—"साधारण मानव, प्रकृति की इन दुर्लभ छटाओं से अनभिज्ञ ही रहता है। सूर्य की किरणें स्फटिक श्वेत हिम श्रेणियों पर टकराकर अपनी प्रकाश रश्मियों के परावर्तन से जिन बहुरंगी इन्द्रधनुषों का सृजन करती हैं, वे साधारणतः संसार में दीखनेवाले सप्तरंगी इन्द्रधनुषों से अपनी विशालता और रंगों की विपुल प्राज्यता के कारण नितान्त ही विभिन्न हैं।"

उस चित्रकार ने बतलाया कि हिमालय की उपत्यका में इन्हीं नैसर्गिक रंगों के अध्ययन के लिए निकोलस रोरिक तथा ब्रूस्टर नामक विदेशी चित्रकार भी अपनी-अपनी निर्जन कुटियों से चित्र-कला की साधना में लगे हुए हैं।

उस चित्रकार के चित्रों को देखते-देखते शाम हो आई और वे लोग लौटने को तत्पर हुए, तो चित्रकार ने उन्हें मार्ग में रामकृष्ण कुटीर से होते हुए जाने का परामर्श दिया और कहा—"उस कुटीर में भी कई भारतीय दार्शनिक रहते हैं, जिनमें मद्रास के पुराने अंग्रेज प्रोफेसर लीबिग का नाम उल्लेखनीय है।"

वे लोग पहाड़ी रास्तों से उतरते एक नाले को पार कर रहे थे कि अखरोट के एक पेड़ के नीचे उन्हें धुआँ सा आता दीख पड़ा। निकट आकर देखा कि एक झोपड़ी है। उसके आगे लकड़ी के बड़े-बड़े कुन्दे जल रहे हैं। कुछ देहाती लोग बैठे हुए हैं। उन सब के आकर्षण का केन्द्र एक साधु है। साधु गेरुवे वस्त्र पहने है। लम्बी सी श्वेत दाढ़ी है। सुनहरी जटाएँ कन्धे से पीछे कमर तक चली गई हैं। न्यूथर उस साधु का फोटो ले लेने का लालच संवरण

न कर सका। रंगीन फिल्म चढ़ा हुआ केमरा ठीक करके वह साधु की ओर बढ़ता चला आया।

बैठे हुए ग्रामीण लोग कुछ खड़े हो गए और कुछ उस गोरे के लिए स्थान करने के लिए पेड़ की ओट में चले गए। लूथर इस गड़बड़ी में फोटो न ले सका; बोला—"बैठ जाइए। मैं आप लोगों को फोटो खिंचवाने के लिए कुछ इनाम दे दूँगा।"

लेकिन उसकी अंग्रेजी में कही गई बात का लोगों पर कुछ भी प्रभाव न पड़ा। लोग हटते चले गए। कुछ तो साधु और लूथर के बीच खड़े होकर उन दोनों विघ्नकर्त्ताओं की ओर घूर-घूरकर देखने लगे।

केशवचन्द्र की ओर देखकर लूथर ने कहा—"टैल देम आइ एम नो वाइल्ड बीस्ट। आइ' ल कॉज नो हार्म टु देम (इनसे कह दो, मैं कोई जंगली जानवर नहीं हूँ, मैं इनको कोई नुकसान न पहुँचाऊँगा।)

बात तो केशवचन्द्र से कही गई थी, लेकिन साधु ने बड़ी ही स्पष्ट अंग्रेजी में उत्तर दिया—"आपका यह केमरा तो हिंसक पशुओं से भी अधिक खतरनाक है। पहले बतलाइए, आप हैं कौन?"

जिस साधु को उन्होंने देहातों में घूम-फिर माँग खानेवाले एक भिखारी से अधिक न समझा था, उसके मुँह से ऐसी सुन्दर और प्रांजल अंग्रेजी सुनकर केशवचन्द्र और लूथर चकित रह गए।

"स्वामीजी, क्षमा कीजिए!" केशवचन्द्र ने कहा—"हम दोनों ने आपके प्रवचन में विघ्न डाल दिया। मैं यहाँ सेना में काम करता हूँ। आज छुट्टी का दिन है। अपने इस अमेरिकन मित्र के साथ घूमने निकल आया। इनका नाम लूथर है। ये अमेरिकन पत्र 'ग्लोब' के सम्वाददाता हैं।"

साधु ने अंग्रेजी में कहा—"अमेरिका में भारत साधुओं, फकीरों, जादूगरों और सँपेरों का ही देश माना जाता है। मेरा फोटो लेकर अपने अमेरिकन देशवासियों की इसी धारणा की पुष्टि करना चाहते हैं ये महाशय ? है न यही बात ?"

लूथर संकोच से गड़ सा गया। लेकिन केशवचन्द्र साधु की भृकुटियों पर पड़े बल और होठों पर खेलती मुसकराहट से ही उसकी महानता समझ गया। साधु की मुद्रा से स्पष्ट था कि मानो एक विज्ञ शिक्षक अपने शैतान छात्रों की किसी शैतानी पर उन्हें डाँट रहा हो।

केशवचन्द्र की दृष्टि उसी समय पास ही रखी हुई एक बैसाखी पर पड़ गई। बाँह के नीचे दबाकर चलने के लिए लँगड़े जैसी 'आ' की मात्रा जैसी बैसाखी का प्रयोग करते हैं, वैसी ही यह बैसाखी थी। इस मात्रा की पंक्ति पर कुछ गद्दी सी भी लगी थी।

केशवचन्द्र ने लूथर को संकेत से बतलाया कि यही वे पंगु बाबा हैं, जिनके चमत्कारों के विषय में सिपाही बतला रहे थे और स्वयं हाथ जोड़कर कहा—"क्या आप ही पंगु बाबा हैं ? पिछले रविवार को हमारी छावनी के सिपाही आपके दर्शन करने आए थे।"

लूथर ने कहा—"उस सिपाही की पीठ का दर्द आपने ही ठीक किया था ?"

"जमादार की आधाशीशी भी ?" केशवचन्द्र बोला।

"आपकी टाँग पिछले वर्ष कबाइली हमले में कट गई थी ?"

"आप पहले किसी कालेज के प्रोफेसर थे ?"

"पिलग्रिम उपनाम से आप पत्रों में लिखते रहते हैं।"

"इस प्रदेश की दीनता के विषय में ?"

दोनों एक दूसरे के उपरांत साधु के विषय में सुनी हुई बातों को ऐसे क्रम से जल्दी-जल्दी दुहराने लगे कि साधु को भी हँसी

आ गई और वह बोला—"तुम दोनों कक्षा में अच्छे विद्यार्थी रहे होगे, तभी तो ऐसी होड़ लगाए हो एक दूसरे से पहले उत्तर देने की। मैं ही वह लँगड़ा साधु हूँ, जिसके विषय में आपने सुना है। तुम्हें देखकर मुझे अपनी स्कूल मास्टरी के दिन भी याद हो आए हैं।"

"अब तो सुना है," लूथर ने और भी व्यग्रता से कहा—"आप बड़े-बड़े चमत्कार करते हैं। मन की बात जान जाते हैं, राख की चुटकी से गेहूँ के दाने उत्पन्न कर देते हैं। ये मेरे साथी सेना में नौकरी करने से पहले अन्नों के संश्लेषण पर अनुसंधान कर रहे थे। आपसे मिलने की बड़ी इच्छा थी इन्हें। आज दर्शन मिले। मिट्टी से गेहूँ बनाने का प्रयत्न करते थे यह।"

साधु ने दोनों को बैठ जाने का संकेत किया और कहा—"यह सब आपने कैसे विश्वास कर लिया? मैं ऐसी जादूगरी नहीं जानता। राख को गेहूँ में तो नहीं, गेहूँ को राख में अवश्य बदल सकता हूँ। धूनी सामने जली है, इसमें गेहूँ का कोई दाना डाल दीजिए, राख हो ही जायगा।" कहकर साधु हँस दिए।

लूथर और केशवचन्द्र साधु का संकेत पाकर अब पत्थरों की उस बेंच पर बैठ गए, जो पेड़ के तले पड़ी थी। उनकी देखादेखी अन्य ग्रामीण भी बैठने लगे।

साधु ने केशवचन्द्र की ओर देखकर कहा—"अन्न का सिन्थेसिस करके क्या करोगे? क्या कोई बड़ा कारखाना खोलोगे, जिसमें मिट्टी और पानी से ही गेहूँ या चावल उत्पन्न हो जाए। हो तो सकता है ऐसा। बड़े दूर की सोची आपने।"

केशवचन्द्र का दिल साधु के प्रोत्साहन से बाँसों उछल गया। वह तत्काल अपने को एक नया ही व्यक्ति समझकर बोलने लगा—"मैं चाहता था कि प्रतिदिन किसी शहर में प्राप्त होनेवाले कूड़ा-करकट, फटे कागज और चीथड़ों से ही उस शहर के खाने योग्य स्टार्च उत्पन्न हो जाए।"

"स्टार्च ही क्यों, सभी चीजें बन सकती हैं।" साधु ने कहा—"प्रोफेसर राय तो कहते हैं कि प्रोटीन, तैल, शर्करा आदि सब वस्तुएँ, मनुष्य का शरीर एकमात्र वस्तु स्टार्च से स्वयं ही निर्मित कर लेता है।"

"प्रोफेसर राय कौन हैं?" केशवचन्द्र ने कहा।

हाथ उठाकर नाले के उस पार संकेत करके साधु ने कहा—"उस पहाड़ के आगे जो दूसरी ऊँची श्रेणी दीख रही है, वहीं रहते हैं प्रोफेसर राय। वे कभी बसु-विद्यालय में थे। चार-पाँच वर्ष से सब कुछ छोड़-छाड़कर यहीं रहने लगे हैं।"

"राय, जो वनस्पति विज्ञान के आचार्य थे?" केशवचन्द्र ने कहा।

"हाँ, वही छोटे से नाटे कद के।" साधु ने कहा—"कभी वहाँ अवश्य हो आना। बड़ा ही रमणीक स्थान है। उनका दावा है कि हवा से नाइट्रोजन, पेड़ों से कारबन-डाइ-आक्साइड और पृथ्वी से जल लेकर ही बिना अन्न के मनुष्य जीवित रह सकता है, शर्त यही है कि उसकी आँतों में दो-चार उपयुक्त बैक्टीरिया हों।"

"हो हो" करके फिर खूब जोर से हँसकर साधु ने कहा—"बैक्टीरिया भी ठाठ की चीज है। इतनी सी क्षुद्र वस्तु और ऐसी चमत्कारपूर्ण! वे बतला रहे थे कि एक इंच के पच्चीस हजारवें भाग के बराबर लम्बा होता है वह। आधे-आधे घंटे में उनकी एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी हो जाती है। दूध का दही, फलों की शराब, आदमियों की मृत्यु सब कुछ तो बैक्टीरिया कर देता है। लेकिन सुना है, आदमी के जीवन की भी वही रक्षा करता है। खेतों का उपजाऊपन, धातुओं का जंग, पृथ्वी का धरातल, फूलों की सुगन्ध सब कुछ तो इसी सूक्ष्माणु के कारण है।"

साधु ने केशवचन्द्र की गम्भीरतर होती आकृति की ओर देखकर कहा—"आज आप लोगों को कुछ खाने को मिला नहीं।

शाम की चाय का समय हो गया होगा। भला, यहाँ पर क्या मिल सकता है ?"

तन्द्रा से जगकर केशवचन्द्र कुछ कहने को तत्पर ही हुआ था कि साधु ने कहा—"हरिकृष्ण, तुम जो सेब लाए थे, उन्हें अन्दर से उठा लाओ। मुझे तो फलों से वायु-विकार हो जाता है। ये मेहमान उनका भोग लगायँगे।"

एक बूढ़ा किसान बड़े ही अनुत्सुक मन से झोपड़ी के अन्दर गया और एक टोकरी के ढक्कन में रखकर चार बड़े-बड़े सेब उठा लाया।

साधु ने मुस्कराकर हरिकृष्ण से कहा—"क्यों नाराज होते हो भाई ? अभ्यागत का सत्कार अतिथि-यज्ञ कहा गया है ! अतिथि तो देवता होता है।"

"मार्च के महीने में ये लाल लाल सेब ?" लूथर बोला।

साधु ने कहा—"देखिए, कितने मीठे हैं। इन सेबों को हरिकृष्ण ने अपने ठंढे गोदाम में सँभालकर रखा है। जानते हो, क्या नाम है इनका ?"

उन दोनों को संकोच करते देख साधु ने कहा—"सेब काट कर नहीं खाया जा सकता। मेरे पास तो चाकू भी नहीं है। ऐसे ही झकोसिए।"

उस साधु की वाणी में ऐसा मधुर आग्रह था कि दोनों सेब खाने लगे। एक ग्रामीण ने अपनी जेब से चाकू निकालकर लूथर की ओर बढ़ा दिया। साधु बोला—"हाँ, इन सेबों के नाम की बात चल रही थी। आप के देश में भी तो सेब बहुत होता है। इस सेब को क्या कहते हैं।"

"जोनाथन-रेड तो यह नहीं है ?" लूथर ने कहा—"स्वाद में यह डेलिशस सा लगता है। लेकिन इसमें रस उससे कहीं अधिक है। रंग भी बड़ा सुन्दर है।"

"इसे स्टोक्स कहते हैं।" साधु ने कहा—"स्टोक्स एक अंग्रेज पादरी का नाम है। वह बेचारा इन पहाड़ों में ईसाई धर्म का प्रचार करने आया था; लेकिन प्रकृति की इस सुरम्य माया से विमोहित होकर स्वयं भी प्रकृति का उपासक 'पैगान' हो गया। उसने धर्म प्रचार का काम छोड़कर इसी सेब का प्रचार किया। सेबों की नर्सरी बनाई। इस सुन्दर सेब को इन पहाड़ों पर लगाने का श्रेय उसी को है। कई वर्ष हुए, वह बेचारा मुझसे मिला था। एक इसी देश की महिला से विवाह करके पास ही ल्वेसाल गाँव में रहता था। उसकी काली गोल टोपी, कपड़े की घुंडीदार मिरजई और पहाड़ी पाजामा देखते ही बनता था। उसके बच्चे हैं। वह तो अब मर गया; लेकिन स्टोक परिवार खूब सम्पन्न है।"

सेब चबाते हुए लूथर ने कहा—"हम स्टोक्स के उस गाँव को भी देखने जायँगे।"

साधु कहता गया—"आपके देखने योग्य यहाँ और भी बहुत से स्थान हैं। हिमालय की ये कन्दराएँ तो शताब्दियों से भारत की सभ्यता की केन्द्र रही हैं। अब भी ये पर्वत मानव जाति को अपने अपार आकर्षण से विमोहित करते रहते हैं। यहाँ कुछ ऐसे साधक भी हैं, जिनके विषय में संसार बहुत कम जानता है। ये साधक न ख्याति के इच्छुक हैं और न सम्पदा के।"

"चित्रकार पियरे जां ने हमें रामकृष्ण आश्रम को देखने के लिए कहा है।" केशवचन्द्र ने कहा।

साधु बोला—"हाँ, वह स्थान बहुत सुन्दर है। वैसे ही और भी स्थान हैं। उत्तर वृन्दावन में प्रोफेसर डिक्सन रहते हैं। वे दर्शन-शास्त्र के बड़े भारी विद्वान हैं। मायापुरी में जर्मन साधु मर्क का आश्रम है। कौसानी में लंदन की वह विदुषी साधना करती है, जो गांधीजी के आश्रम में थी। उत्तर काशी में रेलवे के भूतपूर्व स्लैब इंजीनियर, जिन्होंने अब धनञ्जय नाम रख लिया है, रहते हैं।

कैलास की ओर भूगोल के विशेषज्ञ स्वामी प्रवीण का आश्रम है। ये सब विदेशी थे। आप इन सबसे मिलिए। मिलकर फिर न आपको केमरे की सुधि रहेगी, न अपने पत्र की।"

केशवचन्द्र तो राय के अनुसंधानों के विषय में ही सोच रहा था। वह बोला—"डाक्टर राय से मिलना आवश्यक है। मुझे याद आ गया, उन्होंने 'अमेरिकन साइंटिस्ट' में उन प्रयोगों का वर्णन किया था, जिनमें प्रकृति और बैक्टीरिया के मध्यवर्तीय विकास की श्रेणियों का प्रतिपादन किया गया था। 'एवाल्यूशन और मैमल्स एंड बैक्टीरिया फ्राम मैटर' ऐसा ही शीर्षक उस लेख का था। मुझे उससे अपनी शोध में बड़ी सहायता मिलेगी।"

"क्या करोगे उस शोध से?" साधु ने कहा—"कृत्रिम अन्नों से खाद्यान्नों की समस्या सुलझेगी नहीं और अधिक जटिल हो जायगी। मानव सुखों के कृत्रिम साधनों के सुलभ हो जाने से दुःखों की वृद्धि हुई है। शान्ति सभाओं के स्थापित होने से युद्ध छिड़े हैं। औषधियों के आविष्कार से रोग बढ़े हैं। यदि आज प्रत्येक परिवार अपने अपने उपयोग के लिए स्वतः परिश्रम करके अन्न उत्पन्न कर ले तो न युद्ध हों, न यह प्रतिद्वंद्विता।"

"देहात के लिए तो यह बात ठीक है।" केशवचन्द्र ने कहा—"लेकिन बड़े-बड़े शहरों की अन्न की समस्या कैसे हल होगी? भूमि का उर्वरापन भी तो घट रहा है।"

साधु ने कहा—"प्रत्येक नगर का एक बड़ा फार्म होना चाहिए। नगर की शासन-व्यवस्था को ही उस फार्म में उस नगर के निवासियों की आवश्यकता के योग्य अन्न उपजाना अनिवार्य हो जाना चाहिए। रह गई ऐसे कार्यों के चलाने के लिए श्रमिकों की आवश्यकता। प्रत्येक नगर निवासी को चाहे वह बुद्धिजीवी हो या विद्यार्थी अथवा व्यापारी हो या मजदूर, कुछ घंटे प्रतिदिन इस फार्म में काम करना चाहिए। इस प्रकार सभी शहर अन्न के

लिए आत्मनिर्भर हो जायँगे। शहर के जल या प्रकाश का दायित्व जिस प्रकार नगर समितियाँ लेती हैं, उसी प्रकार भोजन का प्रबंध भी उन्हें ही करना चाहिए।"

केशवचन्द्र ने कहा—"कुछ लोग यदि मिलों में कपड़ा उत्पन्न करते हैं, तो कुछ ऐसे कारखानों में गल्ला ही करें।"

साधु बोला—"क्या ये तुम्हारे मित्र के देशवासी अन्न का सिंथेसिस हो जाने पर चैन से रह सकेंगे? पिछली मन्दी में अमेरिका के कितने बैंक बरबाद हो गए थे। उस समय लाखों टन गेहूँ पैदा करके उस देश के शासकों को इसीलिए जला देना पड़ा था कि बेकारी के बढ़ जाने से देश में अनाचार न फैल जाए। दूसरे देशों में लोग भूखों तड़प रहे थे और अमेरिका में अन्न जल रहा था। मान लिया, आपका प्रयोग सफल हुआ और आप लाखों टन अन्न प्रतिदिन मिट्टी, पानी और हवा जैसे सुलभ कच्चे माल से बनाने लगे। तब इस अन्न की माँग खूब बढ़ेगी। इसके वितरण करने की समस्या खड़ी हो जायगी।

"नमक के उत्पादन पर ध्यान दीजिए। नमक तो अथाह समुद्र के जल को उलीचकर मनमानी मात्रा में उत्पन्न किया जा सकता है। उसके लिए किसी कल या कारखाने भी आवश्यक नहीं हैं। लेकिन वह नमक भी इन पर्वतवासियों को प्राप्त नहीं है। इन लोगों से पूछिए, महीनों से यहाँ पर नमक का अभाव है, जिसका कारण वही वितरण की समस्या है।

"ऐसे अन्न के कारखाने से लोग उन्हीं कारखानों के आस-पास, जहाँ कि ऐसा सस्ता अन्न प्राप्त होगा, बसने लगेंगे। कारखानों का रूप बढ़ेगा। मानव समाज सिमटकर शहरों में समाने का प्रयत्न करेगा। उन नगरों में मकानों की कमी के कारण स्काई-स्क्रेपर बनाने पड़ेंगे। मानव समाज में यह संकुल संक्षेपण शोषण और दैन्य को

जन्म देगा। इसके विपरीत यदि सब लोग अपने-अपने परिवारों के निमित्त अन्नोपार्जन करें, तो छोटे छोटे परिवार अपनी अपनी सम्पत्ति के स्वामी रहेंगे। खेतों में उपजाया ऐसा अन्न स्वयं उपभोक्ताओं के द्वार पर उनके अपने परिश्रम से पहुँच जायगा। क्या इस प्रकार विकेन्द्रित खेतों में तीन ही महीनों में करोड़ों टन गेहूँ पैदा होकर बिना किसी विशेष साधन या व्यवस्था के वितरित न हो जायगा?"

लूथर को उस समय जमुहाई आ गई। लेकिन केशवचन्द्र उन बातों को घुमा-फिराकर अपने ही ऊपर लागू कर रहा था।

"आप लोग उकता गए।" साधु ने लूथर को अँगड़ाई लेते देखकर कहा—"मुझसे भी गाँववाले एक बीमार पशु को चलकर देखने का आग्रह कर रहे हैं।" कहते हुए साधु पेड़ की ओर लपक गए और बैसाखी टेककर खड़े हो गए।

लूथर और केशवचन्द्र भी उठकर जाने लगे। लूथर ने कहा—"क्या आप पशु-विशेषज्ञ भी हैं?"

साधु ने कहा—"ये लोग मुझसे जो काम चाहें, करा लेते हैं। मैं इनका पुरोहित हूँ, डाक्टर हूँ और शालिहोत्र भी। जो थोड़ा सा अक्षरज्ञान मुझे है उससे ये समझते हैं, मैं सभी बातों का विशेषज्ञ हूँ। कानूनी सलाह से लेकर देवता की आराधना तक मुझसे ही कराने को उद्यत रहते हैं।"

फिर खूब जोर से कहकहा लगाकर हँसते हुए साधु ने कहा—"अच्छा, साँझ हो रही है। कभी फिर इस ओर आइए, तब फोटो के लिए आज्ञा दे दूँगा।"

आज की नितान्त अपरिचित अनुभूति केशवचन्द्र के चिर-संचित विचारों को गड़बड़ा रही थी। वह सोच रहा था कि साधु के सम्पर्क से कायापलट हो जानेवाली घटनाएँ उपहास्य सी

लगती थीं, लेकिन आज वह ऐसी घटना का शिकार बन गया। उसे अब तक के अपने प्रयत्नों की व्यर्थता, जितना ही अधिक वह उस विषय में सोचता, उतनी ही अधिक स्पष्टता से व्यक्त होने लगती। मानो अथाह समुद्र के किनारे अपनी नाव लेकर वह उसे पार करने चला था, उसका पोत डगमगाता बढ़ा था। दूर निर्दिष्ट द्वीप का छोर दीखने से पूर्व ही, अचानक झंझावात ने नाव को फिर पहले ही किनारे पर लाकर टकरा दिया।

जितना ही वह संश्लेषित अन्न के विषय में साधु के उस तर्क पर ध्यान देता, उतनी ही अधिक ममता उसे अपने अन्न से संबंधित पुराने प्रयोगों से हो जाती। अब अपनी पुस्तकों तथा वैज्ञानिक पत्रिकाओं में प्रकाशित अपने लेखों को वह अवकाश के समय ऐसी तल्लीनता से पढ़ता, मानो किसी परीक्षा की तैयारी कर रहा हो। डाक्टर राय विद्यालय का अध्यापन कार्य छोड़कर वनस्पति-संबन्धी अनुसंधानों में ही पुष्पघाटी नामक निकटवर्ती हिमालय की कंदरा में आ बसे हैं, यह जानकर उसे अपनी नौकरी और भी अधिक खलती। वह राय से मिलने के लिए व्याकुल हो जाता। कई बार लूथर के साथ पुष्पघाटी जाकर राय की वनस्पतिशाला और उनके पास रहनेवाले उपोषित बालक को देखने का कार्यक्रम बना भी; लेकिन उस स्थान की दुर्गमता और लूथर की अनिश्चितता से बार-बार वहाँ जाना स्थगित हो गया। उसके आग्रह करने पर अप्रेल के अंत में लूथर ने पुष्पघाटी जाने का दृढ़ निश्चय किया और एक रविवार को वे दोनों दो पहाड़ी टट्टुओं को किराए पर लेकर पुष्पघाटी पहुँच गए।

१६—पुष्पघाटी में

"अच्छा तो और क्या बातें सुनीं आपने मेरे विषय में ?" डाक्टर राय ने कहा और एक मधुर हँसी उनके होठों पर खेल गई। "आप लोग कहते जाइए हाँ, कहते जाइए। पंगु बाबा और सिपाहियों ने जो कुछ मेरे और इस लड़के के विषय में कहा, वह भी बतलाइए।"

लूथर और केशवचन्द्र, जो कुछ उन्होंने पर्वतवासियों तथा उस दिन पंगु बाबा से इस विषय में सुना था, उसका वर्णन करने लगे।

चाय की घूँट पीकर फिर ध्यानमग्न से हो राय ने कहा—"वास्तव में मैं इस दुर्गम घाटी में रहने और बिना अन्न के खिलाए इस बालक को जीवित रखने का प्रयत्न करने के लिए बाध्य हो गया था। इस सारी घटना को सुनकर आप लोगों को विश्वास हो जायगा कि यही एकमात्र स्थिति मेरे लिए अनिवार्य थी। मुझे बसु-विद्यालय की नौकरी छोड़कर इस निर्जन, किंतु सुरम्य स्थान में आकर बसना पड़ा, इसके अलावा मेरे लिए और कोई दूसरा चारा ही न था।"

मेज पर एक पहाड़ी केतली में चाय रखी थी। वह केतली ही इस प्रकार बनी थी कि बीच के खोखले में झँझरी सी थी, जिसमें कोयले दहक रहे थे और बाहर के गोलाकार बन्द परिवेष्ठन में पत्तियों सहित गर्म पानी था। पीने के लिए छोटी-छोटी प्यालियाँ थीं, जिनके बाहर काठ का आवरण था और अन्दर की ओर चाँदी की कटोरियाँ, जिससे चाय गर्म भी रहे और पकड़ने में हाथ भी न

जले। दोपहर का समय था, लेकिन धूप में इतनी गर्मी न थी कि शरीर को गर्म रख सके। वे लोग बन्द कमरे में अँगीठी के निकट बैठे थे, फिर भी कभी-कभी जाड़े के कारण पीठ काँप जाती थी। यह सब उस स्थान की ऊँचाई के कारण था। समुद्र तल से वह घाटी ग्यारह हजार फीट ऊँची थी। घाटी में शीतऋतु की पड़ी बर्फ अप्रेल के अंत तक भी नहीं गली थी।

डाक्टर राय ने फिर तीनों प्यालियों में चाय उँड़ेलकर कहा—"बात उन दिनों की है जब कबाइलियों के आक्रमण नहीं आरम्भ हुए थे और इन पहाड़ों पर शांति का साम्राज्य था। मैं नित्य की भाँति उस वर्ष भी गर्मियों की छुट्टियाँ बिताने इन पर्वतों पर आया था। इस घाटी में आपको प्रतिवर्ष नए-नए फूलों का मिलना आश्चर्यजनक सा लगेगा; लेकिन बात कुछ ऐसी ही है। मैं जितनी बार यहाँ आया, नित नए प्रकार के फूलों के नमूने यहाँ से ले गया। इनमें बहुत से ऐसे पुष्प हैं, जिनके बीज उष्ण प्रदेश से उत्तर हिमालय की ओर उड़-उड़कर आनेवाले पक्षियों के झुंड अपने उदरस्थ कर लाते हैं। उन चिड़ियों की बीट द्वारा ये पुष्प इस घाटी में बिखर जाते हैं। शरद ऋतु के आरम्भ में जब इस प्रकार उगे हुए पुष्प अपनी सुन्दरता की पराकष्ठा को पहुँचे होते हैं तो हिमपात होना आरम्भ हो जाता है। पुष्पों को बर्फ के नीचे दब जाना पड़ता है। लगभग आठ महीने लगातार बर्फ गिरने के कारण इस प्रकार दबे हुए पुष्प, अपने को जीवित रखने के लिए जड़ों में गुल्मों को उत्पन्न कर लेते हैं। इन गुल्मों के कारण उष्ण प्रदेशीय इन पुष्पों का रूप ही परिवर्तित हो जाता है। जाड़े में बर्फ की तह बीस-पच्चीस फीट से कम मोटी नहीं होती; लेकिन इससे पुष्पों को लाभ ही होता है। बर्फ की जमीन से लगी तह इतने मोटे हिम-आवरण के भार से पिघली रहती है, जिससे उन प्रस्तरीभूत पुष्पों के पौधों को जीवन-रस मिलता रहता है।

"शरद ऋतु में फिर चिड़ियाँ मंगोलिया और चीन-तिब्बत के पठारों से दक्षिण की ओर जाती हैं। यह घाटी उस समय अपेक्षाकृत गर्म रहती है। वे पक्षी थक-थककर यहीं आकर रुकते हैं। अपनी बीट में वे फिर ऐसे मध्य-एशियाई पुष्पों को लाकर बो जाती हैं, जो इस प्रदेश के लिए नितांत नए होते हैं। यह क्रम चलता ही रहता है। विभिन्न फूलों का इस प्रकार एक दूसरे से संसर्ग होता रहता है और ग्रीष्म ऋतु में नए ही प्रकार के वर्ण-संकर पुष्प उपजते रहते हैं।

"जब उस वर्ष मैं अपनी छुट्टियाँ बिताकर वापस जा रहा था तो यह बालक अचानक ही मुझे एक दुर्घटना के कारण मिल गया। मैंने अपने नौकर को दो दिन पहले छुट्टी दे दी थी। वह मुझे रेलवे स्टेशन पर मिलनेवाला था। मैं अकेला ही अपनी मोटर में यात्रा कर रहा था। आकाश मेघाच्छन्न था। हवा में ऐसी दम घोंटनेवाली उष्णता थी कि वर्षा किसी भी क्षण हो सकती थी। राजनैतिक स्थिति में भी कम घुटन न थी। कोई कह नहीं सकता था, कब आक्रमणकारी नदी पार करके इस प्रदेश में आ घुसेंगे।

"जब मैं निहाल नदी के पुल के निकट पहुँचा, तो इस बालक को सड़क पर अचेत पड़ा देखकर मेरा पाँव ब्रेक पर जा लगा। मैं मोटर से उतरा। बालक का एक पाँव टखने के पास से बिलकुल ही कट चुका था। नीचे का भाग कहाँ गिरा था इसका भी पता न लगता था। आसपास दृष्टि डालने पर मैंने देखा एक मोटर पुल के नीचे चकनाचूर पड़ी थी। यह मोटर कुछ ही क्षण पहले फर्राटे के साथ मेरी मोटर से आगे बढ़ी थी। मैंने अपने दूरबीन से वेगवती नदी की धारा की ओर दूर तक देखा; किन्तु कहीं किसी मानव का चिन्ह भी न था। शायद उस मोटर में बैठे दम्पति इस बालक के साथ पहाड़ की यात्रा से लौट रहे थे। सम्भव है, वे उस पार

आक्रमणकारियों के आतंक से भागकर इस प्रदेश में शरण लेने आ रहे थे।

"बालक का पाँव मोटर के शीशे के आघात से कटा ज्ञात होता था। शायद मोटर का अगला काँच टूटकर टखने के किंचित् ऊपर पाँव पर खड़ा गिरा था और तत्क्षण सारी मोटर का भार उस आड़े काँच पर पड़ा था। काँच ने तेज तलवार का काम करके पाँव को पल भर में काट दिया था।

"मैंने बालक को उठा लिया। उस समय उसकी आयु लगभग चार वर्ष की रही होगी। सुकुमार फूल सा वह मूर्च्छित पड़ा था। जैसे किसी कटे पेड़ के तने का गोलाकार चकत्ता दीख पड़ता है, वैसे ही उसके पाँव का गोलाकार ताजा व्रण किसी डाक्टर द्वारा काटे गए चकत्ते सा दीखता था। नसों से रक्त और लाल-लाल रस सा बह रहा था।

"मैं मन ही मन यह सोचकर खीझ रहा था कि यथोचित उपचार के अभाव में बालक शीघ्र ही मृत्यु को प्राप्त हो जायगा। मुझे न किसी निकट के अस्पताल का पता ज्ञात था, न किसी डाक्टर का। मैं यह भी सोच रहा था कि मुझे इस दुर्घटना की सूचना किसी थाने में करनी चाहिए। मैंने बालक को गोद में उठा लिया। मोटर में उपचार के योग्य वस्तुओं की याद की, पेट्रौल था, तेल था, श्वित जल की बोतल थी, फल थे, ग्लूकोज का डिब्बा था; लेकिन प्राथमिक सहायता का कोई सामान न था। घाव के ऊपर मैंने रूमाल को फाड़कर कसकर बाँध दिया। रक्त का बहना रुक गया, तब मैंने बालक के सीने पर हाथ रखा, हृदय गतिशील था। कटे हुए भाग यदि चेतनाशून्य किए जा सकते, तो शायद बालक को होश आ जाता।

"मैंने पेट्रौल में जल मिलाया। ऊपर के तैरते तेल को फेंककर शेष अलकोहल मिले जल से घाव धो डाला। एक साफ रूमाल से

उसे बाँध भी दिया। ग्लूकोज का घोल बनाकर एक-दो घूँट बच्चे को पिलाना चाहा; लेकिन उसके दाँत कसे हुए थे। मैं थोड़ी देर इसी द्विविधा में रहा कि इस अधमरे बालक को कहाँ ले जाना चाहिए। उस निर्जन स्थान में उसे मृत्यु के सहारे छोड़ना भी मेरी सहज बुद्धि के लिए ग्राह्य न था। मैंने उसे मोटर की अगली सीट पर अपने पास ही लिटा दिया और आगे बढ़ गया।

"खुले घाव के ऊपर का कपड़ा भीगने लगा था। यद्यपि रक्त नहीं बह रहा था; लेकिन वह कपड़ा सीरम की भाँति किसी तरल वस्तु को सोखता जा रहा था। इसलिए मुझे शीघ्र मोटर रोककर फिर दूसरी पट्टी को फेंक देना पड़ा ताकि रक्त या रस स्वतः शुष्क होकर नलियों के छिद्रों को बन्द कर दे।

"कई मील चलने के उपरांत एक बूढ़ा अपने पशुओं को हाँकता दीख पड़ा। आक्रमणकारियों के कारण सारे गाँव खाली पड़े थे। मैंने उस बूढ़े से अस्पताल और थाने के विषय में पूछा। वह मेरी ओर हक्का-बक्का सा देखता रहा। शायद उस बूढ़े पर्वतवासी को अपनी इस आयु तक इन दोनों की स्थिति का बोध ही न हुआ था।"

२०—दुर्घटनाग्रस्त बालक—१

लूथर और केशवचन्द्र तल्लीनता से डाक्टर राय की बात सुन रहे थे। बड़े से चिमटे से अँगीठी के जलते अंगारों को ठीक करके राय बोले—"बड़े लम्बे सफर के उपरांत थाना मिल गया। इस पहाड़ी प्रदेश में अपराधियों के अभाव के कारण पुलिस की व्यवस्था नाम-मात्र को है। मैं मोटर लेकर थाने के अन्दर तक चला गया। वहाँ जाकर देखा तो ज्ञात हुआ कि थानेदार सदर गए हैं। कुछ सिपाही शत्रु के आक्रमण के भय से पास के पुलों पर पहरा देने को तैनात किए गए हैं। अकेला एक सिपाही वहाँ पर था। मैंने संक्षेप में दुर्घटना की बात उसी को कह सुनाई और घटना-स्थल पर जाने को कहा। अपनी मोटर की ओर संकेत करके उस सिपाही को घायल बालक को देख लेने का भी परामर्श दिया। यह भी सुझाया कि यदि वह बच्चा उसको सौंप दिया जाए, तो क्या वह उसे अस्पताल तक पहुँचा देगा।

"लेकिन सिपाही कुछ नहीं बोला। उस दिन मुझे स्पष्ट ही जान पड़ा कि अपने देश के पुलिस के सिपाही को अपने कर्त्तव्य का कितना कम बोध होता है। मोटर से उतरकर थाने की ओर जाने के कारण मुझे अपना कोई अफसर या जिले का अधिकारी समझकर उसने कुछ क्षण पहले सलाम किया था। पर अब यह समझकर कि मैं न तो कोई अफसर हूँ, न कोई प्रभावशाली व्यक्ति, किन्तु एक फरियादी हूँ, उसे अपने किए सलाम के दुरुपयोग पर पश्चात्ताप-सा हो रहा था। वह फिर मेरी ओर से मुँह फेरकर सुरती बनाने में व्यस्त हो गया।

"मैंने पूछा—'तो मैं बच्चे को वापस ले जाता हूँ ?' सुरती की फंकी लेकर भरे हुए होंठ को कष्ट न देकर उसने सिर हिलाकर ही स्वीकृति दे दी। मैं मोटर लेकर फिर आगे बढ़ा। फिर ध्यान आया कि अस्पताल का ठिकाना पूछ लेना चाहिए। मार्ग में बच्चा मर गया तो मुझे हत्या का अपराध लग सकता है। इसलिए फिर लौट आया। सिपाही से कागज माँगा, लेकिन उसने कागज देने से साफ इनकार कर दिया।

"जल्दी मैं मोटर के बूट में से सूटकेस निकाला और अपना पैड निकालकर मैं जिन परिस्थितियों में बालक को ले जा रहा था, उसका संक्षिप्त-सा वर्णन करके अपना पूरा पता लिखकर मैंने उस सिपाही को दे दिया कि थानेदार के आने पर उन्हें दे दे।

"फिर सिगरेट केस खोलकर सिपाही की ओर बढ़ाते हुए इस प्रकार सिपाही से परिचय बढ़ाकर मैंने कहा—'अस्पताल का पता बता दो या किसी और आदमी को मेरे साथ भेज दो, भाई। कुछ तो करो, जिससे बालक की मौत टल सके।'

'क्या करूँ ?' सिगरेट लेकर सिपाही बोला—'अस्पताल तो पन्द्रह मील पश्चिम की ओर दूसरी सड़क पर है। वहाँ के लिए रास्ता पैदल का है। आदमी गाँव छोड़कर भाग गए हैं।' मैं निराश होकर आगे बढ़ गया।"

राय की मुद्रा इतना कह चुकने पर अब दोनों आगन्तुकों को बदलती-सी ज्ञात हो रही थी। एक वैज्ञानिक का भावुक रूप उस मुद्रा पर स्पष्ट अंकित था। वह कहता गया "आकाश में घिरे हुए बादल और नीचे आ गए और घनी वर्षा की प्रतिक्षण आशंका होने लगी। मैं बालक की मुद्रा की ओर, जो अब तक शान्त और निर्जीव-सी लगती थी और जिसमें बालोचित ताजगी थी, क्षण-क्षण देख लेता था कि यदि वह मुर्झाने सी लगे अथवा मृत्यु के लक्षण दीखने लगें, तो मैं कोई और उपाय सोचूँगा। पहाड़ का वह मार्ग

जो इतना सुरम्य और चित्ताकर्षक लगता था, जहाँ महीनों मोटर चलाकर भी मैं न ऊबता था, आज मुझे बहुत ही लम्बा और भयानक प्रतीत होने लगा। कई मील चलने के उपरान्त उस पक्की सड़क पर मोटर आई, जो किसी पहाड़ी जिले के सदर मुकाम को जाती थी। उस पर कुछ दूर आगे बढ़ने पर मील का पत्थर पढ़ने को मिला, जिससे ज्ञात हुआ कि वह स्थान ४८ मील दूर था। मेरी मोटर के लिए यह दो घंटे का सफर था। यदि दो घंटे भी बचा और जी सकता, तो शायद उसके प्राण बच जाते।

"पानी की एक बड़ी गोल-गोल बूँद मोटर के आवेष्टन पर गिरकर काँच की गोली की भाँति उछल-सी गई। फिर अनेक बड़ी बड़ी गोलाकार बूँदें गिरनी आरम्भ हो गईं। सड़क के दोनों किनारों पर तिनके और घास के टुकड़े झाड़ियों में अटके हुए थे और इस बात का संकेत कर रहे थे कि दो एक दिन पहले भी इस ओर घनी वर्षा हुई है। मोटर पूरे वेग से चल रही थी, पर आगे सड़क और भी खराब हो चुकी थी। वर्षा के कारण सड़क से मिट्टी धुल गई थी, उलटे दाढ़ों से उभरे हुए कंकड़ मोटर को लगातार झटके दे रहे थे। मेरा ध्यान बार-बार बच्चे की ओर जा रहा था। अब हवा भी चलने लगी। मोटर के अन्दर कुछ सरसराहट सी हुई। ठंढी हवा के चलने और वर्षा की बूँदों के कारण बालक को कुछ चेत-सा होने लगा। मैंने देखा, उसने कटे हुए पाँव के ठूँठ को हिलाना आरम्भ कर दिया, फिर एक हाथ को बढ़ाकर वह कटे हुए भाग को ढूँढ़ने का-सा प्रयत्न कर रहा था। तत्क्षण उसके माथे पर छोटे-छोटे जलकण झलकने लगे। पहले तो मैं उसे वर्षा की बौछार का पानी ही समझा; किन्तु और निकट से देखने पर ज्ञात हुआ कि वह पसीने की ही छोटी-छोटी बूँदें थीं। ये शीतल स्वेद कण मृत्यु के समय की सन्निकटता के द्योतक हो सकते हैं—इस आशंका से मेरा हृदय काँप उठा। मैंने एकदम

मोटर रोक दी और ग्लूकोज का घोल, जो थर्मस में रखा था, हाथ में लेकर बच्चे को पिलाने का प्रयत्न किया ; पर उसके दाँत पूर्ववत् कसे हुए थे और मुँह का खुलना सम्भव न था।

"पाँव के ठूँठ पर दृष्टि पड़ते ही मैं डर गया। जो रस-सा घाव से गिर रहा था, उस पर अब हवा के से बुलबुले बन रहे थे। उनमें से किसी खुली नस के द्वारा यदि हवा बालक के हृदय तक पहुँच गई तो तत्काल मृत्यु हो जायगी। मैं क्षण भर यह सोचकर किंकर्त्तव्य-विमूढ़ रहा। हवा का धमनी के द्वारा अन्दर जाना कैसे बन्द किया जाय, यह अजीब बात थी। मैं फिर सोचने लगा कि काश, मैं इस समय मानव-शरीर का डाक्टर होता। घाव पर बबूले बनते जाते थे। यदि बालक ने अपनी जाँघ के नीचे पाँव को कुछ भी फैलाया, तो उससे रक्त नाड़ियाँ तनेंगी और रिक्त स्थान के कारण कोई न कोई वस्तु अन्दर चली जायगी। यदि हवा का बबूला फूट जाय और हवा ही अन्दर प्रविष्ट हो जाय, तो मृत्यु तत्काल थी। पाँव ज्यों ही नीचे गिरने लगा, मैंने न जाने किस स्वाभाविक प्रेरणा से थर्मस को खोलकर उसके ढक्कन में ग्लूकोज का घोल बनाकर उसी में ठूठ को डुबो दिया।"

राय ने फिर चिमटे से जलते हुए लकड़ी के कुन्दों को ठीक किया। जलती आग के कारण उनकी श्वेत दाढ़ी एक अपूर्व लालिमा से चमक रही थी। एक क्षण आगन्तुकों की ओर देखकर फिर कहा—"मेरी आँखें घोल पर गड़ी हुई थीं, बबूले थोड़ी देर में टूटकर घोल से ऊपर निकल आए और ऐसा ज्ञात हुआ कि जिस प्रकार पेड़-पौधों की छोटी-छोटी नसें जल को स्वतः खींच लेती हैं अथवा दीये में कपड़े की बत्ती तेल को खींच लेती है, उसी प्रकार उन तनित नसों से ग्लूकोज का रस खिंच गया। यह वही क्रिया थी, जिसे हम वैज्ञानिक केपिलेरी क्रिया कहते हैं। लगभग पन्द्रह मिनट तक मैं उसी भाँति उसी घोल को हाथ में लिये ठूंठ को

उसमें डुबाए, बालक के शरीर के ऊपर झुका रहा। मनुष्य के जीवन से मेरा यह एक खिलवाड़ मात्र था। मैं अपने इस कृत्य से मृत्यु से खेल ही तो रहा था; किन्तु और कोई उपाय उस समय मेरे पास न था। बच्चे को मैंने उसी सीट पर रख दिया। फिर गद्दी पर लगे दोनों तकियों से पाँव को उसी के ऊपर साध दिया कि ठूँठ उसी प्रकार घोल में डूबा रहे। घाव के ऊपर वाली पट्टी अब भी बँधी हुई थी। ग्लूकोज का रंग कुछ कुछ लाल हो गया था; पर यह रक्त के टपकने से नहीं, बल्कि पहले के गिरे रक्त के कणों के ग्लूकोज में घुल जाने से हुआ था।

"मैंने फिर मोटर आगे बढ़ाई। अब वर्षा पूरे वेग से पड़ने लगी। सड़क के दोनों ओर नालियाँ लबालब भर आईं। पहाड़ी नालों ने नदियों का रूप धारण कर लिया। मोटर कहीं-कहीं तो डेढ़-डेढ़ या दो-दो फुट पानी के ऊपर चलने लगी। पर्वत-प्रदेश की पहली वर्षा थी यह। पहाड़ के ढाल पर जितना भी पानी गिर रहा था, वह ग्रीष्म काल के सूखे पत्तों और डालियों को बहा बहाकर इस सड़क तक ले आ रहा था। बड़ी-बड़ी डालियाँ और लकड़ी के कुन्दे अब मार्ग में मिलनेवाले नालों में गंदले पानी के ऊपर उछल-कूद मचाते हुए दीख पड़ने लगे। पानी पड़ता ही गया और आगे बढ़ना खतरे से खाली न था। किन्तु बढ़ने के सिवाय और कोई दूसरा उपाय भी न था। मैं अब उस लाल भूमिवाले स्थान के निकट आ गया था, जिसे इस प्रदेश में रतमटिया या लाल मिट्टी का प्रदेश कहते हैं। सड़क लाल थी। दोनों ओर पहाड़ पर चट्टानें लाल थीं; पर आज उस स्थान का वह चिर आकर्षण मेरे लिए लुप्त था। मोटर उस लाल पहाड़ी पर चढ़कर फिर उतार की ओर जा रही थी कि अचानक ही एक और पुल के पास आकर मुझे ब्रेक लगाना पड़ा। अब मैं उस प्रलयंकर बाढ़ के निकट ही पहुँच गया था, जो पहाड़ों पर एकाएक घनघोर वर्षा के कारण मिनटों में खेतों,

मकानों और पशुओं को बहाकर फिर शान्त हो जाती है। पुल टूट चुका था और पानी सड़क के ऊपर कई फीट ऊँचा बह रहा था। इस काले गँदले पानी के ऊपर भी वर्षा गिर-गिरकर समतल पानी के तल में चेचक के गंदे दागों की रचना करके प्रतिक्षण उसे विकृत सा कर रही थी। पुल के निकट दो उजड़ी दूकानें तो कुछ दिन पहले की वर्षा में ही गिरकर बह चुकी थीं। मैं मोटर से उतर गया और निकट जाकर यह देखने का प्रयत्न करने लगा कि किसी और मार्ग से नदी के उस पार जाना सम्भव है या नहीं।

"वर्षा के कारण पेड़ों के कुछ बड़े-बड़े टुकड़े शायद दो-तीन दिन पूर्व इस नाले में बहकर आए थे और इस पुल के पास दो ऐसे कुन्दे झाड़-झंखाड़ पर अटक गए थे। इन कुन्दों के कारण और कई छोटे-बड़े कुन्दे आ-आकर वहीं पर टिक गए और फिर घास पात, झाड़ी-झंखाड़ जो कुछ भी नाले में बहता हुआ आया, उन्हीं कुन्दों के पीछे जमा होने लगा। इस प्रकार पर्याप्त दूरी तक बहते हुए कूड़े-करकट का ढेर सा जमा हो गया। फिर कोई बड़ा पेड़ बहता हुआ आया और इस कूड़े-करकट के पीछे समूचे नाले के इस पार से उस पार तक पुल ही की भाँति आड़ा होकर टिक गया। इस प्रकार एक पूरा बाँध उमड़े हुए नाले के ऊपर बन गया। इस बाँध के कारण सारे नाले का पानी अपने असली मार्ग को छोड़कर खेतों के ऊपर होता हुआ सड़क की ओर बढ़ा और उसने एक दूसरे नाले की रचना कर दी जिससे कि सड़क बिलकुल ही कट गई। मोटर को सड़क के उस पार ले जाना किंचित् भी सम्भव न था, अतः मैं मोटर में वापस आ गया। वर्षा लगातार हो रही थी। मानो अब वह कभी रुकेगी ही नहीं। लेकिन बालक हिलडुल रहा था। उसकी नाक के पास मैंने उंगली ले जाकर देखा, अब साँस ठीक-ठीक चल रही थी। मुझे कुछ आशा बँधी। मैं भी मोटर के अन्दर बैठकर भूख अनुभव करने लगा

और जो कुछ खाने की सामग्री बिस्कुट, चाय आदि थी, उसे लेकर अपनी असह्य भूख को शान्त करने में लग गया। वर्षा के बन्द होने के चिन्ह न दीखते थे। बादल घुमड़-घुमड़कर आते और पर्वत-शृंगों पर टकराकर अपना सारा जल बिखेरते जा रहे थे। पानी गड़गड़ाता, भयानक शोर करता और यह शोर पहाड़ों पर प्रति-ध्वनित होकर और भी भयानक होकर द्विगुणित हो जाता। बालक को छोड़कर दूर तक जाना सम्भव न था और न उस स्थान पर मोटर को छोड़ना ही उचित था। इसलिए मैंने मोटर मोड़ी और अपने रास्ते पर धीरे-धीरे वापस आ गया कि यदि कहीं कोई सूखा स्थान मिले तो रात्रि काटने का अवसर प्राप्त हो।"

राय ने फिर अँगीठी में गिरे हुए लकड़ी के अधजले टुकड़ों को उस चिमटे से आग की लपटों पर खड़ा रख दिया। पूछा—"आप थक तो नहीं गए?" पर श्रोता तो तल्लीनता से सुन रहे थे। श्रोताओं के उत्तर की बिना प्रतीक्षा किए राय फिर बोले—"कुछ दूर लौट चलने के बाद यात्रियों के ठहरने की एक छोटी सी चट्टी मिली, जिसमें चार पाँच दूकानें थीं, जिनके आगे खुले हुए बरामदे यात्रियों के लिए रहने व भोजन बनाने के लिए बने हुए थे। वर्षा के कारण यात्री तो पुल के इस पार आ ही न सकते थे, अतः चट्टी भी उजड़ी सी लगती थी। बहुत ढूँढ़ने के उपरान्त चट्टी का चौधरी दीख पड़ा। वह अपनी दूकान समेटे एक कोने पर दुबका सा बैठा था। प्रतिदिन सैकड़ों यात्रियों को इसी मार्ग से जाते देख तथा प्रायः सभी को किसी न किसी आवश्यकता में पड़ा देखकर सहज उपकार की भावना तो यात्रा-मार्ग के निकट रहने-वाले दूकानदारों में पाई ही नहीं जाती। इसमें उनका दोष भी नहीं। जो भी यात्री होता है, वह इस पर्वत प्रदेश में नया होता है। इस देश की प्रत्येक वस्तु उसे नई ज्ञात होती है। उसे प्रत्येक बात में असुविधा प्रतीत होती है। इसलिए वह अनेक प्रकार की

याचनाएँ करता है। उसकी जिज्ञासा बढ़ती ही जाती है, विशेषतः जब कि उसे कोई सहृदय दूकानदार मिल जाता है, तो वह अपनी जिज्ञासा को प्रतिक्षण शान्त करना चाहता है। इसीलिए दूकानदार के लिए सहृदय होना अपने ऊपर एक आपत्ति मोल ले लेना है। परदेशी के प्रति इसी हेतु किसी प्रकार का स्नेह यहाँ पर नहीं दीख पड़ता। मन्दिर के पंडों के अतिरिक्त किसी भी अन्य व्यक्ति को इस मार्ग में अतिथि के आ जाने पर प्रसन्नता नहीं होती। जीवन संग्राम यहाँ विकटतर है, अतः व्यक्ति भी स्वार्थी हो जाता है। मेरे उस चट्टी पर पहुँचने पर चौधरी ने स्वभावतः न तो मेरा स्वागत किया और न मुझे देख उसे प्रसन्नता ही हुई। लेकिन गरज तो मेरी थी, मुझे उससे बात करना आवश्यक था। मैंने पहले दूध और चाय के विषय में पूछ लिया और अपनी आवश्यकतानुसार इस समय और रात को इन वस्तुओं के खरीदने का वचन भी दिया। इस प्रकार कुछ आत्मीयता सी उत्पन्न करके चौधरी से अपने मतलब की बात छेड़ी और कहा—'मोटर को ढकने के लिए मेरे पास बरसाती कपड़ा नहीं है और उसमें एक बच्चा बीमार भी है। क्या मैं मोटर को तुम्हारे किसी बरामदे में सूखी जगह पर ला सकता हूँ?'

"चौधरी ने उँगली से सामने के छप्पर की ओर इशारा कर दिया, जिसमें यात्रियों के खच्चर बँधा करते थे।

"मैंने मोटर बढ़ाकर उस छप्पर के नीचे कर दी। किन्तु वह स्थान साफ न था, खच्चरों की लोद की बदबू आ रही थी। ऐसे वातावरण में उस घायल बच्चे को, जिसका घाव खुला था, रखना खतरे से खाली न था। वहाँ पर वर्षा से तो उसकी रक्षा हो सकती थी, किन्तु घाव के सड़ जाने या टेटनस हो जाने का डर भी था। वर्षा अब भी मूसलधार हो रही थी। मैं फिर दूकानदार के पास पहुँचा और पाँच रुपये का नोट उसकी ओर बढ़ाकर कहा—

'कोई सुन्दर हवादार कमरा कहीं उस चट्टी में हो, तो मैं उसके लिए पाँच रुपये तक किराया दे सकता हूँ।'

"सभी पर्वतीय व्यक्तियों की भाँति वह भी एक सरल प्रकृति का अल्पतोषी मनुष्य था। रुपये के प्रति उसका अधिक मोह न था, इससे उसे मेरी आवश्यता की उग्रता का बोध हुआ। उसने अपनी दूकान के दोमंजिले में मुझे एक कमरा दिखाया। कमरा ऊँचाई में पाँच फुट से अधिक न था। कमरे में जो चारपाई थी, वह बहुत मैली थी। दूकानदार ने कहा कि चारपाई का केवल चार आने किराया मुझे देना होगा। कमरे का किराया कुछ नहीं पड़ेगा। पर उसने यह भी प्रस्ताव किया कि यदि मुझे अच्छे साफ-सुथरे स्थान की आवश्यकता हो और यदि मैं कोई सरकारी अफसर हूँ, तो निकटवर्ती डाक-बँगले के चौकीदार से कहकर मेरे वहाँ रहने का प्रबन्ध हो सकता है। प्रस्ताव बड़ा ही सुन्दर था। मैंने चौधरी को धन्यवाद दिया।

"चौकीदार बुलाया गया और मैं उसे मोटर में बिठाकर बाईं ओर एक नाले के किनारे-किनारे चल पड़ा। लगभग आधे मील के उपरान्त मोटर सड़क के किनारे छोड़ दी गई और पहाड़ की ऊँचाई पर डाक-बँगला दीख पड़ा। चौकीदार की सहायता से सामान डाक-बँगले में पहुँचा दिया गया। अन्त में बालक को मैंने गोद में लिया और चौकीदार ने उसके ऊपर छाता खोल रखा। इस प्रकार उसे भी हम डाक-बँगले में ले गए।

"पाँव का घाव अब भी म.नूकोज के घोल में डूबा हुआ था। चौकीदार से ज्ञात हुआ कि निकटतम अस्पताल पन्द्रह मील दूर उसी ओर था, जहाँ से हम लोग लौटे थे; पर वहाँ अब सड़क के टूट जाने से पहुँचना सम्भव न था। घाव को देखकर चौकीदार ने किसी पहाड़ी बूटी का नाम बताया, जिसे कूटकर मोटी तह के रूप में घाव के चारों ओर बाँध देना था। उस बूटी को चौकीदार

ढूँढ़कर ले भी आया और थोड़ी देर में एक प्याले में बूटी का लेप उसने उपचार के लिए प्रस्तुत भी किया। ग्लूकोज के घोल में ठूँठ का पड़ा रहना सम्भव न था और मैं यह भी नहीं चाहता था कि घाव की नसें खुली रहें और हवा उनके अन्दर जा सके। अतः ईश्वर का नाम लेकर चौकीदार की लाई हुई दवा मैंने घाव पर पोत दी और लगभग आधा इंच मोटी तह डालकर चौकीदार के कहने के अनुसार ही घाव को फिर बाहर कपड़े से बाँध भी दिया।

"दवा का प्रभाव तत्काल ही हुआ। थोड़ी देर में बच्चे ने आँखें खोलीं और अपने माँ-बाप के विषय में पूछा। बड़ी कठिन समस्या थी कि बालक को उसके प्रश्नों के उत्तर में क्या बताया जाय और क्या न बताया जाय। मैं तो उसके सामने खड़ा न रह सका। मैंने यह चौकीदार के ऊपर ही छोड़ दिया कि वह अपनी सहज बुद्धि से उसके प्रश्नों का यथोचित उत्तर दे। उनकी बातों को मैं स्वयं बाहर बरामदे में आकर सुनने लगा। वे दोनों घटना की वास्तविकता से अनभिज्ञ थे। फिर भी उनमें बातचीत हो रही थी :

"मोटर कहाँ है ?" बालक ने पूछा।

"नीचे सड़क पर खड़ी है," चौकीदार बोला।

"मुझे यहाँ क्यों ले आए ?" बालक ने फिर पूछा।

चौकीदार बोला—"आपकी तबीअत ठीक नहीं है। मोटर तो आगे जा नहीं सकती। देखिए, बाहर कितने जोर से पानी गिर रहा है।"

"क्या यह अस्पताल है।" बालक ने एक सयाने व्यक्ति की भाँति पूछा—"डाक्टर साहब कहाँ हैं ?"

इस प्रश्न से मुझे कुछ ढाढस बँधा। अपने को बालक के सम्मुख प्रस्तुत करने का यही उपयुक्त समय जानकर मैं अन्दर

जाकर इसके सम्मुख खड़ा हो गया। उसने मेरी ओर देखा और कहा—"डाक्टर साहब!" मैंने इस सम्बोधन का निःसंकोच उत्तर दे दिया और कहा—"मैं हूँ डाक्टर।" बालक ने मेरा भली भाँति निरीक्षण किया। उसके परिचित डाक्टर से मैं विभिन्न था। मुझे डाक्टर के रूप में स्वीकार करने में उसे कुछ हिचकिचाहट हुई। अपने को डाक्टर बतलाते हुए मन में इस मिथ्या भाषण पर मुझे भी ग्लानि सी हुई। मैं डाक्टर था भी और नहीं भी। जैसे अश्वत्थामा के विषय में युधिष्ठिर ने कहा था "नरो वा कुंजरो वा।" वास्तव में नर और कुंजर में जो भेद है, वही मुझमें और जो कुछ मुझे बालक समझा था, उस काल्पनिक व्यक्ति में था। पर मुझे उस समय बालक को अपने विषय में और कुछ अधिक बतलाने की आवश्यकता ही नहीं थी।

बालक ने कहा—"लेकिन वे डाक्टर कहाँ गए, जो पहले अस्पताल में मुझे देखने आते थे और नैनसी सिस्टर कहाँ है?"

मैं समझ गया कि बालक पहाड़ की ओर आने से पूर्व कभी बीमार पड़ा होगा, उसे अस्पताल में दाखिल किया गया होगा और वहाँ पर किसी सहृदय डाक्टर और नर्स ने उसका उपचार किया होगा।

मैंने उसके प्रश्न की अवहेलना करके पूछा—"अच्छा, अपना नाम तो बतलाओ बेबी।"

"मेरा नाम बेबी नहीं।" उसने कहा—"मेरा नाम तो गोविन्द है।"

आश्चर्य की बात थी कि उसने अपने कटे पाँव की ओर किंचित् भी ध्यान न दिया। यह या तो हमारे सौभाग्य की बात थी अथवा उस बूटी का प्रभाव था कि बालक को यह पता भी न लगा कि उसका पाँव कटा है। हमने उसे दूध पिलाया और सो जाने को कहा। सोने का उपक्रम करते हुए वह बोला—

"चार तो अभी बजे न होंगे—अगर इस कमरे में घड़ी होती तो मुझे मालूम हो जाता कि चार कब बजेंगे, और कब मेरे पिता-जी मुझे देखने आयँगे।"

बुद्धिमान् बालक के इन सरल प्रश्नों के उत्तर देना सम्भव न था।" यह कहते हुए वैज्ञानिक का गला रुँध सा आया, आँखें सिक्त हो गईं और कमरे का एक चक्कर लगाते हुए वे बोले—"आप लोगों को मेरा यह वर्णन नीरस तो नहीं लग रहा है? मुझे ऐसे सहृदय जिज्ञासु मिलते ही कहाँ हैं, जिनसे मैं अपनी बात कहकर अपने हृदय का बोझ हलका करूँ।"

हम दोनों ने एक साथ कहा—"किंचित् भी नहीं, हमें तो सारी घटना बड़ी ही आश्चर्यजनक लग रही है। आप कहते जायँ।"

"तब मैं आप लोगों के लिए थोड़ी चाय मँगा दूँ।" वैज्ञानिक ने कहा और शायद इसी हेतु एक विशेष घंटी पर हाथ रखकर किसी को बुलाया। फिर उसी बेंच पर बैठकर कहना आरम्भ किया—"मैं अपनी पत्नी की मृत्यु के उपरांत अपने अनुसन्धानों के पीछे इतना व्यस्त रहा कि मुझे अपनी पत्नी और उन बालकों के विषय में जो उससे पैदा हुए थे और अकाल मृत्यु को प्राप्त हुए, सोचने का अवसर ही न मिला। इसलिए पारिवारिक स्नेह का मुझे किंचित् भी ज्ञान नहीं। अपने भाई-बहिनों से विद्यार्थी जीवन के उपरान्त मेरी कभी भेंट भी नहीं हुई। पहले दूसरे-तीसरे मास उनके पत्र आ जाते थे; किन्तु अब वे सभी अपना स्वतंत्र जीवन व्यतीत कर रहे हैं। न उन्हें कभी मेरी आवश्यकता पड़ती है और न मुझे ही कभी उनसे पत्रव्यवहार करने का अवसर मिलता है। कभी-कभी पारिवारिक जीवन की स्मृतियाँ जाग उठती हैं; पर उससे भी प्रबल भावनाएँ और उससे भी प्रबल स्मृतियाँ कुछ ऐसे वैज्ञानिक अनुसंधानों की हैं, जो उस

जीवन को धुँधला कर देती हैं। इस बालक के साथ घटी हुई घटना ने तो मेरे जीवन का रुख ही बदल दिया।

"उस डाकबँगले में क्या आया कि फिर कबाइलियों के आक्रमण के कारण तो सप्ताहों रेलवे स्टेशन जाना ही संभव न हुआ। वही डाकबँगला मेरा अस्थायी निवास हो गया। मैं प्रति-दिन बालक की सेवा-शुश्रूषा में लग गया। उसका घाव अच्छा हो रहा था। यह बात मैं उसकी बातचीत करने के ढंग तथा प्रसन्न मुद्रा से जान लेता था। भोजन वह अधिक न करता था और न कोई ठोस पदार्थ ही खा सकता था। कभी थोड़ा सा दूध या कोई शरबत पी लेता था; किन्तु इसके अतिरिक्त वह और कुछ भी न लेता था। चार वर्ष के बालक के लिए इतना भोजन बहुत कम था, यह मैं जानता था, इसलिए तरह-तरह के भोजन जो उसके अनुकूल हों, उसके सामने प्रस्तुत कर देता और खिलाने का प्रयत्न करता। किन्तु उसका उस ओर ध्यान ही न जाता था।

"एक बात बड़े आश्चर्य की मेरे ध्यान में आई। वह यह थी कि पाँव के ठूँठ पर पुती हुई बूटी का प्लास्टर जब सूख जाता तो बालक मुर्झा-सा जाता। कभी-कभी तो उसे ज्वर-सा हो आता। लेकिन यदि उस प्लास्टर को गीला रखा जाता, तो बालक प्रसन्न-चित्त रहता था। इस बात पर मेरा ध्यान पहले तो अधिक न गया; किन्तु ज्यों-ज्यों दिन बीतते गए, प्लास्टर को जल्दी-जल्दी भिगोने की आवश्यकता पड़ने लगी। एक बार तो बालक ने न जाने किस प्रेरणा से उस ठूँठ को पानी के गिलास में डुबोकर मेरे सम्मुख एक नई ही समस्या उपस्थित कर दी।

"बात इस प्रकार हुई थी, मैं डाकबँगले के चौकीदार को बालक को सौंपकर अपने परिचित चट्टी के चौधरी के पास गया था। कई दिनों से मोटर के न चलने से बैटरी के खराब हो जाने

का डर था। अतः मैंने कुछ मील मोटर सड़क पर नाले के उस किनारे तक जहाँ पुल टूटा हुआ था, मोटर को ले जाकर यह देखने का विचार किया कि अब यदि मार्ग साफ हो और नदी के उस पार जाना सम्भव हो, तो लौट चलने का निश्चय किया जाए। इस ओर सड़क कुछ ढाल पर चलती थी। इसलिए बैटरी के चार्ज होने की सम्भावना थी। मैं चौकीदार को यह आदेश देकर कि वह बालक के घाव को समय-समय पर भिगोता रहे, पुल की ओर चल दिया। मेरी अनुपस्थिति में चौकीदार बालक से केवल एक-दो बार भोजन आदि के विषय में पूछकर ही किसी और काम से अन्यत्र चला गया। बालक को घाव की पट्टी के सूखने पर उसकी अनुपस्थिति के कारण कुछ बेचैनी-सी ज्ञात हुई और उसने मेज पर रखे हुए गिलास में पानी उँडेलकर स्वयं ही अपने पाँव के ठूँठ को उसमें डाल लिया।

"जब मैं दोपहर को लौटा तो बालक अपनी चारपाई पर बैठा हुआ एक पुस्तक के पन्ने उलट रहा था। उसे चारपाई पर लेटे रहने की आज्ञा थी, अब तक मैं स्वयं उसे कभी बैठाता न था क्योंकि अपने पाँव को देखकर उसे कभी-कभी एकाएक बड़ा दुख हो जाता था कि उसका पाँव कटा हुआ है। वह जूते पहनकर चलने की जिद करता, कुछ अनोखी सी बातें करता, कहता 'मेरे पाँव का अँगूठा खुजला रहा है अथवा मेरे पाँव के तले गुदगुदी सी लग रही है। मैं अपने पाँव में तेल मलूँगा।' इन बातों को सुन कर मैं सहम-सा जाता 'और किसी प्रकार उसका मन बहलाने में सफल होता। 'पाँव का ठूँठ इसीलिए सदा ढका ही रखा जाता था।"

२१—दुर्घटनाग्रस्त बालक—२

"पानी में डूबे हुए उस ठूँठ को बाहर निकालकर घाव को साफ करने में बालक को असह्य पीड़ा होती। वह घाव धोने के लिए कभी उत्सुक नहीं रहता था। एक दिन चौकीदार की सहायता से मैंने बड़ी ही कठिनाई से पट्टी को पूरा खोलकर उस हरी बूटी के चिपके हुए सभी खुरंटों को साफ कर दिया। घाव धोया गया तो कटे हुए व्रण पर उगे हुए बालों को देखकर पहले तो मुझे प्रसन्नता हुई कि घाव पर चमड़ा आ गया और बाल भी निकल चुके हैं। किन्तु घाव अब भी पर्याप्त चिपचिपा था। ऐसे चिपचिपे घाव पर बाल नहीं उग सकते। उन बालों को और ध्यान से देखने पर मुझे ज्ञात हुआ कि किसी बीज पर उगी हुई नई जड़ों के समान थे। सूक्ष्मदर्शक यंत्र की सहायता से देखने पर इन जड़ों में झिल्ली और रोम भी स्पष्ट दीख पड़े। मैंने घाव को फिर उसी हरी बूटी के लेप से ढक देना उचित समझा। स्पष्ट था कि हरे लेप से खाद्य पदार्थ के रूप में उन्हीं मूलरोमों के द्वारा बालक जीवन-रस ग्रहण कर रहा था। यही कारण था कि हमें उस हरे लेप को गीला रखना पड़ता था।

"गत चार वर्ष से बालक इसी क्रिया द्वारा अपना भोजन ग्रहण कर रहा है। उसके पाँव के उस ठूँठ को कभी खोला नहीं जाता है। कभी-कभी हरी बूटी का लेप उस पर पोत दिया जाता है, अन्यथा जाड़े के दिनों में जब उसका मिलना सम्भव नहीं होता, पोषक तत्वों के घोल को एक जूते के आकार की थैली में रखकर घाव पर बाँध दिया जाता है। रात भर पोषक-रस से भरे जूते को ठूँठ पर पहन-

कर फिर अगले दिन उसे भोजन की आवश्यकता नहीं रहती। उसी के द्वारा बालक अपना जीवनयापन करता है। यद्यपि कभी चाय या दूध जैसी वस्तुएँ वह अपने मुँह से पी लेता है; लेकिन मैंने देखा है कि ये उसके लिए आवश्यक नहीं हैं। यदि मैं इन वस्तुओं को उसे न दूँ तो उसके पाचक अवयवों पर इसकी क्या प्रतिक्रिया होगी, यह जानने का प्रयत्न करना शायद निरापद न हो।"

नौकर फिर गर्म-गर्म चाय ले आया। नौकर के साथ किंचित् लँगड़ाता हुआ सा वह बालक आया। आयु उसकी आठ या नौ वर्ष की होगी। वह धारीदार नीली मखमली पतलून, मोटे ऊनी टखनों से भी ऊपर तक आनेवाले लामा लोगों के से जूते, बन्द गले का ऊनी कोट और कानों तक ढकनेवाली गोल टोपी पहने था। उसने हाथ जोड़कर दोनों अतिथियों का अभिवादन किया, फिर राय की कुर्सी के पीछे उनके कन्धे के पास जाकर कहा—"बाबा, निचले खेत में ढेर सारे मल्या* बैठे हैं। आप उन्हें देखने न चलेंगे?"

"नहीं बेटा!" राय ने कहा—"तुम चौकीदार के साथ जाकर उन्हें देख आओ।"

बालक की अकेले जाने में अनिच्छा देखकर वे बोले—"कुछ तो करो, कुछ तो करो, बेटा, हमारे काम में विघ्न न डालो।"

केशवचन्द्र उस बालक के चेहरे के विचित्र से रंग को देखता ही रह गया। रंग तो उसका साधारण स्वस्थ बालकों सा स्वच्छ और गौरवर्ण था; लेकिन जैसे धूपछाँह के कपड़े में एक हलकी झलक-सी हरे रङ्ग की दीख पड़ती है, वैसी ही एक हलकी हरी छाया-सी उसकी आकृति पर झलक रही थी। उस वर्ण को देख,

---

*मल्या—हिमालय प्रदेशीय कपोत।

केशवचन्द्र को बचपन में अपने पिताजी की बैठक में रखे शंकर के चित्र की याद हो आई। शंकर भगवान् के उस चित्र में एक नीली झाईं-सी दीख पड़ती थी। इस आकृति में उसी प्रकार की किन्तु हरी झाईं थी।

केशवचन्द्र सोचने लगा, शायद उसकी आँखें उसे धोखा दे रही हैं। उसकी दृष्टि में भी कभी अत्यधिक उत्तेजना से विकार आ जाता था। पल्टन के गोदाम में कटे हुए आलुओं पर हरे रङ्ग को देखकर ही उसका सिर चकरा गया था। फिर वह सोचने लगा, शायद इतनी देर से आग के समीप बैठने से दृष्टिविकार हो गया है अथवा मार्ग में दोनों ओर चमचमाते बर्फ ढके पहाड़ों पर बार-बार दृष्टि पड़ने से हिमांधता का-सा रोग हो गया है और दृष्टि तंतु शिथिल हो गए हैं। लेकिन दो-तीन बार पलक लगाकर फिर आँखें मलकर देखने पर भी उसे वही हरी झाईं दीखने लगी।

बालक बाहर चला गया, लेकिन केशवचन्द्र विमोहित-सा अपनी आँखों से अब भी उसी द्वार का अनुसरण कर रहा था, जिससे वह अभी-अभी बाहर निकला था। उसकी दूर कल्पना में स्थावर और जंगम सृष्टि की विभिन्नताएँ घूम-घूमकर आ रही थीं। वह सोच रहा था, स्थावर वनस्पति की ही भाँति रोमकूपों से भोजन रस ग्रहण करने के कारण ही शायद बालक की मुद्रा का रंग हरा होता जा रहा है।

लूथर सोच रहा था कि राय यदि उस बालक का फोटो खींचने की आज्ञा दे देते, तो वह इस सारी घटना को बड़े ही महत्वपूर्ण और सनसनीभरे समाचार का रूप देकर अमेरिकन पत्रों में प्रकाशित कराता। इसी एकमात्र समाचार के कारण अमेरिका में वह अभूतपूर्व ख्याति पा सकता है। ध्यानमग्न होकर वह मन ही मन उस समाचार के मसविदों को बना रहा था।

राय भी अपने वर्णन का प्रभाव इन जिज्ञासु श्रोताओं की मुद्रा पर पढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे। थोड़ी देर तीनों इस प्रकार अपने अपने विचारों में निमग्न रहे। लूथर ने समाचार के कई शीर्षक सोचे : द ग्रीन ब्वाय, द वैजीटिबल ब्वाय, द ब्वाय हू लीड्स प्लांट लाइफ, द ब्वाय विद रूट्स ऑन; लेकिन कुछ भी उपयुक्त न जँचा। फिर सहसा उसे विचार आया कि इस बालक ने तो अन्न के उत्पादन की समस्या को हल कर दिया है। मनुष्य अब अन्न पर निर्भर नहीं रहेगा। निकट भविष्य में ऐसे वैज्ञानिक ढङ्ग ज्ञात हो जायँगे कि वह पृथ्वी से ही पोषक तत्व ग्रहण कर लेगा। ऐसे आविष्कार का श्रेय राय को मिलेगा। राय को ? यह श्रेय तो उसी के देश अमेरिका को प्राप्त होना चाहिए था।

इस नए विचार की अनुभूति से लूथर ने कहा—"डाक्टर राय, आपने संसार में एक महानतम परिवर्त्तन लाकर एक नई ही दिशा की ओर इस नक्षत्र को मोड़ दिया है। आपके इस साधारण किंतु क्रांतिकारी प्रयोग का समाचार संसार में खलबली उत्पन्न कर देगा। मुझे आज्ञा दीजिए, मैं संसार को इस अद्भुत आविष्कार के समाचार से अवगत करा दूँ।"

राय ने उसे शान्त करते हुए कहा—"प्रश्न यह है कि बालक जिस प्रक्रिया से उस घोल से जीवन-तत्व ग्रहण कर रहा है वह एक अपवाद मात्र है अथवा ऐसी क्रिया सब प्राणियों पर हो सकती है। ऐसा क्यों हुआ, इसका वैज्ञानिक प्रमाण निकालना क्या हमारे लिए संभव है ? यदि यह बात संभव हो, तो उन रोमकूपों के लिए किसी घोल के अन्दर रहना ही अनिवार्य नहीं है। अजूबा या बरगद के वृक्षों की भाँति ये रोमकूप हवा से भी पोषक तत्व ग्रहण कर सकते हैं और मनुष्य भी ओरचिड और इपीफाइट के वृक्षों की भाँति अपने शरीर के किसी अङ्ग में इन जटाओं को उगाकर भोजन की समस्या को हल कर सकते हैं। तब संभव है प्राचीन काल

में ऋषियों की केवल हवा-पानी पर जीवित रहने की वह बात ऐसी ही जटाओं के कारण हो। साधारण पुष्पों के पौधे इस हिम प्रदेश में गुल्ममय जड़ोंवाले वृक्षों में परिवर्तित हो जाते हैं। जटाओं में यदि गुल्म उत्पन्न हो जायँ तो सचमुच इस नक्षत्र का कायापलट हो जायगा। मानव को नित्य प्रति भोजन करने की तब आवश्यकता ही न रहेगी।"

लूथर अब उस तथ्य को पूर्णतया समझकर उसके व्यापक प्रभाव को मनन करके कुर्सी से उछल पड़ा और बोला—"आप संसार के सबसे महान वैज्ञानिक हैं। आपकी शोध का मूल्य आँका ही नहीं जा सकता। आदिमानव ने जिस प्रकार आग का आविष्कार करके अपने भोजन में आमूल परिवर्त्तन किया और फिर कालान्तर में पहिए का आविष्कार करके अपने जीवन को बदल डाला, उसी प्रकार का यह तीसरा महान् आविष्कार है। क्या ही अच्छा हो कि आप अमेरिका चलकर ऐसे प्रयोगों को करें। वहाँ ऐसे अनेक नवयुवक होंगे, जो आपके इन प्रयोगों का माध्यम बनने को तैयार हो जायँगे। मेरा देश आप जैसे विद्वान् अन्वेषक को पाकर धन्य हो जायगा।"

राय ने लूथर को फिर शांत करते हुए कहा—"आपके देश की बॉटेनिकल सभा ने मुझे किसी और विषय पर भी अनुसंधान करने का निमंत्रण दिया है। यदि मैं अपने विद्यालय में होता, तो उस निमंत्रण को अवश्य स्वीकार कर लेता; लेकिन इस बालक को, जिसको मैं भगवान् की एक बहुमूल्य धरोहर समझता हूँ, छोड़कर जाऊँ कहाँ? इसको माध्यम बनाकर शोधकार्य करना भी न्यायसंगत नहीं जान पड़ता। इस बालक के विषय में मैं गत तीन-चार वर्षों से पत्र-पत्रिकाओं में विज्ञप्तियाँ प्रकाशित कर रहा हूँ कि कोई इसका अभिभावक हो, तो मैं उसे इसे सौंप दूँ; लेकिन कहीं से कोई प्रत्युत्तर नहीं मिलता। पहाड़ी प्रदेश के अतिरिक्त अन्य

किसी स्थान का जलवायु इसके लिए उपयुक्त सिद्ध भी नहीं होता। मैं पहले किसी और जीव को लेकर उस पर रोमकूप उगाने का कार्य करूँगा।"

लूथर ने कहा—"मैं आपको विश्वास दिलाता हूँ, अमेरिका में कोई भी अनुसंधान-संस्था आपको अपने प्रयोगों के लिए पूर्ण सुविधा प्रदान करने को तत्पर रहेगी। आप वहाँ चलकर प्रयोग करने की इच्छा भर प्रकट कर दें, शेष कार्य मैं कर लूँगा।"

"नहीं भाई!" राय ने दृढ़ता से कहा—"इस बालक को छोड़-कर मैं कहीं नहीं जा सकता। न मुझे अपनी ख्याति का ही लोभ है। यदि कोई वैज्ञानिक मेरे अनुभव से लाभ उठाना चाहता है, तो मैं उसे सहर्ष अपने साथ अपनी इसी झोपड़ी में काम करने की सुविधा दे सकता हूँ।"

राय की बात सुनकर केशवचन्द्र का हृदय प्रसन्नता से नाच उठा। यद्यपि उसने कहा कुछ भी नहीं; लेकिन मन ही मन वह संकल्प करने लगा कि पल्टन की नौकरी छोड़ छाड़कर वह किसी न किसी दिन अवश्य ही डाक्टर राय के साथ काम करने लगेगा और तब वह उनकी सहायता के लिए सभी कुछ करने को तत्पर रहेगा। ऐसे वैज्ञानिक के लिए वह बड़े सा बड़ा त्याग भी कर सकता है। सरकारी नौकरी उसके निश्चय में बाधक नहीं हो सकती। दोपहर ढल चुकी थी। सूर्य उस शीतप्रधान प्रदेश में अब सूर्य-ग्रहण के समय का सा फीका शीतल प्रकाश दे रहा था। मेज पर से उठते हुए राय ने कहा—"चलिए, आप लोगों को मैं अपना पुष्प संचय दिखला दूँ।"

लूथर जल्दी वापस जाने के लिए आतुर था। अभी-अभी सुनी हुई उस घटना का वर्णन उसके मस्तिष्क में समाता ही न था। वह उसे शीघ्र लिखित रूप देकर हलका हो जाना चाहता था; लेकिन इसके विपरीत केशवचन्द्र का मन उस सुरम्य घाटी को इतनी जल्दी

छोड़ने को न होता था। उस स्थान पर बिताया हुआ प्रत्येक क्षण उसे अपने जीवन के व्यर्थ गँवाए हुए काल-प्रवाह की ढेर सी सिकता-राशि पर स्वर्ण कणों सा सुन्दर दीप्त और बहुमूल्य लगता था। वहाँ की प्रत्येक वस्तु, प्रत्येक वाटिका और प्रत्येक पत्थर में एक अनोखा ही नया आकर्षण दृष्टिगोचर होता था। उस विचित्र बालक को कम से कम जाने से पूर्व एक बार और देख लेने की उसे बार-बार इच्छा होती थी।

अंत में लूथर ने कह ही डाला—"हमें दूर जाना है, आपके पुष्पों का संचय देखने फिर जल्दी ही आयँगे। इस समय आज्ञा दीजिए।"

राय उन्हें पहुँचाने फाटक के बाहर तक आये। वे लोग अपने टट्टुओं पर सवार होकर शिविर को लौट आए। मार्ग में केशव-चन्द्र को बार-बार यही भास होता, मानो वह कोई अपनी अति-प्रिय वस्तु भूल आया हो।

२२—लूथर के व्यवहार में परिवर्त्तन

दूसरा दिन उन दोनों ने अपने कमरों के अन्दर रहकर ही बिताया। जाड़े की रिमझिम वर्षा और घने कुहरे के कारण बाहर निकलना भी सम्भव न था। लूथर राय से हुई उस मुलाकात के वर्णन को टाइप करके लिखित रूप देने में व्यस्त रहा। वह उसे जल्दी से उल्दी अपनी पत्रिका को भेज देना चाहता था। केशव-चन्द्र उसके कार्य में विघ्न न डालने की इच्छा से उसके कमरे में नहीं गया। उसे आशा थी कि सारे विवरण के टाइप हो चुकने पर लूथर उसे स्वयं नित्य की भाँति अंतिम संशोधन के लिए बुला लेगा। किन्तु लूथर ने इस बार जब उसे नहीं बुलाया, तो केशवचन्द्र भी अपनी पुस्तकों में तल्लीन होने का प्रयास करने लगा। उन पढ़ी हुई पुस्तकों को खोलते-बन्द करते उसे बार-बार राय के प्रयोगों का स्मरण हो आता था। उस लड़के की आकृति, उसका अनोखा हरा वर्ण आँखों के सामने नाच उठता था। उसके मन में एकाएक विचार उठता कि यह मेरा काम था। राय ने जो कुछ किया, ठीक वही मैं करने जा रहा था। हम दोनों का उद्देश्य एक होते हुए भी राय का मार्ग सरल था। लड़के के घाव ने अचानक ही उसे वह अवसर प्रदान कर दिया, जिससे भोजन को मुँह से खाने की भविष्य में आवश्यकता शायद न रह जाय। पृथ्वी से जल, मिट्टी और वायु से सीधे ही हम पेड़-पौधों की भाँति जीवन-रस को ग्रहण कर लेंगे। राय के उस प्रयोग की बात सोचते-सोचते केशवदेव के हाथ पुस्तक के पृष्ठों पर रुक जाते। दूर देवदार के वृक्षों के उस पार घने जंगलों के बीच दृष्टि घूमने लगती। मन में एकाएक

चिहुँक सी उठती कि कब इस कृत्रिम जीवन-यापन से छुटकारा मिले और कब सूक्ष्मदर्शक यंत्र और प्रयोगशाला में काम करने का अवसर मिले।

लूथर उस समय मेज पर से उठा। अपना सिगरेट जलाकर थोड़ी देर पीछे बरामदे में अकेले घूमने लगा। केशवचन्द्र ने उसके व्यवहार से ज्ञात किया कि मानो वह अपने ही विचारों में व्यस्त हो और किसी दूसरे पर उन्हें प्रकट न करना चाहता हो। सिगरेट समाप्त करके वह फिर मेज पर बैठ गया और अपने काम में लग गया।

बाहर पानी अब भी बराबर गिर रहा था। केशवचन्द्र भी अब राय से हुई मुलाकात के विषय में अपनी पत्नी को पत्र लिखने बैठ गया। उसे जल्दी तो थी नहीं। खूब विस्तार के साथ पत्र लिखा जाने लगा। पहले उस यात्रा का वर्णन, राय के उस उद्यान का वर्णन, बालक की कथा और फिर उस प्रयोग की बात। सब कुछ लिखने के उपरान्त केशवचन्द्र का पत्र दस पृष्ठ का हो गया। पूरे सवा घंटे में यह पत्र लिखा गया। पत्र को दुबारा पढ़कर लिफाफे में बन्द करके पता लिखते समय लूथर निकट आ गया और बोला—"क्या आप अपने लेख को बन्द कर रहे हैं? मैंने भी समाप्त कर लिया।" और उसने बन्द लिफाफा केशवचन्द्र को दिखलाया।

केशवचन्द्र ने कहा—"मैंने तो पत्र लिखा है अपनी पत्नी को। पर आज आपने अपना लेख बिना संशोधन किए कैसे बन्द कर दिया? उसे नित्य की भाँति मुझे नहीं दिखलाया?"

लूथर ने कुछ सकुचाते हुए कहा—"यह भी पत्र ही है। मैंने अपनी पत्रिका के सम्पादक को राय के उस अद्भुत प्रयोग के विषय में एक निजी पत्र लिखा है। उसी के आधार पर वे चाहें तो एक या दो स्वतन्त्र लेख बना सकते हैं।"

उस सप्ताह दोनों सेनाओं में शांति की बातचीत चलने लगी और पल्टनें अपने-अपने स्थायी निवेशों को लौटने लगीं, तो केशवचन्द्र के पास विश्लेषण का कार्य बिलकुल ही न रहा। अब वह कभी-कभी सायंकाल सैनिक क्लब में जाने लगा और कभी वह लूथर के साथ उन पहाड़ी जङ्गलों में दूर-दूर तक टहलने निकल जाता। उन दोनों ने सारे जङ्गलों को छान डाला। कहीं वे नए-नए पुष्पों को देखते और तोड़ते, कहीं पक्षियों की चाल-ढाल का अध्ययन करते और कहीं प्रकृति के सौंदर्य का दर्शन करते। पहाड़ी सड़कों पर मोटरें चढ़ती और उतरती दीख पड़तीं। अपने उस निष्क्रिय जीवन से एकाएक ऊबकर केशवचन्द्र अपने मित्र से कहता—"मैं तो पानी से बाहर निकाली गई मछली की भाँति तड़प रहा हूँ। यह नौकरी मेरा दम घोटे जा रही है। कब यहाँ से छुटकारा मिले और मैं फिर किसी अन्वेषणशाला में जाकर चैन की साँस लूँ। प्रतिदिन मैं ऐसी ग्लानि अनुभव कर रहा हूँ कि मानो मैं अपने ही प्रति कोई पाप कर रहा होऊँ।"

केशवचन्द्र की बात सुनकर लूथर गम्भीर हो जाता। मन ही मन कुछ सोचने लगता और कुछ ही क्षणों में केशवचन्द्र को ज्ञात होता कि जो कुछ वह कह रहा है, उसकी ओर लूथर का ध्यान ही नहीं रहा। वह अपने ही गम्भीर चिंतन में लीन हो गया है। ऐसे क्षणों में केशवचन्द्र को अपने हृदय की बात स्पष्ट कह देने की अपनी दुर्बलता खलने सी लगती।

जब दोनों किसी पेड़ के नीचे इसी प्रकार अधलेटे अपने-अपने आत्मचिंतन में लगे रहते तो लूथर एकाएक उठकर राय की याद दिलाता, कहता—"मुझे आज एक जरूरी पत्र अपने एक दोस्त को लिखना है" अथवा "आज मैं अपनी चाची के लिए एक लम्बा पत्र लिखूँगा' और जल्दी लौटने का आग्रह करता।

केशवचन्द्र मन मारे लूथर के साथ लौट पड़ता। उसकी झँझलाहट बढ़ जाती।

लूथर के व्यवहार में अब एक स्पष्ट परिवर्त्तन आ गया था। पहले की भाँति वह अपने पत्रों और लेखों को भेजने से पूर्व केशवचन्द्र को नहीं दिखाता था, लेकिन अब भी उनमें बातें पहले की ही भाँति दिल खोलकर होती थीं। दो तीन बार केशवचन्द्र ने राय के आश्रम की ओर जाने का आग्रह किया; लेकिन लूथर ने अपनी व्यस्तता की शरण लेकर बात को टाल दिया।

उस सप्ताह के अंत में एक दिन जब लूथर ने फिर कुछ लिखने के लिए एकान्त अवकाश चाहने के लिए उसके साथ टहलने में असमर्थता प्रकट की, तो केशवचन्द्र, सकुचाते बोला—"आप बुरा न मानें तो मैं अकेले ही क्लब तक हो आऊँ?"

लूथर ने कहा—"इतनी-सी बात के लिए यह संकोच? अवश्य जाइए। आज तो मुझे बहुत काम है। कल मैं भी आपके साथ चलूँगा।"

मित्र की सहृदयता की वह बात, कि उसे अकेला छोड़कर अपने मनोरंजनार्थ जाना भी उसे खल रहा है, सुनकर लूथर का हृदय गद्गद हो गया।

२३—सुषमा फिर आ गई

पहाड़ के जिस पार्श्व पर सैनिक क्लब था, उसमें घने जंगल थे। इन जंगलों के मध्य कोलतार पुती हुई साफ-सुथरी, टेढ़ी-मेढ़ी सड़कें किसी समय गोरे इंजीनियरों ने बनाई थीं। अब इन सुनसान सड़कों को देखकर आभास होता था कि मानो वे प्रकृति का ही अंग हों। आधुनिक नगरों की सड़कों की भाँति इस पहाड़ी प्रदेश की इन सड़कों पर न तो मोटरें चलती दिखलाई देती थीं और न साइकिल, रिक्शे या तांगे ही। पहाड़ी नगरों में वैसे भी इन सवारियों का अभाव होता है। सैनिक छावनी होने के कारण जन-साधारण को इन सड़कों पर आने-जाने की आवश्यकता पड़ती भी नहीं थी।

केशवचन्द्र ऐसी ही एक सड़क पर होता हुआ पैदल क्लब तक पहुँच गया। क्लब का लाल-लाल छत का दुखंडा भवन दूर से उस घनी हरियाली के मध्य बड़ा आकर्षक लगता था। चारों ओर छोटे-बड़े अनेक समतल खेल के मैदान थे, जिनमें टेनिस, क्रिकेट आदि के खेल होते थे। नीचे के खंड में एक बहुत बड़ा कमरा अंग्रेजों के समय में नृत्यशाला का काम देता था। अब भी उसमें कभी-कभी नाटक आदि हुआ करता था। ऊपर की मंजिल में पुस्तकालय, पानागार, ताश खेलने के कमरे और एक छोटी-सी वेधशाला थी।

केशवचन्द्र को क्लब की वेधशाला ही प्रिय थी। उस वेधशाला में जो पर्याप्त अच्छा टेलीस्कोप लगा था, उससे हिमालय की श्रेणियों का दृश्य देखने के लिए वह संध्या समय बहुधा क्लब में

चला आता था। अपने सूक्ष्मदर्शक यंत्र के अनेक गुणों पर वह कभी विमोहित था और अब उसे इस दूरवीक्षण यंत्र से भी प्रेम हो गया। यह यंत्र भी इतना आकर्षक हो सकता है, इसका बोध उसे पहले-पहल अपने ही अमेरिकन मित्र लूथर से हुआ। पहले हिमालय की किसी चोटी पर उस यंत्र को केन्द्रित करके लूथर ने उसे फिर उसी चोटी की उतराई पर धीरे-धीरे केन्द्रित करते हुए दिखलाया कि हिमाच्छादित पर्वत-श्रेणी के उपरान्त, नंगी वनस्पति विहीन चट्टानें, फिर काई से ढके लाल-लाल हुलार, फिर छोटी-छोटी झाड़ियाँ और फिर उससे भी नीचे त्रिकोणाकार वनस्पति क्षेत्र का विस्तार दूरबीन के द्वारा कैसा सुन्दर दीखता है। नंगी चट्टानों पर बरसात के कारण फिसले हुए 'पैर' (पर्वत पार्श्व), किस प्रकार भूगर्भ की एक-एक परत को नंगा करके, इस दुनिया की रचना पर कैसा सुन्दर प्रकाश डालते हैं। ऐसा नग्न भूभाग, किसी जीव के कुशल डाक्टर द्वारा प्रदर्शनार्थ उद्घाटित कटे अवयव से कम शिक्षाप्रद नहीं होता।

क्लब में शनिवार की शाम को खूब चहल-पहल रहती है। सैनिक अफसर अपनी पत्नियों सहित आ जाते हैं। टेनिस और बैडमिंटन के सब आँगन भर जाते हैं। पानागार में सिगरेट के धुएँ के साथ-साथ मदिरा की वाष्प भी उड़ने लगती है। लूथर को इसीलिए क्लब केवल शनिवार को ही भाता है।

जब आकाश में बादल छाए हों, तो दूरबीन के पास जाना व्यर्थ हो जाता है। समय काटने के लिए तब केशवचन्द्र ताश खेलने के कमरे में चला जाता है। यद्यपि उसका मन खेल में बिलकुल नहीं लगता; लेकिन जब तक लूथर को अपने और मित्रों के आदर-सत्कार से अवकाश नहीं मिलता, वह ब्रिज की एक दो बाजी खेलकर उसकी प्रतीक्षा करता है।

× × ×

एक दिन शाम के समय क्लब में इसी प्रकार के आयोजन से ऊबकर केशवचन्द्र ताशघर में लूथर के लौटने की प्रतीक्षा में था कि लूथर अचानक बड़ी उत्तेजित दशा में उसके पास आकर बोला—"चलो, तुम्हें एक महिला बुलाती हैं।"

"महिला ?" केशवचन्द्र ने चौंककर पूछा—"भला, कौन महिला मुझे बुलाती है ? तुम क्यों मेरा उपहास करते हो ?"

"बनो मत।" लूथर ने व्यंगात्मक हँसी हँसते हुए कहा—"वह तो क्लब में आई हुई महिलाओं में सबसे सुन्दर है, और तुम्हीं से मिलने आज यहाँ आई है।"

केशवचन्द्र समझ गया कि वह कौन महिला हो सकती है। उसका मन कुर्सी से उठने को न हुआ। सुषमा यहाँ भी उसका पीछा करेगी, यह बात उसकी दूर कल्पना में कभी उदित भी नहीं हुई थी। लूथर ने उसे बलपूर्वक उठा लिया और लगभग धकेलता-सा उसे वह नीचे के खंड की ओर ले गया। नृत्यशाला के कोने पर रेलिंग के सहारे एक महिला उन दोनों की ओर पीठ किए दूर नीचे, उन काली, बलखाती सड़कों पर दृष्टि जमाए खड़ी थी। खड़ी नहीं पाँव पर पाँव धरे गर्दन एक ओर लटकाए प्रकृति की उस मनोहारिता से मंत्र-मुग्ध-सी नाच की एक विशेष मुद्रा में निश्चेष्ट थी।

लूथर ने निकट आकर कहा—"ये हैं आपकी मित्र महोदया !"

सुषमा नाच की ही एक विशेष प्रक्रिया से अपने सुन्दर शरीर को एकाएक एक प्रकम्प-सा देकर फिर तनकर खड़ी हो गई। उसने दोनों हाथ जोड़कर केशवचन्द्र का अभिवादन किया।

केशवचन्द्र ने देखा, वह पीली साड़ी पहने थी। पहाड़ की उस ठंड की नितान्त अवहेलना करके वह आधी-बाँह का सुनहरी रंग का सलूका पहने हुए थी, जिसकी आधी बाहों पर लाल-लाल धारियाँ

उसके मांसल तन की मोटाई के साथ उसके सुन्दर गौरवर्ण को भी उद्भासित कर रही थीं। कसी हुई चोली के खुले भाग से ग्रीवा और कंठ तो शंख से श्वेत दीखते ही थे, उरोजों के दोनों ऊपरी भागों की गोलार्ध रेखाएँ भी स्पष्ट दीखती थीं। पीली साड़ी और सुनहरे रंग के सन्नूके के मध्य श्वेत कटि का पूर्व और पृष्ठ भाग भी लैम्प के प्रकाश में चमक उठता था। केशवचन्द्र ने सुषमा को इस प्रकार पाश्चात्य ढङ्ग से श्रृंगार किए हुए आज पहली बार देखा था। सचमुच उसकी सुन्दर आकृति इतने वर्षों के उपरान्त सुन्दरतम हो गई थी। उसके कपोल पहले से कहीं अधिक मांसल और सुन्दर लगते थे, वह पतली-सी नासिका, रँगे हुए ओष्ठ, वे गहरी काली आँखें, किंचित् नुकीली चिबुक और वह चितवन उसे एक अद्भुत रूपवती युवती बना रही थीं।

केशवचन्द्र सुषमा के उस रूप को देखकर एकटक उसकी ओर देखता रहा। सुषमा ने सोचा, वह अवश्य उसके रूप को ही निहार रहा है। लेकिन वह तो अतीत की अनेक घटनाओं की स्मृति की बाढ़ में उस समय उतरता-डूबता-सा सुषमा के यहाँ तक आ जाने के कारण का मन ही मन पता लगा रहा था। उसका शरीर मात्र वहाँ पर खड़ा था, मन और मस्तिष्क दूर अपने उसी पुराने शहर में भटक रहे थे। सुषमा के अभिवादनार्थ जुड़े हुए उसके हाथ जुड़े ही थे। उन हाथों की ओर जब सुषमा की दृष्टि गई तो वह एकाएक कह उठी—"आपके हाथों में यह क्या है?"

केशवचन्द्र की तन्द्रा टूटी। उसने देखा, वह हाथों में ताश के कुछ पत्ते अब भी जकड़े हुए है।

एक लम्बी साँस लेकर सुषमा ने कहा—"कैसा दुर्भाग्य है, आप जैसे बुद्धिमान् वैज्ञानिक का समय ताश खेलने में बीत रहा

है। हमें आपके अन्वेषणों से कितनी आशा थी! संसार के इने-गिने वैज्ञानिकों में आपका नाम था, किन्तु आज क्लब के इन अर्द्ध-शिक्षित और बर्बर सैनिकों के बीच ताश की बाजी पर आपकी प्रतिभा नष्ट हो रही है!"

केशवचन्द्र की दृष्टि को अपने अर्द्धनग्न वक्षोर्द्ध में मँडराते देख सुषमा मन ही मन तो संतुष्ट हुई; किन्तु कटि से दूसरे स्कन्ध तक के अग्र भाग को साड़ी के आँचल से ढकती हुई; वह बोली—"ओह, क्षमा कीजिए, आपके हाथ में ताश देखकर जो क्षोभ हुआ, उससे मैं साधारण शिष्टाचार की बात तक भूल गई। आप यहाँ प्रसन्न तो हैं?"

"धन्यवाद!" केशवचन्द्र ने कहा—"मैं बहुत आनन्द से हूँ। आप यहाँ कैसे आ गईं?"

होठों को आकर्षक ढंग से सिकोड़ते हुए सुषमा ने मुस्कराकर कहा—"धन्यवाद, आप तो ऐसे क्रुद्ध से दीख रहे थे कि मैं समझी थी, शायद आप मुझे पहचानकर भी अनजान बन जायँगे, और शायद मुझे दुबारा अपना परिचय देना पड़ेगा। मैं अपने पति के साथ आई हूँ।"

"रुस्तम जी आए हैं?" केशवचन्द्र ने चैन की साँस लेकर कहा—"कहाँ हैं? उनसे मिलकर मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी।"

सुषमा बोली—"आज तो वे यहाँ नहीं आए। पास ही एक बंगले में टिके हैं। उनसे कल या परसों किसी समय मिल लीजिए।"

केशवचन्द्र ने कहा—"कैसे आना हुआ आप लोगों का?"

सुषमा दो क्षण चुप रही। सामने आते-जाते तीन-चार सैनिक अफसरों से कनखियों से ही दृष्टि-विनिमय करके फिर केशवचन्द्र की ओर देखकर बोली—"वैसे तो इस कम्पनी (सेना की टुकड़ी)

में कैंटीन का ठेका लेने का विचार था, उसी के लिए कोशिश करने आए थे; लेकिन सच पूछिए तो मैं केवल आपके दर्शन ही करने आई।"

केशवचन्द्र ने अपनी दृष्टि नीचे गिरादी; लेकिन सुषमा की करुण दृष्टि का अपनी मुद्रा पर स्पर्शानुभव वह करता रहा। उसी प्रकार बरामदे के फर्श के पत्थरों के जोड़ों का निरीक्षण सा करता वह उदासीनता से बोला—"क्या काम था मुझसे ?"

सुषमा बोली—"क्या आप हमारी अभ्रक की खान में रासायनिक का काम सँभालने की कृपा न करेंगे ? मैंने पहले भी प्रार्थना की थी। हमारी वह खान निकट ही इन पहाड़ों में है।"

केशवचन्द्र चुप रहा। सुषमा की वह चाल तत्काल ही उसकी समझ में आ गई। लेकिन उसके लिए उसका प्रत्युत्तर उतनी ही पटुता से देना संभव न था।

सुषमा उसकी चुप्पी का उपयोग करके कहती गई—"मैंने अब तक आपकी ही प्रतीक्षा में खान का काम स्थगित करवा रखा है। शेयर बिक गए हैं। काफी रुपया एकत्र हो गया है। आप सहयोग का वचन दे दें, तो फिर काम चालू हो जायगा।"

केशवचन्द्र अब भी चुप रहा। सुषमा जो कुछ कह रही थी, उसे वह सुन ही नहीं रहा था। वह तो उसकी भाव-भंगी, उसके शृंगार, बालों की नितम्बों तक लटकती उन लटों तथा रेशम सी मुलायम उस श्वेत मांसल बांह की ओर देख रहा था, जो उसकी शीघ्र वापस घर चले जाने की प्रबल इच्छा का मानो बलपूर्वक अवरोध कर रही थी। वह सुषमा है, एक अद्वितीय सुन्दरी, यह सब भूलकर वह बिल्ली से घिरे हुए पिल्ले की भाँति किंकर्त्तव्य-विमूढ़ सा निश्चेष्ट खड़ा था।

सुषमा कहती जा रही थी—"और भी बहुत से लोगों ने सहयोग दिया है। आपके मित्र वैकावि तो अपना व्यवसाय छोड़कर हमारी ही कम्पनी की नौकरी ग्रहण कर रहे हैं?"

वैकावि का नाम सुनकर केशवचन्द्र की तन्द्रा टूटी। "वैकावि? वह बहरा?" केशवचन्द्र ने पूछा—"क्या हाल है उसका?"

"बड़ा दुखी है।" सुषमा ने कहा—"उसकी पत्नी मर गई है। स्वयं भी गठिये का शिकार हो गया है। उसी ने तो मुझे आपका पता बतलाया। और आपकी मालकिन- मकान भी चल बसी।"

"चल बसी?" केशवचन्द्र ने साश्चर्य पूछा—"क्या हुआ बेचारी को?"

"बीमार तो थी ही।" सुषमा बोली—"इसी महीने पाँच तारीख को मरी।"

हार्दिक दुख का अनुभव करते हुए केशवचन्द्र ने एक उच्छ्वास लेकर कहा—"बड़ी ही धर्मात्मा स्त्री थी वह, बड़ी साध्वी।"

"हाँ, एक बात तो बतलाना भूल ही गई।" सुषमा बोली—"आपको भी अब वह मकान जल्दी खाली करना पड़ेगा। बुढ़िया की सारी सम्पत्ति पर उसके भतीजों ने कब्जा कर लिया है। एक भतीजा वहीं रहकर वकालत करेगा। उस मकान को वह अपने लिए लेना चाहता है।"

केशवचन्द्र का मन इस बात को ग्रहण करने को तत्पर न हुआ कि उसके बन्द मकान पर भी कोई कब्जाकर सकता है, जब कि वह बराबर किराया चुकाए जा रहा है। अवश्य सुषमा जान बूझकर अथवा गलती से यह मिथ्या भाषण कर रही है।

सुषमा कहती गई—"सुना है, किराए तथा मकानों सम्बन्धी कानून में कहीं यह भी लिखा है कि कोई व्यक्ति किसी मकान को

बिना उपयोग में लाए बन्द नहीं रख सकता। आपकी पत्नी के पास सरकारी सूचना मकान खाली करने के लिए पहुँच चुकी होगी।"

केशवचन्द्र का भाव तत्काल बदल गया। वह सुषमा से जिरह करके बोला—"आपको कैसे पता चला कि मेरी पत्नी को मकान खाली करने का आदेश मिला है?"

सुषमा कुटिल हँसी हँसकर बोली—"जिसे वह मकान मिला है उससे?"

केशवचन्द्र उस हँसी का अर्थ न समझ सका, शान्ति से बोला—"बुढ़िया के भतीजे से, जो वकील है और वहाँ रहना चाहता है?"

"वह तो नीचे के खंड में रहेगा।" सुषमा बोली—"ऊपर का आप वाला खंड सरकारी तौर पर जिसके नाम 'एलाट' हुआ है, उसी से मुझे ज्ञात हुआ है कि आप लोगों को मकान खाली करने का नोटिस मिल चुका है। इस महीने के अन्त तक मकान खाली न हुआ, तो सरकारी तौर पर उस पर कब्जा हो जायगा।"

केशवचन्द्र का ध्यान एकाएक उस कमरे में रखी गई वस्तुओं की ओर चला गया। वह सुन्दर फर्नीचर, वे मेज और कुर्सियाँ, विवाह के वे उपहार! मन ही मन एक-एक वस्तु को अपने अन्तस्तल में चित्रित करके वह सुषमा से बोला—"उसमें जो सामान रखा है, वह कहाँ जायगा?"

ठहाके से हँसकर सुषमा बोली—"यह प्रश्न तो आपको अपनी पत्नी से पूछना चाहिए, न कि मुझसे।"

केशवचन्द्र हतप्रभ हो गया। सचमुच सुषमा से उस सामान की व्यवस्था करने का उपाय पूछना मूर्खता थी। कुछ सोचकर झुंझला-

हट से उसने पूछा—"मकान का वह खंड किसको दिया जा रहा है, आपको तो ज्ञात होगा ?"

"क्या बताऊँ ?" तत्क्षण उदास होकर सुषमा ने कहा—"मैंने लाख मना किया, लेकिन मेरे पति नहीं माने। उन्होंने ही उसे अपने नाम 'एलॉट' करा लिया। उनका स्वभाव ही कुछ ऐसा कुटिल और जिद्दी है। कल आप आयँ तो उनसे मिल लें, नहीं तो कहीं पुलिस की सहायता से वे आपका सामान फिकवा न दें।" कहते-कहते सुषमा की आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे। साड़ी के पल्ले से आँसू पोछकर रुँधे हुए कंठ के वह बोली—"मैंने यही बात बतलाने के लिए इस समय आपको बुलाया था।"

केशवचन्द्र की मुद्रा क्रोध से तमतमा उठी। कुछ ही क्षण पहले सुषमा की वह कुटिल हँसी और अब यह रुलाई उसके मन में नाटक के अपटु अभिनय से भी अधिक खीझ पैदा करने लगी। सुषमा की बातों में कितना सत्य है और कितना झूठ, उसके लिए यह जानना कठिन था। उसने रोष भरे स्वर में कहा—"आप तो कह रही थीं कि आप अपनी अभ्रक की खान के कार्य में मेरा सहयोग प्राप्त करने के लिए मुझसे मिलने आई हैं, तब यह मकान की बात सच है या वह ?"

कातर दृष्टि से केशवचन्द्र के तप्त चेहरे की ओर देखकर सुषमा ने कहा—"काश, आप मेरी परिस्थिति समझ सकते। पति से तो मैं यही कहकर आई कि आपसे उस खान के संबन्ध में बातें करनी हैं। वह कार्य भी कम महत्व का नहीं है। लेकिन मेरे मन से पूछिए तो मैं आपको मकान के विषय में बतलाने ही आई। कल जब आप खान के विषय में उनसे बात करें, तो अपने मकान की बात भी छेड़ दें। आपके आग्रह करने पर शायद वे दो-तीन महीने तक उस पर अधिकर करना स्थगित कर दें।"

"और कुछ उपदेश ?" कहकर मन ही मन गुर्राता हुआ सा केशवचन्द्र तेजी से दुमंजिले की सीढ़ियों पर चढ़ गया।

सुषमा ने उसी ओर देखकर कहा—"तो मैं जाती हूँ। नमस्ते।"

बिना मुड़े ही केशवचन्द्र ने कहा—"नमस्ते।"

"कल आयँगे आप ? हमारे बँगले का नाम प्रायरी है वह करयप्पा रोड पर स्थित है।" सुषमा ने जोर से कहा।

केशवचन्द्र तब तक सीढ़ियाँ पार कर चुका था।

२४—वह निमंत्रण

दूसरे दिन प्रातःकाल सुषमा नहा-धोकर तैयार हो गई और केशवचन्द्र के आने की प्रतीक्षा करने लगी। उसके पति कुछ देर से उठे और चाय का भारी आयोजन देखकर झँझलाकर बोले—"आज किस मेहमान की प्रतीक्षा कर रही हो?"

सुषमा ने शान्ति से कहा—"मैं रात को आपको बतलाना भूल गई। आज सेना का वही रासायनिक केशवचन्द्र आपसे मिलने आनेवाला है। कल क्लब में उससे अचानक मुलाकात हो गई। मैंने उसे आज आने को कहा है। उसके आने पर आप स्वयं ही उससे बात कर लीजिए। यदि आप उसे हमारी उस खान के काम में रासायनिक का काम ग्रहण करने को राजी कर सकें, तो हमारे बहुत से 'शेयर' बिक सकते हैं। ऐसे प्रसिद्ध वैज्ञानिक को नौकर रख लेने पर हिन्दुस्तान के बाहर भी हमारी कम्पनी का नाम हो जायगा।"

"केशवचन्द्र की बात कह रही हो।" रुस्तमजी ने सिगरेट जलाते हुए कहा—"कल उसके अमेरिकन साथी लूथर से मेरी भी बातचीत हुई थी। वह तो दूसरी ही बात कह रहा था।"

सुषमा ने चिंतित होकर कहा—"क्या उसने कहीं दूसरी जगह नौकरी करने की ठान ली है, या उसका साथी उसे अपने साथ अमेरिका तो नहीं ले जा रहा है?"

पति ने कहा—"मुझे तो आशा नहीं कि वह हमारे कार्य में सहयोग देगा। सच पूछो तो हमने केवल कुछ शेयर बेच देने के

अलावा और काम ही क्या किया है ? हमें तो यह भी पता नहीं कि उस खान में अभ्रक कैसा और कितना है। सुना है, केशवचन्द्र वनस्पतिज्ञ राय के साथ, यहीं पहाड़ों में काम करना चाहता है।"

"कौन सा वनस्पतिज्ञ ?" सुषमा ने पूछा—"यहाँ पहाड़ों पर भला कौन सी अनुसंधानशाला है ?"

"डाक्टर राय की याद नहीं है तुम्हें ?" रुस्तमजी ने कहा—"हमारे शहर में ही तो वे रहते थे। केशवचन्द्र के शायद वे अध्यापक रहे हैं। कुछ वर्षों से विश्वविद्यालय की नौकरी छोड़कर इन पहाड़ों पर रहने लगे हैं। सुना है, उनके साथ एक ऐसा बालक है, जो अन्न खाता ही नहीं। बिना अन्न खाए मनुष्य जीवित रह सकता है, इसी विषय का अनुसंधान वे उस बालक पर कर रहे हैं।"

"वह बालक है कौन ?" सुषमा ने पूछा—"राय के तो तीनों बच्चे मर गए थे पत्नी भी नहीं रही। ऐसा बालक उन्हें मिल कहाँ से गया ?"

सिगरेट का कश खींचकर रुस्तमजी ने अपने होठों को किंचित् बिचकाकर कहा—"वास्तव में तुम बड़ी बुद्धिमान् हो, यही प्रश्न मेरे मस्तिष्क में भी कल आया था। वैसे तो वह बालक अनाथ कहा जाता है। शायद डॉक्टर राय ने आक्रमण के समय उसे घायल अवस्था में किसी सड़क पर पड़ा पाया था। लेकिन अनाथ बालक पर भी तो स्वेच्छा से प्रयोग करने का अधिकार किसी को नहीं मिल जाता। हमें उस बालक का पक्ष लेना चाहिए। क्या मालूम, डाक्टर राय उसे भूखा रहने के लिए विवश करते हों। मनुष्य मनुष्य पर ऐसा अत्याचार नहीं कर सकता। उस अनाथ बालक की निपट असहाय दशा से डाक्टर राय लाभ उठा रहे हैं।"

सुषमा पति के तर्क से प्रसन्न हो उठी। यह एक ऐसी बात उसके हाथ लग गई, जिसको लेकर वह आज फिर केशवचन्द्र को नीचा दिखा सकती है। उस बात को जानकर तो सुषमा और भी अधिक

व्यग्रता से केशवचन्द्र की प्रतीक्षा करने लगी। लेकिन नौ बज गए और केशवचन्द्र नहीं आया। रुस्तमजी ने चाय अकेले पी ली और वे टहलने चले गए; लेकिन सुषमा केशवचन्द्र की प्रतीक्षा में बैठी रही। उसे आशंका होने लगी कि केशवचन्द्र शायद न आए; लेकिन फिर भी वह रसोइए से नए-नए प्रकार के व्यंजन बनवाकर और भी अधिक व्यग्रता से उसके आने की बाट जोहने लगी।

ग्यारह बजे के लगभग जब रुस्तमजी टहलकर लौटे, तो उन्होंने अनेक प्रकार के सुस्वादु व्यंजनों से लदी मेज के पास ही कोच पर अखबार से मुँह ढांपे सुषमा को झपकी लेते पाया।

कुर्सी पर बैठते ही रुस्तमजी बोले—"नहीं आया केशवचन्द्र? मैंने पहले ही कह दिया था कि वह नहीं आयगा। तुम व्यर्थ ही अब तक उसकी प्रतीक्षा करती रहीं। लेकिन उसने यहाँ न आकर अपना ही नुकसान किया। डाक्टर राय के बालक को मुक्ति दिलाने की योजना मैंने बना डाली है। अब देखें, केशवचन्द्र जाता कहाँ है? मैं ब्रिगेडियर से मिल आया हूँ। नौकरी से तो वह इसी सप्ताह अलग हो जायगा।"

उस शाम क्लब से लौटकर केशवचन्द्र ने तीन सप्ताह की छुट्टी का आवेदन-पत्र लिखकर अपने आफीसर-कमांडिंग को भेज दिया और उनसे टेलीफोन पर बात करके अगले प्रातःकाल ही वहाँ से चल देने की आज्ञा भी प्राप्त कर ली। लूथर उसके इतनी जल्दी चले जाने का बार-बार विरोध करता रहा; लेकिन जब केशवचन्द्र ने उसे अपने उस मकान के छिन जाने की बात बतलाई, तो वस्तु-स्थिति को समझकर लूथर ने उसे जाने की अनुमति सहर्ष दे दी कि तीन सप्ताह उपरांत केशवचन्द्र फिर लौटकर वहीं आयगा और तब वे दोनों दुबारा साथ-साथ वापस चलेंगे। केशवचन्द्र को तब तक यदि सेना से विघटित होने की आज्ञा मिल जाए, तो फिर छुट्टी लेने का प्रश्न ही नहीं उठेगा, अन्यथा वह फिर अपनी छुट्टी बढ़ा

लेगा। वे दोनों एक बार फिर डा० राय की अनुसंधानशाला देखने पुष्पघाटी जायँगे। फिर केशवचन्द्र उसे बसु-प्रयोगशाला दिखलाएगा, जहाँ वह सेना में भर्ती होने से पहले कार्य करता था। केशवचन्द्र के पुराने शोधकार्यों की एक आख्या लेकर लूथर उसे केलीफोर्निया के साइंस स्कूल को भेजेगा और तब वहाँ से उत्तर आने पर केशवचन्द्र अमेरिका चलकर शोधकार्य करेगा।

सारी योजना इतनी आकर्षक थी कि केशवचन्द्र का हृदय उसकी कल्पना-मात्र से पुलकित हो गया। वह कृतज्ञता-भरी दृष्टि से लूथर की ओर देखकर बोला—"क्या सचमुच तुम मुझे कैलीफोर्निया के साइंस-स्कूल में शोधकार्य करने का अवसर प्रदान करने का प्रयत्न करोगे?"

"वह तो कर ही रहा हूँ।" लूथर ने तनिक संकोच से कहा—"शोधकार्य का अवसर मिलने में तनिक भी कठिनाई न होगी; लेकिन मैं चाहता हूँ कि इस हेतु आपको आर्थिक सहायता भी मिल जाय।"

"क्या वह संभव है?" केशवचन्द्र ने पूछा।

लूथर ने कहा—"आप यदि वचन दें कि छात्रवृत्ति मिलने पर आप उसे अस्वीकार न करेंगे और शोधकार्य को उस साइंस-स्कूल के नियमों के अनुसार ही प्रकाशित करने का वचन देंगे, तो शायद छात्रवृत्ति के मिलने में सुगमता हो जाए।"

केशवचन्द्र ने प्रश्न को पूर्णरूप से समझे बिना ही हर्षोल्लास में कहा—"नेकी और पूछ पूछ! मैं भला 'छात्रवृत्ति के मिलने पर उसे क्यों अस्वीकार करूँगा? रही अपने फलों के प्रकाशित करने की बात। जब तक प्रयोग पूर्ण सफल न हों, तब तक यह प्रश्न ही नहीं उठता। सफलता मिल जाए, आह यदि कृत्रिम अन्न का निर्माण प्रयोगशाला में हो जाए, तो ख्याति तो स्वतः

हो जायगी। ख्याति और संपदा स्वयं मेरी प्रयोगशाला के द्वार खटखटायँगी, मुझे उनके पीछे पड़ने की आवश्यकता ही कहाँ रहेगी ?"

लूथर ने पूर्ववत् गंभीरता से कहा—"तब मैं छात्रवृत्ति के लिए प्रयत्न करूँ, इसके लिए आप सहमत हैं न ?"

केशवचन्द्र ने कहा—"निस्संदेह, निस्संदेह।" यह कहते-कहते उसके मन में विचार उठा कि काश, डा० राय की पुष्पघाटी में ही अनुसंधान के सभी साधन होते और वहीं उसे अपने प्रयोग जारी रखने का अवसर मिलता।

केशवचन्द्र को कुछ सोचते देख लूथर ने पूछा—"क्या कुछ द्विविधा में पड़ गए ?"

निष्कपट मन के केशवचन्द्र ने कहा—"यदि हमें उस शोध-कार्य में डा० राय का भी सहयोग प्राप्त हो सकता, तो कितना सुन्दर होता। वह उपोषित बालक जिस प्रक्रिया द्वारा वनस्पति संसार से पोषक रस ग्रहण कर रहा है, उस प्रक्रिया का पता लग जाने पर हमारा शोधकार्य बड़ा ही सुगम हो जायगा।"

कुछ सोचकर लूथर ने कहा—"आप छुट्टी से लौट आयँ तो फिर हम उनसे मिलकर इस संबंध में बातचीत करेंगे। शायद वे भी अमेरिका चलने को तत्पर हो जायँ।"

२५—राशनिंग दफ्तर

उस लंबी यात्रा के उपरांत तीसरे दिन प्रातःकाल केशवचन्द्र ने जब अपने ससुर के घर पहुँचकर दरवाजा खटखटाया, तो उसके आगमन से सबको आश्चर्यमिश्रित हर्ष हुआ। उसकी पत्नी सरोज तो क्षण भर उसे निर्निमेष देखती रही। पति का क्षीणकाय रुग्ण शरीर अब पर्याप्त स्वस्थ और सुन्दर लगता था। उधर केशवचन्द्र को भी अपनी पत्नी, जो उसी समय नहाकर अपनी लंबी केशराशि को पीठ पर छितराए थी, बड़ी आकर्षक लगी। स्मितहास से दोनों ने एक दूसरे का अभिवादन किया।

"क्या मेरा तार मिला था?" पत्नी ने कहा—"मकान के विषय में।"

"नहीं!" पति ने कहा—"क्या कोई तार भेजा था तुमने? और मेरा भेजा तार तो मिला होगा?"

"नहीं!" पत्नी ने और भी मुस्कराकर कहा—"यहाँ तो अब तक कोई तार नहीं मिला।"

केशवचन्द्र ने 'हो हो' करके हँसते हुए कहा—"अच्छा, न मुझे तुम्हारा तार मिला, न तुम्हें मेरा, फिर भी तुम्हारी इच्छानुसार मैं आ गया और मेरी इच्छानुसार तुम यहाँ मिल गईं। मकान अभी खाली तो नहीं किया?"

"नहीं।" पत्नी ने कहा—"अभी चार दिन पहले नोटिस मिला है।"

उस दिन विश्राम करके अगले दिन केशवचन्द्र अधिकारियों से मिला कि उस मकान से उसका सामान न हटाया जावे और यदि यह अनिवार्य हो, तो उसे रहने को कोई दूसरा स्थान दिया

जाए। पुलिस अधिकारियों ने, जिन्हें मकान को खाली करवाने की आज्ञा मिल चुकी थी, जिलाधीश से मिलने का परामर्श दिया। उसने बिना कुछ सुने ही किराया-नियंत्रक अधिकारी से मिलने को कहा। केशवचन्द्र किराया-नियंत्रक-अधिकारी के घर गया, तो उन्होंने घर पर उस सम्बन्ध में बात करने में असमर्थता बतलाई और दफ्तर में उपस्थित होने का आदेश दिया। इस प्रकार वह सारा दिन बीत गया। दूसरे दिन दस बजे केशवचन्द्र किराया-नियंत्रक अधिकारी के दफ्तर में गया। अधिकारी वहाँ उपस्थित न थे। उनसे मिलनेवालों की पर्याप्त भीड़ लगी थी, जो प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी।

दो बजे सरकारी मोटर पर किराया-नियंत्रक साहब दफ्तर में आए और मिलनेवालों की भीड़ की नितांत अवहेलना करके अपने कमरे में चले गए। उस समय वे शहर में किसी मकान का निरीक्षण करके आए थे, थके माँदे थे। हाथ-मुँह धोकर तुरंत ही भीड़ की ओर दृष्टिपात किए बिना ही कचहरी के अन्य अफसरों के साथ 'लंच' करने लंच रूम में चले गए। केशवचन्द्र अन्य मिलनेवालों के साथ कमरे के बरामदे में उनके फिर लौटकर आने की प्रतीक्षा में टहलता रहा। सुबह चाय पीकर निकला था। अब तक उसी अधिकारी की प्रतीक्षा में खाना खाने न जा सका था और अब तो खाना खाने का अवसर निकालना असम्भव था। अधिकारी किसी समय भी आकर उसे पुकार करता था।

बरामदे में एक काठ की बेंच और दो टूटी कुर्सियाँ पड़ी थीं, जो पहले ही से भर चुकी थीं। बूढ़े अशक्त लोग भी खड़े थे। कुछ बरामदे में पलथी मारकर बैठ गए थे। लेकिन मक्खियाँ उन्हें बैठने न देती थीं। दरवाजे पर चिक पड़ी थी। दफ्तर में अफसर तो न था, लेकिन पंखा चल रहा था। बिजली की बत्ती भी दिन दहाड़े मेज पर रखे सुन्दर टेबिल लैम्प पर जल रही थी, और गद्दीदार आठ-

दस कुर्सियाँ मेज के इर्द-गिर्द खाली पड़ी दीखतीं थीं; लेकिन वे सब आगन्तुकों के लिए नहीं थीं। आगन्तुक तो न्यायालय में प्रस्तुत अभियोगियों की भाँति बाहर बरामदे में, जहाँ न तो पंखा था और न बैठने को स्थान, एक दूसरे के पसीने से तर कंधों से कंधे भिड़ाकर अपनी-अपनी फरियाद करने के लिए आतुर खड़े थे।

सवा तीन बजे के लगभग किराया-नियंत्रक-अधिकारी कमरे में वापस आए। उनके होठों पर हँसी थी कि इतने अधिक लोग उनके लिए प्रतीक्षा में खड़े हैं। अपने अधिकार का वह ज्ञान उनको एक आत्माभिमान की भावना से भर देता था। लेकिन अपने उन फरियादियों की ओर एक-एक करके उन्होंने देखा तक नहीं। यह उनके आत्मसम्मान के विरुद्ध था। यदि वे ऐसा करते तो शायद केशवचन्द्र को पहचानकर पहले बुला लेते।

अपनी कुर्सी पर बैठकर उस अधिकारी ने घंटी बजाई और उसका पेशकार पन्द्रह-बीस मोटी-मोटी फाइलें लेकर आ गया।

यह उन किराये-सम्बन्धी मामलों से सम्बन्धित थीं, जिनके लिए आज की तारीख निश्चित थी। किसी मकान को यदि सरकार अपने दफ्तर के लिए लेना चाहती और मकान-मालिक उसे खाली करने में असमर्थ होता, तो अपनी असमर्थता के कारण प्रस्तुत करने तथा तत्संबंधी आपत्तियों के लिए तर्क-वितर्क करने के लिए कोई दिन पहले से निश्चित हो जाता था। मकान पर कब्जा न मिलने, मकान-मालिक के झगड़ा करने आदि मामलों के निर्णय के लिए भी बहस के लिए दिन निश्चित हो जाता था।

अब ऐसे ही मामलों की सुनवाई आरंभ हो गई। साढ़े चार बज गए और केशवचन्द्र फिर भी अपनी बात अधिकारी से न कह सका, तो उसने बाहर बैठे चपरासी से सहायता-याचना की कि किसी भाँति वह उसे साहब से तुरंत मिलने का अवसर प्रदान करने की कृपा करे।

चपरासी ने पूछा—"क्या काम है ?"

केशवचन्द्र ने संक्षेप में अपनी बात बतला दी। चपरासी ने कहा—"लगभग आधे से अधिक ऐसे ही मामले आते हैं। साहब से मिलना व्यर्थ होगा। एक अर्जी में जो कुछ कहना है, लिखकर एक रुपये का टिकट लगाकर अपने पास रखिए। और जब पाँच बजे ऐसी अर्जियों की पुकार हो, तो उसे पेश कर दीजिए। कोई तारीख आपके मामले की सुनवाई के लिए लग जायगी।"

केशवचन्द्र ने कहा—"मुझे तो जल्दी ही हुक्म चाहिए।"

चपरासी सहृदय था। केशवचन्द्र की परेशानी देखकर बोला—"यदि आप साहब के नाम किसी बड़े आदमी की चिट्ठी लाए होते तो आप उस चिट्ठी के जरिए तुरंत ही साहब से मिल लेते। ऐसे मिलना सम्भव नहीं है।"

केशवचन्द्र ने कहा—"मैं उनसे घर पर मिला था। यदि तुम मेरा कार्ड उन्हें दे सको, तो शायद वे मुझे पहचानकर तुरन्त बुला लें।"

चपरासी ने हाथ बढ़ाकर कहा—"अच्छा, लाइए अपना कार्ड, मैं कोशिश करूँगा।"

केशवचन्द्र ने कार्ड दे दिया, लेकिन कार्ड हाथ में लेकर भी चपरासी का हाथ बढ़ा का बढ़ा रहा। उसकी दृष्टि में याचना की भावना को स्पष्ट देखकर केशवचन्द्र ने कहा—"काम होने पर इनाम मिल जायगा।"

"काम होने न होने का मैं जिम्मेवार नहीं हूँ साहब! मैं तो साहब से आपकी मुलाकात मात्र करा सकता हूँ!" उसने कहा।

केशवचन्द्र ने कुछ न कहा। चपरासी को पहले ही इनाम दे देने की उसकी इच्छा न थी। लेकिन भूख के कारण उसकी बुरी दशा थी। चपरासी को पैसा देकर दो व्यक्ति अब तक अधिकारी

से मिल चुके थे। थोड़ी देर बाद शायद वह अधिकारी दफ्तर से उठकर चला जायगा, यह आशंका सभी मिलनेवालों को थी। कुछ लोग तो अर्जियाँ लिखवाकर पाँच बजे वाली पुकार के लिए ही रुके थे।

तब केशवचन्द्र ने भी दो रुपए का नोट निकालकर चपरासी को दिया। नोट को तुरन्त जेब में रखकर चपरासी अन्दर चला गया। जैसे ही प्रस्तुत मामले की कार्यवाही समाप्त हुई, उसने केशवचन्द्र का कार्ड अधिकारी के सम्मुख रख दिया। अधिकारी ने कार्ड पर लिखा पढ़ लिया; लेकिन फिर भी केशवचन्द्र को बुलाने की आज्ञा नहीं दी। एक और मामले की पुकार हो गई। चपरासी बाहर आ गया और केशवचन्द्र से बोला—"आप साहब के घर पर गए होंगे; लेकिन उन्होंने आपको पहचाना नहीं। अब एक दूसरा कार्ड निकालिए और उसके ऊपर अपना काम और यह बात कि आपको दफ्तर में मिलने को बुलाया गया था, अंग्रेजी में लिख कर मुझे दीजिए। मैं फिर उसे ले जाकर साहब को दे आऊँगा।"

केशवचन्द्र ने ऐसा ही किया और चपरासी ने फिर दूसरे मामले की सुनवाई समाप्त होने पर उसे भी अपने साहब के सम्मुख प्रस्तुत किया। इस बार केशवचन्द्र को बुला लिया गया। वह अधिकारी के सम्मुख खड़ा हो गया। अधिकारी ने उसे बैठने को नहीं कहा। पूछा—"क्या काम है?"

केशवचन्द्र इस प्रकार के व्यवहार से अभ्यस्त न था। जनसेवक कहे जानेवाले सरकारी कर्मचारियों के इस असभ्य व्यवहार के प्रति उसे बड़ी खीझ उठ रही थी। मन ही मन क्रोध आ रहा था कि ऐसे व्यक्ति से कुछ याचना करने का उसका दुर्भाग्य हुआ।

"क्या मैं बैठ सकता हूँ?" केशवचन्द्र ने कहा और उत्तर की प्रतीक्षा किए बिना ही खाली कुर्सी खींचकर वह बैठ भी गया।

अधिकारी का ध्यान उस समय कुछ कागजों के ढेर की ओर बँट गया, जिनमें हस्ताक्षर कराने के लिए एक क्लर्क उसी समय केशवचन्द्र और उसके बीच आ खड़ा हुआ। अब उन कागजों पर, जो शायद गल्ले आदि की ढुलाई के बिल थे, दस्तखत करते हुए उपेक्षा से अधिकारी बोला—"क्या काम है, जल्दी बतला जाइए ?" बोलने वाला है कौन, यह सब वह नहीं देख रहा था।

केशवचन्द्र ने बतला दिया कि दो वर्ष पूर्व वह जिस मकान में रहता था और जहाँ उसके शोधकार्य संबन्धी पुस्तकों के अतिरिक्त और निजी सामान रखा हुआ है, उसे खाली करने का आदेश हुआ है, यद्यपि वह किराया अब तक बराबर देता आ रहा है।

"खाली कराने का आदेश किसने दिया है ?" अधिकारी ने उन्हीं कागजों पर झुके-झुके पूछा।

केशवचन्द्र ने बतला दिया कि आदेश उन्हीं के कार्यालय से जारी हुआ है। हुक्म की जो प्रति उसके जेब में थी, वह भी उसने प्रस्तुत कर दी।

बड़े अन्यमनस्क भाव से बाएँ हाथ से उस कागज को उलट-पलटकर अधिकारी ने कहा—"अब तो इस मामले में अंतिम निर्णय हो गया है। आपत्ति करने की अवधि भी समाप्त हो गई है। अब कुछ नहीं हो सकता। मकान सरकारी आवश्यकता के लिए खाली किया गया है।"

"उसमें क्या कोई सरकारी दफ्तर खुलेगा ?" केशवचन्द्र ने पूछा।

अधिकारी ने कहा—"यह आवश्यक नहीं है कि उसमें सरकारी कार्यालय ही खुले। वह किसी ऐसे व्यक्ति को दिया जा रहा है, जिसके लिए रहने को मकान दिलाना सरकार के लिए आवश्यक है।"

"लेकिन" केशवचन्द्र ने कहा—"मेरा अनुमान है कि मकान का मेरा वाला खंड किसी पारसी ठेकेदार को दिया जा रहा है।"

"ठीक है।" अधिकारी ने कहा—"उस ठेकेदार के लिए मकान दिलाना सरकार के लिए अनिवार्य है।"

"मैं तो समझता हूँ, सभी नागरिकों के लिए जिन्हें मकान की आवश्यकता है, मकान की व्यवस्था करना सरकार का कर्त्तव्य है। उस ठेकेदार को प्राथमिकता देने का प्रश्न ही नहीं उठता।"

"क्यों नहीं?" अधिकारी ने कहा—"वह ठेकेदार सरकारी खजाने में पाँच लाख रुपये प्रतिवर्ष लाइसेंस फीस देता है। उसको शहर में निवासस्थान न दिया जाय, तो जिन शराब की दूकानों का ठेका उसने लिया है उनके बंद हो जाने से सरकारी आय को क्षति पहुँच सकती है। आप स्वयं उस मकान में रहते नहीं हैं, तो उसे खाली रखने से यही ठीक है कि उसे दूसरे को दिया जाए। एक व्यक्ति को रहने का स्थान नहीं और दूसरा व्यर्थ ही खाली मकान पर अधिकार किए रहे—केवल इसलिए कि उसके पास फालतू रुपया है।"

"लेकिन मुझे शीघ्र सेना से विघटित होकर फिर शोधकार्य के लिए लौटना है।" केशवचन्द्र ने कहा, "मुझे तब मकान चाहिए।"

"जब आप वापस आयँगे" अधिकारी बोला—"आपकी आवश्यकता पर उसी क्रम से विचार होगा। इस समय तो आपको मकान खाली करना ही पड़ेगा। जाइए, व्यर्थ मेरा समय खराब न कीजिए।"

"समय आपका ही है, मेरा नहीं है क्या?" जिद पकड़कर पर्याप्त उत्तेजित होकर केशवचन्द्र ने कहा—"उस मकान के बदले तब कोई और मकान मुझे दिलाया जाय।"

"अच्छा!" अधिकारी बोला—"आप कोई खाली मकान देख लीजिए। मकान-मालिक को राजी कर लीजिए। हम उसे आपको दिला देंगे, वैसे इस समय हमारे पास कोई मकान खाली नहीं है।"

केशवचन्द्र निराश होकर बाहर चला आया। लेकिन दूसरे ही क्षण उसकी फिर पुकार हुई। अधिकारी ने कहा—"मकान खाली

करने के नोटिस पर आपके हस्ताक्षर नहीं हुए हैं, उस पर हस्ताक्षर करके जाइए।"

क्रोध से लाल होकर केशवचन्द्र ने कहा—"मैं उस पर हस्ताक्षर नहीं करूँगा।"

अधिकारी अंग्रेजी में बोला—"सरकारी आज्ञा को न मानना अपराध है। आपको उस पर हस्ताक्षर करने ही पड़ेंगे।"

"मैं अन्यायपूर्ण आदेश नहीं मान सकता।" केशवचन्द्र बोला।

अधिकारी बोला—"आप पर सरकारी आज्ञा न मानने का अपराध कायम हो सकता है।"

केशवचन्द्र ने उत्तेजित होकर बाहर निकलते हुए कहा—"जो आपको करना हो करें, मैं उस पर कदापि हस्ताक्षर न करूँगा।"

बाहर पर्याप्त भीड़ जमा हो गई। लोग उस वार्त्तालाप को सुनकर सोचने लगे कि शायद अधिकारी पुलिस की सहायता माँगेगा और केशवचन्द्र को तत्काल पकड़ बुलाएगा। लेकिन ऐसा कुछ न हुआ। फाटक के बाहर एक रिक्शे को बुलाकर जब केशवचन्द्र किसी भोजनालय की ओर जाने को उद्यत हुआ, तो वही किराया-नियंत्रक का चपरासी सामने आ खड़ा हुआ और बोला—"साहब-आप तो मकान के लिए व्यर्थ परेशान हैं। आप तो मिलिटरी के आदमी हैं। अपनी कमान के अफसर को फौरन तार करें। उनके सामने कलक्टर साहब की भी दाल नहीं गल सकती। वहाँ से चिट्ठी आ जाए, तो ये लोग चूं नहीं कर सकते। आप उसको टेलीफोन क्यों नहीं करते? कहीं ऐसा न हो कि ये लोग पुलिस के जरिए कल ही आपका सामान फिकवा दें।"

केशवचन्द्र ने चपरासी को उसके परामर्श के लिए धन्यवाद दिया और रिक्शे में बैठकर अत्यधिक भूख से व्याकुल हो किसी भोजनालय की तलाश में निकल गया कि एक प्याला चाय पीकर घर तक वापस जाने का सहारा हो।

२६—छुट्टी से वापसी

चपरासी का वह परामर्श कि सैनिक अधिकारियों से कहकर मकान को खाली न कराने का प्रयत्न करना चाहिए, केशवचन्द्र को युक्तिसंगत लगा। दूसरे दिन प्रातःकाल ही वह स्थानीय छावनी की ओर चल दिया। सैनिक अधिकारियों का व्यवहार, किराया नियंत्रक अधिकारी से कहीं अधिक शिष्ट और सहानुभूतिपूर्ण था। केशवचन्द्र ने जब उनसे अपने आने का कारण बतलाया, तो उसके प्रति उनकी सहानुभूति और भी अधिक हो गई। उसे तत्काल अपनी कमान के अफसर से सरकारी टेलीफोन पर बातचीत करने की सुविधा प्रदान कर दी गई।

अफसर कमांडिंग ने केशवचन्द्र की बात सुनकर उसके जिलाधीश को पत्र लिखने का आश्वासन तो दे दिया; लेकिन केशवचन्द्र को शीघ्र काम पर लौट आने की आज्ञा भी दे दी और कहा कि उसकी छुट्टी समाप्त की जाती है।

केशवचन्द्र ने जब आग्रह किया कि वह अपनी पूरी छुट्टी समाप्त करके ही आ सकता है, विशेषतः जब कि उसके पास विश्लेषण का अधिक कार्य नहीं है और उसके जल्दी न लौटने पर भी काम में बाधा नहीं पड़ सकती, तो अधिकारी ने केवल यह कहकर बात टाल दी कि उसे कम से कम समय में लौट आना चाहिए, यही आज्ञा उसे दी जा रही है, जिसका उसे पालन करना पड़ेगा।

घर लौटते समय केशवचन्द्र उस अप्रत्याशित आज्ञा के कारण के विषय में बार-बार सोचता रहा; लेकिन उसकी समझ में कुछ न

आता था कि वहाँ क्यों उसकी आवश्यकता पड़ गई। युद्ध के फिर से छिड़ने की बात संभव नहीं हो सकती थी; क्योंकि न तो समाचार पत्रों में इसका कुछ आधार था और न वे सैनिक अधिकारी ही, जिनसे आज वह मिला था, इस सम्बन्ध में कुछ जानते थे। इसके विपरीत जो बातें उन अधिकारियों ने बतलाई थीं, उससे तो स्पष्ट था कि विराम संधि अब स्थायी संधि में परिणत हो रही है और उस सीमांत पर्वतीय क्षेत्र से सभी सेनाएँ वापस बुलाई जा रही हैं।

उसी विचारमग्न अवस्था में वह घर पहुँचा। उसकी चिंतित मुद्रा से सरोज समझ गई कि मकान की समस्या हल नहीं हुई। उसकी तीन घंटे की अनुपस्थिति में तीन तार भी घर पर आ चुके थे; लेकिन पति को चिन्तित देखकर पत्नी ने उसके भोजन करने तक उन तारों के विषय में पति को बतलाकर उसकी चिंता को बढ़ाना उचित न समझा। उधर केशवचन्द्र मकान की बात को तो बिलकुल ही भूल गया था। उसे यह चिंता खल रही थी कि सरोज को दुःखित किए बिना वह किस प्रकार बतलाए कि आज ही शाम को वापस जाने का प्रबन्ध करना अब अनिवार्य हो गया है।

खाना खाकर जब वह अपने बिस्तर पर लेट गया, तो अपने कमरे की वस्तुओं को एक अनोखी ही दृष्टि से देखने लगा। मन में यह विचार कि ये वस्तुएँ और सरोज भी यहाँ रह जायँगी और केवल वही यहाँ न रहेगा, उसके मन में चिहुँक सी उत्पन्न कर रहा था।

उसी समय उसकी पत्नी ने वे तीनों बादामी तार के लिफाफे उसकी ओर बढ़ा दिए और सहमी हुई सी वह बोली—"क्या मकान को खाली करना ही पड़ेगा?"

केशवचन्द्र चारपाई पर बैठ गया। पत्नी की ओर देखकर बोला—"मकान तो शायद न छोड़ना पड़े, लेकिन मुझे आज ही वापस जाना है।"

पत्नी शान्त रही। यद्यपि विदाई के दुख से उद्विग्न पति के कातर स्वर से उसके हृदय में उस समय एक बड़ी सी हूक उठी और आँखें डबडबा आईं; लेकिन अपनी मुद्रा पर उसने उस आन्तरिक वेदना को प्रकट न होने दिया। दृष्टि को नीची करके कहा—"शायद इन तारों में यही आज्ञा होगी। सेना की नौकरी में है, तो सैनिकों की भाँति वीर भी होना पड़ता है।"

एक लिफाफे को खोलकर उसे पढ़कर पत्नी को देते हुए केशवचन्द्र ने कहा—"यह तो मेरा ही भेजा तार है, अब पहुँचा है।" दूसरे और तीसरे तार को पढ़कर केशवचन्द्र की मुद्रा गंभीरतर होती गई। वह चारपाई पर से उठ गया। भावावेश में कमरे का एक चक्कर लगाकर फिर दुबारा तार को पढ़कर बोला—"लूथर का तार है। डाक्टर राय को पुलिस ने पकड़ लिया है। और दूसरा तार हमारे ब्रिगेडियर का है। मुझे छुट्टी से तत्काल वापस चले आने की आज्ञा दी है। राय को न जाने किस अपराध में पकड़ा गया। उनकी प्रयोगशाला और उस बालक की देखरेख कौन कर रहा होगा? संभव है, सैनिक अधिकारी राय को किसी विदेशी सरकार का गुप्तचर समझते हैं। विदेशी पत्रिकाओं में उनके प्रयोगों के फल छपते रहते हैं, क्या इसीलिए उन पर संदेह किया जा रहा है? लूथर ने शायद पुलिस की अभिरक्षा से उन्हें छुड़ाने का प्रयत्न करने के लिए मुझे बुलाया है।"

उत्तेजना में कमरे के दो-तीन चक्कर लगाकर केशवचन्द्र फिर अपनी पत्नी से बोला—"मेरा सामान ठीक करवा दो। मुझे जल्दी से जल्दी जाना चाहिए।"

घड़ी भर पहले जिस घर को छोड़ने में उसे अतिशय कष्ट का अनुभव हो रहा था, अब उस तार के पढ़ने के उपरांत उसी घर में तीन घंटे और बिताना उसके लिए दुष्कर हो गया। सरोज को वह राय के विषय में एक-एक बात विस्तार से बतलाने लगा और यह भूल गया कि कुछ ही सप्ताह पहले एक पर्याप्त लम्बा पत्र उसने उन्हीं सब बातों के विषय में पत्नी को भेजा था, जिसका अब वह दुबारा वर्णन कर रहा है। सरोज, पति की उस वैज्ञानिक के प्रति अटूट श्रद्धा को देखकर और उसी के लिए वापस जाने की आतुरता को देखकर कभी तो मन ही मन ऐसे उदार पति के प्रति स्वयं भी गर्व का अनुभव करती, लेकिन फिर कभी सशंकित हो जाती कि कहीं उसका पति उस वैज्ञानिक की रक्षा के लिए भावावेश में कोई ऐसा दुःसाहसिक कार्य न कर बैठे, जिससे उसका अनिष्ट हो।

केशवचन्द्र उस पुष्पघाटी, पुष्पों के उस उद्यान और उस लड़के से संबंधित घटना का वर्णन करता रहा और सुषमा कुछ देर तो वह सब श्रवण करती रही; लेकिन फिर उसका ध्यान पति की मुद्रा, उसके माथे पर उभरी हुई उस 'इ' के आकार की नीली नस और कान की जड़ के समीप दो एक श्वेत होते हुए बालों की ओर चला गया। वह सोचने लगी—'यद्यपि उनमें प्रौढ़ता सी आती जा रही है, शरीर स्थूल होता जा रहा है, बाल पकने लगे हैं; लेकिन उनके स्वभाव में वही बालकों की सरलता है, विद्यार्थियों का सा उत्साह और आवेश है और उन्हीं का सा हठ। ऐसे पुरुष के लिए तो सदा विद्याभ्यास करना ही उचित था। यह तो चिर-विद्यार्थी है। उसका स्थान प्रयोगशाला में ही था।'

उसी समय दरवाजे पर किसी ने हलकी थपकी दी। केशवचन्द्र ने खिड़की से बाहर देखा; लेकिन वह आगंतुक को पहचान न पाया। सरोज कमरे से हट गई और केशवचन्द्र ने किवाड़ खोलकर कहा—"आइए।"

अनेक स्थलों पर रफू किया गया कोट, उसी प्रकार पतलून और कीड़ों की खाई हुई टाई पहने एक पुरुष अन्दर आ गया। उसकी आँखों पर मोटे काँच का धूमिल चश्मा था। कोट और पतलून का रंग भी कई स्थलों पर उड़ गया था। जड़ कटी हुई लता पर अटके हुए सूखे फल सा उसका चेहरा ऐसा विवर्ण हो गया था, मानो जीवन-रस का स्रोत एकाएक कट जाने से उसे निराश्रय होकर धूप और वायु में सूखना पड़ रहा हो।

केशवचन्द्र ने चारपाई के किनारे खड़े होकर आगन्तुक के अभिवादन का प्रत्युत्तर दिया और कुर्सी की ओर संकेत करके बैठ जाने को कहा और स्वयं अपने मस्तिष्क पर जोर देकर यह सोचने लगा कि उसने कब और कहाँ इस व्यक्ति को पहले देखा था। लेकिन वह व्यक्ति कुर्सी पर बैठने के बजाय एकदम केशवचन्द्र के पाँवों पर गिर गया। दोनों हाथों से उसके चरणों को पकड़कर आँसू गिराकर बोला—"मुझे क्षमा कर दीजिए। मैंने बड़ा अपराध किया है। मैं बड़ी गलती कर बैठा हूँ।"

केशवचन्द्र ने साश्चर्य कहा—"कौन हो भाई तुम? क्या कहना चाहते हो, बात क्या है?"

वह आगन्तुक अब जोर-जोर से सिसकी लेने और रोने लगा।

उस अद्भुत व्यवहार को देखकर सरोज भी पास के कमरे से आ गई। उसने आगन्तुक को पहचानकर कहा—"वैकावि साहब हैं।"

"वैकावि?" कहते हुए केशवचन्द्र ने अपने बलिष्ठ हाथों से तत्काल अपने उस पुराने मित्र को उठाकर उसका आलिंगन किया और उसे अपने साथ ही चारपाई पर बिठा दिया। स्वयं भी दयार्द्र होकर केशवचन्द्र ने कहा—"मुझे तुम्हारी पत्नी की मृत्यु का समाचार सुनकर बड़ा दुख हुआ। भाई, साहस से काम लो। तुम रो क्यों रहे हो?"

रूमाल से आँसू पोछ वैकावि ने धीरे-धीरे अपने व्यवसाय के घाटे के वर्णन किया कि किस प्रकार विश्वविद्यालय के एक अध्यापक के द्वारा नई वैज्ञानिक यंत्रों की दूकान के खोल दिए जाने पर उसकी बिक्री घटते-घटते एकदम शून्य पर आगई। फिर पत्नी की मृत्यु पर व्यय करना पड़ा। अपनी भी चिकित्सा की और रुपया उधार लेना पड़ा रुपया समय पर न चुका सकने पर फिर उसके ऊपर मुकदमा चला, कुड़की हुई और कुड़की में किस प्रकार केशवचन्द्र का वह प्यारा सूक्ष्मदर्शक यंत्र भी चला गया।"

"चला गया?" केशवचन्द्र ने एक उच्छ्वास लेकर कहा—"वैकावि!" लेकिन कुछ और कहने से पूर्व ही वह चुप हो गया। एक बार फिर वैकावि को आनख-शिख देखकर वह पर्याप्त जोर से कि वह सुन ले, बोला—"खैर जाने दो; लेकिन जीस आइकोन का वह यंत्र अब दुर्लभ है। तुम बतला सकते हो, किसने उसे खरीदा? अब वह किसके पास होगा?"

"वह तो उसी सेठ के पास है जिससे मैं ऋण लेता रहा।" वैकावि ने कहा—"वही सुषमा के पति रुस्तमजी के पास।"

केशवचन्द्र ने एक और दीर्घ निःश्वास लिया और मन ही मन सोचने लगा—"हाय! कैसा फन्दा है! वह नारी चाहती क्या है? अपने रुपए के बल पर वह मुझे ही परेशान नहीं करती, मेरे मित्रों तक का जीवन दूभर कर चुकी है। फिर यह ध्यान आते ही कि वैकावि ने तो उसकी खान में नौकरी कर ली है, वह बोला—"तुमने तो शायद सुषमा की अभ्रक की खान में नौकरी कर ली है?"

वैकावि ने उदास होकर कहा—"अभी उनका कुछ रुपया मेरे ऊपर बाकी है। इसीलिए नौकरी कर लेने पर जोर देती हैं। अभी न तो काम शुरू किया गया है, न वेतन की ही बात पक्की हुई है।"

फिर केशवचन्द्र के पाँवों पर गिरकर वह कहने लगा—"भाई, मुझे क्षमा कर दो। मैं यहाँ बेकार हूँ, निराश्रय हूँ। मुझे अपने साथ ले चलो, मुझे बचा लो।"

सात बजे गाड़ी के छूटने का समय था। सामान के बाँधने-सँभालने का समय समीप आता जा रहा था। पाँच बज गए, लेकिन वैकावि अपने एक-एक दिन का अनुभव सुनाता जा रहा था। केशवचन्द्र नतमस्तक आकर्ण उसकी बातों को तल्लीनता से सुन रहा था। उसके व्यवहार में लेशमात्र भी खीझ न थी। वैकावि की बातों में बार-बार सुषमा का जिक्र आता था। यद्यपि उसका केशवचन्द्र पर कुछ भी प्रभाव न पड़ता था, लेकिन उस नाम के सुनते ही सरोज की उत्सुकता बढ़ जाती थी। पति उन बेकार बातों को क्यों तल्लीनता से सुनकर समय नष्ट कर रहे हैं, इस बात का ध्यान आने पर उसे झुंझलाहट होने लगी। विश्वविद्यालय की, अनुसंधान-शालाओं की, अध्यापकों की और पुराने सहपाठियों की बातें होने लगीं; लेकिन फिर घूम-फिरकर सुषमा का जिक्र हो जाता—अमुक सभा में उसने भाषण दिया। अमुक अध्यापक के स्वीडन से लौटने पर उसने गोष्ठी की, अमुक चित्रकार के चित्रों का प्रदर्शन कराया। अमुक कवि-सम्मेलन किया।

जब उस सूक्ष्मदर्शक यंत्र का जिक्र फिर हुआ, तो वैकावि ने कहा—"सुषमा कहती थी कि उसने वह सूक्ष्मदर्शक यंत्र केवल इसी लिए लिया है कि वह उसे किसी दिन आपको लौटा देगी।"

बात सुनकर केशवचन्द्र की त्योरी चढ़ गई। सरोज ने भी दूसरे कमरे से इस बात को सुन लिया; लेकिन अब उस प्रसंग को बलपूर्वक समाप्त करने के हेतु वह उन दोनों के पास आकर बोली—"सवा पाँच हो गए हैं। आप लोग कुर्सी पर बैठ जायँ तो मैं बिस्तर उठाकर उसे बँधवा दूँ।"

दोनों बिस्तर से उठ गए। वैकावि सुषमा की बात नहीं सुन सका था। उसने समझा कि यह उसी के विदा होने के लिए संकेत है। वह बोला—"तो यह निश्चय रहा कि आप वहाँ जाकर मेरे लिए तार करेंगे? मैं आने के लिए उद्यत रहूँगा। अच्छा, अब जाता हूँ।"

"डाक्टर राय से परामर्श करके मैं तुम्हें अवश्य तार करूँगा।" केशवचन्द्र ने कहा—"लेकिन यदि वहाँ तुम्हारी आवश्यकता न हुई, तो तुम्हें अपना कारोबार फिर जमाना ही चाहिए। यंत्रों में अधिक व्यय हो, तो पुस्तकों की एजेंसी कर लेना।"

वैकावि दम्पति को प्रणाम करके चला गया। सरोज ने खाली बिस्तर को उठाकर बँधवाने का कोई प्रबन्ध नहीं किया। वह पति के समीप खड़ी थी और उसी भाँति निश्चल खड़ी रही। जब वैकावि की पदचाप की ध्वनि भी समाप्त हो गई और केशवचन्द्र का ध्यान सरोज की ओर गया, तो उसने देखा, वह टप-टप आँसू बहा रही है।

पत्नी के दुख की गरिमा को मन ही मन ताड़कर उपहास से ही उसे लघुतर बनाने का प्रयत्न करके केशवचन्द्र बोला—"लो अब तुम्हारी कथा भी सुन लूँ। दिल थाम के बैठो, अब मेरी बारी है।"

सरोज सिसकती रही। उसके मन में उफान सा उठ रहा था। केशवचन्द्र तो उसका ही उपास्य देव है। उस पर उसका ही एकमात्र अधिकार है। तब सुषमा क्यों उस पर अपनी पूजा के फूल चढ़ाने का प्रयत्न करती है और उसका वह देवता क्यों उस पूजा-को ग्रहण कर लेता है? ऐसा देवत्व तो उसे स्वीकार नहीं। वह कहना चाहती थी—'मैं आपके योग्य कभी न थी। आपने क्यों मुझसे विवाह किया? वह क्षणिक आवेश था जिसमें बहकर आपने मुझे ग्रहण कर लिया। सुषमा के साथ आप अधिक सुखी रहते। वह आपकी गतिविधि का अब भी सूक्ष्मता से अनुसरण करती

है। आपके वैज्ञानिक कार्य को भी समझ सकती है। उसी ने तो आपके सूक्ष्मदर्शक यंत्र को आपको देने के लिए सँभाल रखा है। यदि वह नाराज है, आपसे मकान छिनवाने का प्रयत्न करती है, तो केवल इसलिए कि आप उसकी ओर ध्यान दें। उसके प्रयत्नों को सराहें।

केशवचन्द्र ने सरोज की बाँह पकड़कर उसे भी अपने पास बिठा लिया। उसके भीगे कपोलों को उसी के आँचल से पोंछकर कहा—"आज तुम्हें यह रुलाई अकस्मात् क्यों आ गई? तुम तो दुख के समय सदा शान्त रहती थीं। आज यह परिवर्त्तन कैसा?"

पत्नी अब भी सिसकती रही। यद्यपि उसका मन सुषमा के प्रति अनेक प्रकार के विचारों से भरा था; लेकिन पति से कैसे कहे कुछ समझ में न आता था। वह सोच रही थी—'आपका इतना अधिक प्रभाव सुषमा पर पड़ा है कि आपके विचार, आपका स्वभाव, आपकी प्रियाप्रिय वस्तुएँ और आपका हिताहित सब उसे अपना ही सा लगता है। तब क्या आप उसी से आकर्षित होकर इतनी जल्दी लौटने को आतुर नहीं हैं?'

अब अपनी बात कह डालने के लिए उसने पति की आँखों की ओर देखा। उन आँखों में बालसुलभ कौतूहलपूर्ण सरलता के सिवा और कुछ भी न दीख पड़ा। तभी केशवचन्द्र ने कहा—"मैं जानता हूँ, मैंने तुम्हें कितना उपेक्षित, कितना अपमानित और कैसा दुखित किया है। लेकिन सरोज अब मुझे लगता है, हमारे अच्छे दिन आ रहे हैं। सेना की नौकरी से छुट्टी मिलते ही मैं या तो पुष्पघाटी में डाक्टर राय के साथ अनुसंधान करूँगा या फिर अमेरिका जाने का आयोजन करूँगा। लेकिन जहाँ जाऊँ, तुम मेरे साथ अवश्य चलोगी। प्रवास में तुम्हारा दूर रहना मुझे बराबर खलता है।"

सरोज सोच रही थी कि पति की बातचीत में सुषमा का जिक्र आयगा, उस सूक्ष्मदर्शक यंत्र की बात आयगी। लेकिन पति ने ऐसा कुछ भी न कहा। सरोज को और अपने समीप खींचकर उसके सिक्त कपोल को अपने कपोल से लगा लिया। मन ही मन वह अपने किए संकल्प को कि उसके भावी जीवन में सरोज का साथ होगा, निभाने का प्रण करने लगा।

× × ×

स्टेशन पर उतरने पर केशवचन्द्र ने देखा, उसको लेने के लिए लूथर प्लेटफार्म पर खड़ा है। उसने जोरों से उसका अभिवादन किया। वह सुषमा की ओर देखना ही भूल गया। वह पीले रंग का ऊनी ओवरकोट पहने पास ही खड़ी थी। जब लूथर ने केशवचन्द्र का ध्यान उसकी ओर आकर्षित किया, तो वह केवल "हैलो" कहकर उस नारी को पहचानकर स्तंभित सा रह गया। सुषमा ने आज नितांत नए ढंग से शृंगार किया था। सिर पर बच्चों की सी एक ऊनी टोपी थी, काली-काली केशराशि का कुछ भाग उस लाल टोपी से बाहर माथे पर दो विभिन्न दिशाओं की ओर मुड़ी ऊर्मियों सा दीखता था। कुछ काली केशराशि का भाग बिना कालर के उस पीले ओवरकोट के दोनों स्कंधों पर, दीप्त क्षितिज के ऊपर घिरी काली मेघमालाओं-सा बिखर रहा था। कोट के बटन खुले थे और अन्दर हाथ की बुनी, मोटी ऊनी बनियान के कारण अतिशय उन्नत उरोजों की छाया कमर पर पड़ रही थी। हाथों पर हरे, बैंगनी और लाल फूल कढ़े दस्ताने थे। गले में एक रंग-बिरंगा पतला सा रेशमी अँगोछा ग्रीवा और कंठ को ढके था। उस वेश में उसके पतले रक्ताभ ओठ, विशेष रूप से रंजित भौंहें उसे किसी फिल्म-अभिनेत्री से भी अधिक आकर्षक बना रहे थे।

लूथर ने केशवचन्द्र की गम्भीरता को भंग करने के अभिप्राय से कहा—"देखिए, आज मिसेज रुस्तमजी कितनी सुन्दर लगती हैं?"

केशवचन्द्र ने उत्तर में केवल 'हुँ' कह दिया, लेकिन सुषमा प्रसन्न होकर बोली—"थैंक्यू फार द कम्पलीमेंट (प्रशंसा के लिए धन्यवाद) ।"

केशवचन्द्र ने उस प्रत्युत्तर को सुनकर अपनी आँखें अपने सामान की ओर घुमा लीं और तत्काल प्रसंग बदलकर बोला—"डाक्टर राय का क्या हाल है ? उनके ऊपर पुलिस ने क्यों यह अत्याचार किया ।"

"वह लम्बी कथा है ।" लूथर ने कहा—"सुषमाजी की कृपा से आज उनकी जमानत पर रिहाई हो जायगी । इन तीन-चार दिनों में इस बेचारी ने उन्हें छुड़ाने का भरसक प्रयत्न किया है । ये न होतीं तो शायद वे लोग गोविन्द को भी हिरासत में ले लेते । पुलिस के पास किसी ने शिकायत की है कि डाक्टर राय गोविन्द को सीमापार से उठा ले आए हैं । विदेश विभाग के पास उस व्यक्ति ने, जो गोविन्द को अपना पुत्र बतलाता है, उसे वापस दिलाए जाने की प्रार्थना भेजी है ।"

२७—पलायन

डाक्टर राय को उस मुकदमे की मुसीबत से रक्षा करने लिए लूथर, केशवचन्द्र और सुषमा की अलग-अलग योजनाएँ थीं। केशवचन्द्र उस थाने में जाकर डाक्टर राय की लिखाई हुई रिपोर्ट को खोज निकालने के पक्ष में था। उसे आशा थी कि उस रिपोर्ट के मिल जाने पर तथा अखबारों में छपे विज्ञापनों के आधार पर डाक्टर राय के बचाव का पूरा प्रयत्न हो जायगा और अधिकारी यह जान जायँगे कि किस स्थिति में वह बालक उन्हें मिला था। लूथर को यह योजना पसन्द न थी। उसका कहना था कि यदि शिकायत करनेवाला, गोविन्द को अपना पुत्र सिद्ध करने में सफल हो जायगा तो उन्हें वह बालक उसे वापस देना पड़ेगा। इस प्रकार वैज्ञानिक संसार को एक नए अनुसंधान के अमूल्य माध्यम से वंचित होना पड़ेगा। वह बालक के माता-पिता को मृत सिद्ध करके उसके वर्तमान अभिभावक से लिखित अनुमति प्राप्त करने के पक्ष में था। सुषमा अधिकारियों से सीधे मिलकर न्यायाधीश पर विश्वविद्यालय के कुलपति का प्रभाव डालना चाहती थी। उसका कहना था कि छोटे-बड़े सभी न्यायाधीश विश्वविद्यालयों में ही शिक्षा पाए हैं। सब डाक्टर राय के नाम से परिचित हैं। थोड़े से प्रयत्न से किसी भी न्यायाधीश को अपने पक्ष में किया जा सकता है। पुलिस के अधिकारियों पर उसके कथनानुसार उसके पति का पर्याप्त असर था और एक ओर मुकदमा चलानेवाले पुलिस अधिकारियों और दूसरी ओर न्यायाधीशों का दाक्षिण्य प्राप्त कर लेने पर उसे पूर्ण सफलता दीख पड़ती थी।

डाक्टर राय तो उस दुर्घना से ऐसे कुंठित और विपन्न थे कि क्या करना चाहिए, यह उनकी समझ में न आता था। पूछे जाने पर वे कहते—"कुछ भी तो करो, मुझसे न पूछो।"

सुषमा का प्रत्येक योजना में प्रवेश करना केशवचन्द्र को बड़ा खलने लगा था। वह उससे तनिक भी सहायता लेने का इच्छुक न था। लेकिन लूथर, डाक्टर राय और यहाँ तक कि गोविन्द भी उससे खूब हिल-मिल गए थे। केशवचन्द्र का उससे कतराकर रहना उन सबको भाता नहीं था। विशेषतः लूथर तो उसे उसकी संकोचजन्य अभद्रता ही कहता था। उधर केशवचन्द्र को सुषमा का उसके प्रत्येक कार्य में अपनी टाँग अड़ाना इतना खलने लगा कि उसे पुष्पघाटी की वह अनुसंधान-शाला भी अब फीकी लगने लगी। वह सुषमा के संसर्ग से दूर कहीं किसी एकान्त स्थान में भाग जाने की इच्छा करने लगा। उसकी मनस्थिति, उसी सप्ताह नौकरी की समाप्ति की सूचना मिलने पर और भी अस्थिर हो गई।

राय की प्रतिरक्षा के लिए अंतिम निर्णय करने को रविवार का दिन निश्चित हुआ था। निर्णय उस गुप्त सभा में होनेवाला था, जिसका आयोजन पुष्पघाटी में किया गया था। इस सभा में सुषमा, रुस्तमजी, लूथर, पंगु बाबा और रामकृष्ण मिशन के एक साधु उपस्थित होनेवाले थे। वैकावि को भी तार किया गया था और रविवार की शाम तक उसके भी वहाँ पहुँच जाने की आशा थी।

केशवचन्द्र इस गुप्त सभा के बुलाने के पक्ष में पहले ही से न था। रुस्तमजी और सुषमा के उसमें सम्मिलित होने की बात जानकर उसकी अनिच्छा और अधिक बढ़ गई थी। वह चाहता था कि उस सभा में जाकर वैकावि के आने पर वह उसे साथ लेकर पुलिस थाने जायगा; वहाँ डाक्टर राय की लिखी प्रथम सूचना की रिपोर्ट को प्राप्त करने का प्रयत्न करेगा। लेकिन अपने मन की बात वह लूथर से कहने का अवसर ही नहीं पा रहा था। लूथर बुधवार

को रोमन-कैथलिक पादरियों से मिलने चला गया था। बृहस्पतिवार को भी वह दिन भर सुषमा और रुस्तमजी के घर पर रहा। शुक्रवार हो गया और केशवचन्द्र उससे अपने मन की बात न कह सका। उस दिन भी लूथर प्रातः काल से ही कहीं घूमने निकल गया था। शनिवार को लूथर को क्लब से अवकाश न मिल पाता था, इसलिए उसी दिन उसके लौटने की प्रतीक्षा में केशवचन्द्र दिन भर कमरे से बाहर नहीं निकला।

सायंकाल अत्यधिक थका और घबराया हुआ सा लूथर कमरे में आया। उसके हाथ में चमड़े की एक बिलकुल नई पेटी थी। धम से कुर्सी पर गिरकर वह अत्यधिक उत्तेजित सा बोला—"हम लोग बड़ी मुसीबत में फँस गए।"

केशवचन्द्र हतबुद्धि सा प्रश्नसूचक दृष्टि से उसकी ओर देखता रहा। लूथर ने कहना आरम्भ किया—"मैं उस पारसी व्यक्ति को भद्र पुरुष समझता था। अब ज्ञात हुआ कि उसी ने डाक्टर राय को पकड़ाने की योजना बनाई थी। मेरा ख्याल है, तुम्हारे विरुद्ध भी उसी ने शिकायत की है। यदि तुम तुरन्त यहाँ से भाग न गए तो भयंकर विपत्ति में पड़ जाओगे। सेना के अधिकारियों ने पकड़ने का आदेश दे दिया है। वारंट आया है तुम्हारे जिले से। वैकावि से तो इसका सम्बन्ध नहीं? वैकावि क्या कोई रूसी सज्जन हैं?"

"हा-हा-हा, वैकावि और रूस?" केशवचन्द्र लूथर की उस गम्भीर वार्त्ता के मध्य भी अपनी हँसी न रोक सका।

हँसते-हँसते उसकी आँखों से आँसू चू आए। शांत होकर बोला—"उसके नाम के अंत में गोर्की, विसेनस्की, ट्राट्स्की की ही भाँति 'की' लगा देखकर क्या सैनिक अधिकारियों ने उसे रूसवासी समझ लिया? बलिहारी इनकी बुद्धि की! उसका नाम

तो महेन्द्र है। वैकावि उसकी दूकान का नाम है। वैज्ञानिक-काच-विक्रेता—इन तीन हिन्दी शब्दों के प्रथम अक्षरों को लेकर अपनी दूकान के लिए वह नाम उसने गढ़ डाला था। अच्छा, अब उपहास छोड़ो और यह बतलाओ कि तुम दिन भर थे कहाँ?"

नूथर ने गम्भीर होकर कहा—"मैं उपहास नहीं कर रहा हूँ। मेरी बात मानो और झटपट तैयार होजाओ। स्थिति प्रतिक्षण भयंकर होती जाती है। डाक्टर राय और गोविन्द हमारी प्रतीक्षा कर रहे हैं।"

"कहाँ है वे?" केशवचन्द्र ने गम्भीर होते हुए कहा। राय और गोविन्द का नाम सुनकर उसकी सारी देह में रक्त का वेग से संचार हो गया।

नूथर केशवचन्द्र के और निकट आ गया और उसके कान के समीप फुसफुसाकर बोलने लगा—"सीमा के उस पार एक अमेरिकन हवाई जहाज हमारी प्रतीक्षा में खड़ा है। यहाँ आप सब इतनी विकट स्थिति में थे कि मैंने यहाँ से चुपचाप निकलने की योजना बना डाली। आज प्रातः डाक्टर राय से मिला तो वे भी यहाँ से भाग निकलने में सहमत हो गए। तुम्हारे लिए तो एक छात्रवृत्ति भी स्वीकृत हो गई है। जेम्स प्लाण्टेन नामक एक कृषिफार्म की ओर से तुम शोध करोगे। इन लोगों के पास दक्षिण अमेरिका के केले के बड़े-बड़े फार्म। हैं केले की स्टार्च से ही वे लोग अनेक प्रकार के रसायन बनाने की चिंता में हैं। लेकिन बातें फिर होती रहेंगी। यदि तुम्हें तत्काल अमेरिका चलना स्वीकार न हो, तो डाक्टर राय और गोविन्द को विदा करने तो चलो। वे उस पार पहुँच चुके होंगे।"

केशवचन्द्र खड़ा हो गया। लेकिन एकाएक इतनी बड़ी योजना के बन जाने और गोविन्द के इस देश को छोड़कर जाने की लोमहर्षक बात सुनकर उसके हाथ-पाँव फूल से गए। कौन सी वस्तु रक्खी

और कौन छोड़ी जाए, यह कुछ उसकी समझ में नहीं आ रहा था। थोड़ी देर व्यर्थ ही कभी कमरे के एक कोने और कभी दूसरे कोने, फिर कभी आलमारी और कभी तिजोरी तक जाकर वह हत-बुद्धि सा लूथर के पास खड़ा हो गया और बोला—"मेरे तो हाथ-पाँव काँप रहे हैं। बुद्धि काम नहीं कर रही है। जो कुछ तुम्हें आवश्यक लगे, रख लो।"

"तो तुम भी अमेरिका चल रहे हो न?" लूथर ने कहा—"तुम्हारा निश्चय दृढ़ है न? मैं तुम्हारी चीजें रख रहा हूँ।"

केशवचन्द्र भावावेश में टपटप आँसू बहाने लगा। यह लूथर के प्रति कृतज्ञता के आँसू थे या अचानक दुःखद परिस्थिति से मुक्ति मिलने और अनुसंधान कार्य का अवसर मिल जाने के कारण हर्ष के आँसू, वह स्वयं कुछ भी न समझ सका। किंचित् सुस्थिर होकर वह बोला—"डाक्टर राय जैसी आज्ञा दें, वैसा ही करूँगा।"

सूक्ष्म-सा सामान लेकर दोनों मित्र बाहर खड़ी मोटर पर सवार हो गए। केशवचन्द्र ने मोटर पर पड़े चिन्हों से अनुमान लगाया कि वह विपक्षियों के हवाई अड्डे की ही मोटर हो सकती है।

लूथर ने चलते-चलते कहा—"सीमा पार जाने में जो पन्द्रह-बीस मिनट लगेंगे, वही खतरे के हैं। उसके बाद तो आप तीनों की यात्रा और अमेरिका में उतरने की आज्ञा मेरे पास आगई है।"

केशवचन्द्र ने कहा—"तो तुम बड़े दिव्य-दृष्टा हो। क्या इस स्थिति का तुम्हें पहले ही से ज्ञान था?"

लूथर की मुद्रा गम्भीर हो गई। वह उत्तर में कुछ न कहकर मोटर की रोशनी बन्द करने में लग गया। शीघ्र ही हवाई अड्डे का तीव्र प्रकाश दीख पड़ने लगा। मार्ग में मोटर को एक छोटी-सी दूकान की ओर बढ़ा, स्वयं उतरकर केशवचन्द्र से भी उसने उतर

जाने का संकेत किया। वहाँ एक लम्बा-सा काला चोगा पहने एक कैथलिक पादरी, श्वेत वस्त्रधारी नर्स के साथ मोटर पर बैठने आगे बढ़े। उनके पीछे बीमारों की कुर्सी पर बैठा एक रोगी मोटर पर लाकर बिठाया गया। पाँचों व्यक्तियों को लेकर मोटर आगे बढ़ने लगी।

"फादर से परिचय नहीं है तुम्हारा?" लूथर ने कहा—"उनसे आशीर्वाद ले लो।"

केशवचन्द्र ने ध्यान से उस पादरी की ओर देखा। तत्काल ही यह जानकर कि वह और कोई नहीं डाक्टर राय हैं, उसने उनका अभिवादन किया। ऐसे पवित्रात्मा को भी छद्मवेश धारण करके इस प्रकार पलायन करने को विवश होना पड़ा, यह विचार उसे कचोटने-सा लगा।

राय के निकट आकर केशवचन्द्र ने पूछा—"मैं भी आपके साथ चलूँ, क्या यही आपकी आज्ञा है?"

एक लम्बी साँस लेकर हतप्रभ से हो डाक्टर राय ने कहा—"मुझसे पूछते हो मिस्टर, कुछ तो करो। मुझसे न पूछो। मैं जो कुछ कर रहा हूँ, क्या यह समझकर कर रहा हूँ कि ठीक कर रहा हूँ? मेरी इच्छा तो पुष्पघाटी से एक मिनट भी अन्यत्र जाने की न थी।" और 'गोविन्द' कहकर उन्होंने उस अधलेटे बीमार की ओर संकेत करके कहा—"उसे तो मैं अब भी साथ ले जाना नहीं चाहता। लेकिन यह···"कहते-कहते उनके ओष्ठ विकृत हो गए, आँखों से आँसू बह निकले।

"लो, हवाई अड्डा भी आ गया।" कहकर उन्होंने वाक्य समाप्त किया।

× × ×

अमेरिका के एक दैनिक पत्र में तीन सप्ताह के उपरांत इस आशय का एक समाचार छपा—"राकी पर्वतों पर जेम्स प्लांटेन

कम्पनी के खोए हुए वायुयान की खोज अब त्याग दी गई है। उस वायुयान में दो भारतीय वैज्ञानिकों के अतिरिक्त पाँच अमेरिकन सम्वाददाता भी यात्रा कर रहे थे।

अमेरिका के अनेक वीर पुत्रों में, जो विश्व को इस देश के बन्धुत्व तथा शांति का संदेश देने के प्रयत्न में कोरिया, कम्बोडिया और प्रशांत सागर के टापुओं में वीरगति को प्राप्त हुए हैं, एच० सी० लूथर का नाम भी सदा अमर रहेगा। वह युद्ध-प्रेक्षक इसी वायुयान से स्वदेश लौट रहा था।"

× × ×

न जाने सुषमा को अमेरिकन समाचार-पत्र की वह प्रति, जिसमें यह खबर छपी थी, कैसे मिल गई।